RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

Dhingra Family Foundation
DF
USA

वर्ष : 9, अंक : 34
जुलाई-सितम्बर 2024
मूल्य 50 रुपये

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

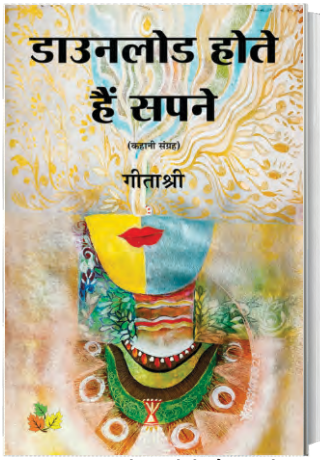

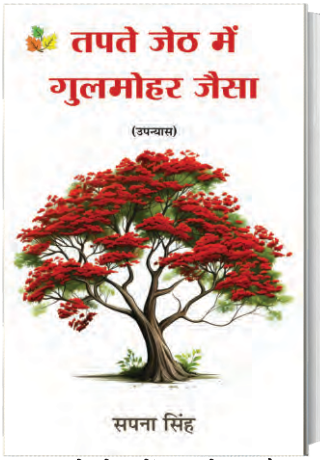

डाउनलोड होते हैं सपने
कहानी संग्रह
लेखक - गीताश्री
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

तपते जेठ में गुलमोहर जैसा
उपन्यास
लेखक - सपना सिंह
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

पन्नी
उपन्यास
लेखक - ज्योत्स्ना सिंह
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

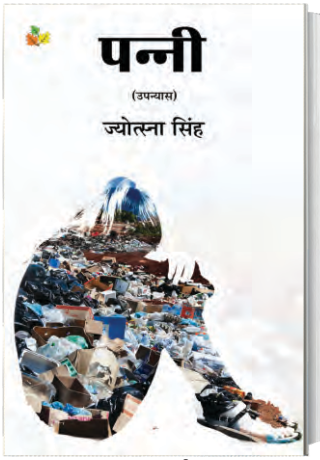

वजूद
उपन्यास
लेखक - अंशु प्रधान
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2024

अष्टछाप के अर्वाचीन कवि
कविता संकलन
संपादक - पंकज पाठक
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

मदिरा बरसे नभ से
वर्षा गीत संग्रह
लेखक - विजया भारती
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

मधुमास उतर आया
नाटक
लेखक - काशीराम सोनी
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

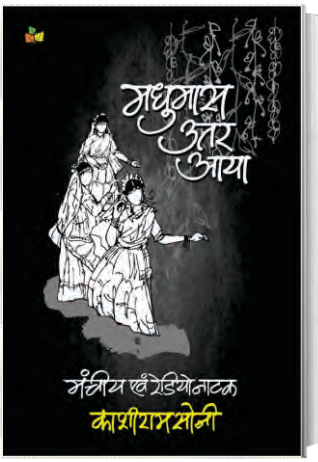

विमर्श- ये वो सहर तो नहीं
आलोचना
संपादक - शहरयार
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

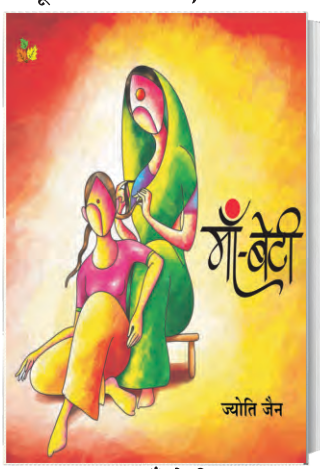

माँ-बेटी
कविता संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

दिल चाहता है
कविता संग्रह
संपादक - विनोद कुमार
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

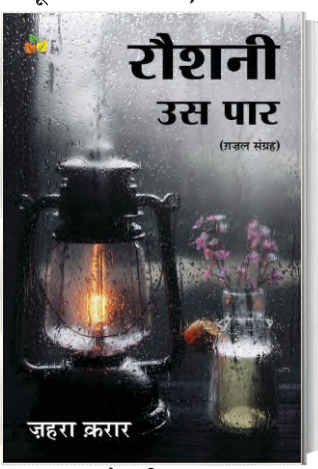

पुरवाई के झरोखे से
साक्षात्कार संग्रह
संपादक - नीलिमा शर्मा
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

रौशनी उस पार
ग़ज़ल संग्रह
लेखक - ज़हरा क़रार
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेंसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), +91-6265665580
व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-8959446244
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html

फेसबुक पर 'विभोम-स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 9, अंक : 34, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2024
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

जयपुर के सुप्रसिद्ध लाख-बाज़ार में एक दुकानदार महिला अँगीठी पर लाख के चूड़े तैयार करते हुए।

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 9, अंक : 34

जुलाई-सितम्बर 2024

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

साक्षात्कार

जीवन का आंतरिक संसार केवल लेखक ही अपनी संवेदनशीलता और अंतरात्मा से व्यक्त कर पाता है

कहानीकार-उपन्यासकार उर्मिला शिरीष से आकाश माथुर की बातचीत 11

विस्मृति के द्वार

मैं और मेरा समय...

तेजेन्द्र शर्मा एम. बी. ई. 16

कथा-कहानी

मारियूपोल की ज़ुबानी

मंजुश्री 27

चाबी

स्वाति तिवारी 31

क्रूज़ पर उपजा प्रेम

ममता त्यागी 36

मृत्यु धुन

हरभगवान चावला 40

कार्ड

पूजा गुप्ता 42

नहीं उतारूँगी पायड़ी

रजनी शर्मा बस्तरिया 44

सीढ़ियाँ

विजय कुमार तिवारी 49

पेइंग गेस्ट

दीपक गिरकर 53

भाषांतर

ममा ! मुझे भी डेट पर जाना है !

पंजाबी कहानी

मूल लेखक : अजमेर सिद्धु

अनुवाद : नीलम शर्मा 'अंशु' 57

लघुकथा

भय की मृत्यु

ज्ञानदेव मुकेश 26

मॉर्निंग टी

मृत्युंजय कुमार मनोज 39

सॉरी

राजेश पाठक 56

ललित निबंध

फेसबुक मोहल्ला

डॉ. वंदना मुकेश 63

व्यंग्य

शू का शो

मूल रचना : इब्न-ए-इंशा

अनुवाद : अखतर अली 66

शहरों की रूह

एडिनबरा की सड़कों पर बीस हज़ार कदम

पल्लवी त्रिवेदी 67

आख़िरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

क्या हम ऐसी दुनिया चाहते हैं ?

साँच को आँच नहीं, झूठ के पाँव नहीं होते, ऐसी कहावतें सुन-सुन कर देश की सामाजिक संरचना को पनपते देखा है। लोगों को सच के लिए खड़े होते देखा है। यह भी सुना है समय परिवर्तन शील है। उसका बेहतरीन उदाहरण वर्तमान समय है। साँच को आँच नहीं कहावत आज अपना महत्त्व खो चुकी है। सोशल मीडिया पर झूठ इतने सुंदर तरीके से, बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाता है और सोशल मीडिया के भिन्न-भिन्न प्लेटफॉर्म पर उसे पेश किया जाता है, वह सच लगने लगता है। किसी के पास समय नहीं उस झूठ के सच को जानने की। पूरे विश्व के लोग दौड़ रहे हैं, पता नहीं किस ओर और किस दिशा में ! बस दौड़ रहे हैं... इतना समय भी नहीं पाँच मिनट रुक कर झूठ और सच को परख लें... इसका प्रभाव किसी एक देश पर नहीं, विश्व के बहुत से देशों पर पड़ रहा है। जिन नैतिक मूल्यों ने देश और समाज की नींव को मज़बूत किया हुआ था, वही चरमराने लगी है। इस तरफ किसी का ध्यान नहीं जा रहा कि युवा पीढ़ी पर इसका क्या असर हो रहा है? इस तरह झूठी ख़बरों में पल रहे बच्चों का क्या होगा? वैसे चुनाव के दिनों में झूठे समाचारों का बहुत बोलबाला होता है। अमेरिका में चार नवंबर को चुनाव हैं। दूसरे देशों की उन सरकारों ने जो अपनी विचारधारा के लोगों को यहाँ लाना चाहते हैं, अपने साइबर सेल झूठी अफ़वाहें, झूठे समाचार फ़ैलाने के लिए काम पर लगा दिए हैं, हालाँकि यह क़ानूनन अपराध है। भारत, अमेरिका, इंग्लैण्ड, यूरोप के उन देशों में जहाँ चुनाव हो चुके हैं या होने वाले हैं, यह अपराध हो रहा है और हो चुका है। कई देशों में बैठे साइबर हैकर अन्य देशों की सरकारी फाइलों को हैक करके पैसा वसूल कर चुके हैं। कई कंपनियों का डेटा हैक कर उन कंपनियों को भारी नुक्सान पहुँचा चुके हैं। ऐसे अपराधों और अपराधियों को सज़ा कोई सरकार नहीं दे पाती। ये इतने शातिर होते हैं कि किसी भी देश की इन्वेस्टिगेशन टीम कुछ नहीं कर पाती। पर जनता इन सबसे बेख़बर दौड़ रही है यह जाने बिना कि वर्तमान तो बिगड़ ही रहा है, भविष्य की तस्वीर कैसी होगी ?

रूस और चीन की सरकारें मुफ़्त में अपनी जनता को सुविधाएँ मुहैया करवाते थे, उनकी आर्थिक स्थिति जब कमज़ोर होने लगी तो उन्हें अपनी सोच बदलनी पड़ी। यह बदलाव उन सरकारों को भी लाना पड़ेगा; जिन्होंने कोविड के समय अपनी जनता को मुफ़्त में सुविधाएँ दीं। वह समय ऐसा था, नाज़ुक आर्थिक स्थिति वालों को आर्थिक सहायता की ज़रूरत थी। देनी भी चाहिए थी। पर अब बहुत से देशों की स्थिति यह है कि वहाँ की सरकारें क़र्ज़ में डूब गईं हैं और वहाँ की जनता अब काम नहीं करना चाहती। नौकरियाँ उपलब्ध हैं पर लोग उन्हें ज्वाइन नहीं करना चाहते। वे सरकारी भत्ते और सरकारी सुविधा पर जीना चाहते हैं। त्रासदी यह है कि जिस पार्टी की सरकार है वह सत्ता में रहने के लिए और जो पार्टी सत्ता में आना चाहती है, दोनों मुफ्त में सुविधाएँ बाँटने की दौड़ में हैं और जनता लेने की दौड़ में, बिना यह सोचे अंत में पैसा उन्हीं से लिया जाएगा। अमेरिका और यूरोप के बहुत से देशों में महँगाई के साथ-साथ देशों पर क़र्ज़ भी बढ़ गए हैं...वेंज़ुवेला में ग़रीबी इतनी बढ़ गई है कि जनता अपना पेट भरने के लिए अपराध, अपहरण, लूट-पाट का सहारा ले रही है। टूरिस्टों ने वहाँ जाना बंद कर दिया है। जिसे मौक़ा

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

संपादकीय

मिलता है, वह अपने देश से पलायन कर लेता है। सरकार को इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, वह अपनी सोच में कट्टर है।

पूरे विश्व में एक मानसिकता और प्रवृति बड़ी तेज़ी से फ़ैल रही है। वह है तानाशाही। कुछ देशों की तानाशाही सरकारें तो स्पष्ट रूप से उजागर है, कुछ देशों में जहाँ कट्टरपंथी ही जीत रहे हैं या पहले से विद्यमान हैं, वे भी तानशाही की ओर ही बढ़ रहे हैं। दाएँ-बाएँ धड़े दोनों अधिनायकवाद ही बढ़ा रहे हैं। फ़र्क़ सिर्फ इतना है कि राइट विंग वाले प्राइवेट सेक्टर को बढ़ावा देकर नौकरियाँ पैदा करवाना चाहते हैं ताकि जनता सिर्फ सरकारी नौकरियों की ओर न दौड़े। सरकार एक सीमा तक ही नौकरियाँ पैदा कर सकती है।

धरती के जिस हिस्से में बैठी हूँ, यहाँ से कुछ बातें स्पष्ट रूप से देख सकती हूँ और दृष्टिकोण में भी व्यापकता आई है तथा निष्पक्ष हो कर बहुत कुछ समझ रही हूँ। दाएँ-बाएँ धड़े दोनों ही अपनी-अपनी विचारधारा में कट्टर हैं और एक दूसरे पर कट्टर होने का दोष लगाते हैं। सोशल मीडिया दोषारोपणों से भरा रहता है और युवा पीढ़ी के मस्तिष्क में कचरा भरता जा रहा है। बहुत से यूट्यूबर और ब्लॉगर नकारात्मकता फैला कर पैसा कमा रहे हैं। न माँ-बाप ध्यान दे रहे हैं न समाज के पैरोकार, इन सबसे नैतिक मूल्य समाप्त हो रहे हैं और समाज में अराजकता बढ़ रही है।

पर्यावरण के परिवर्तन और पूरे विश्व में जो वातावरण बन रहा है, उसे देखते हुए वैश्विक स्तर पर एक मानसिकता और उभर रही है। यह भारत में भी बढ़ रही है। यह मानसिकता है कि बहुत से विवाहित जोड़े बच्चे नहीं पैदा करना चाहते। वे नहीं चाहते उनके बच्चे ऐसे वातावरण में साँस लें और बड़े हों। वे अपने बच्चों के लिए ऐसी दुनिया नहीं चाहते। हालाँकि यह निराशावादी प्रवृत्ति है पर यह पैदा तो दिशाहीन दौड़ से ही होती है। मनोविज्ञान कहता है कि सब कुछ करते हुए, कैरियर की बुलंदियाँ छूते हुए दौड़ दिशाहीन लगे तो नैराश्य भाव उभरता है। सही ग़लत की जब पहचान न हो पाए तो दौड़ दिशाहीन होती है... अब तो झूठी ख़बरें, झूठी अफ़वाहें सोशल मीडिया के प्लेटफार्मों से चलते-चलते वाट्सएप तक पहुँचते-पहुँचते सच्ची कहानियाँ बन जाती हैं। कौन कहता है कि झूठ के पाँव नहीं होते, वर्तमान में तो यह विश्व के हर कोने में पूरी तरह अपनी जड़ें जमा चुका है... इस पर विचार न किया गया तो परिणाम सोच से परे होंगे।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

हमारे द्वारा नदियों के अंधाधुंध दोहन के चलते नदियाँ कब तक ज़िंदा रहेंगी कुछ नहीं कह सकते। नदियाँ मानव सभ्यता की सबसे पुरानी साथी रही हैं, मानव सभ्यता नदियों के किनारे ही विकसित होती रही हैं। लेकिन अब मानव नदियों को समाप्त करने पर जुटा है, भूल रहा है कि वह स्वयं को ही नष्ट कर रहा है।

मित्रनामा

संपादकीय ज्ञान के द्वार खोलता है

कृत्रिम मेधा हमारे आधुनिक जीवन के लिए अपरिहार्य होती जा रही है। इंटेलीजेंट मशीनों ने हमारी ज़िंदगी को जिस तरह से बदला है और मनुष्य को तरक्की की नई-नई ऊँचाइयों को छूने की काबिलियत दी है वह अपूर्व है, लेकिन मशीनें तकनीकी रूप से चाहे जितनी भी सक्षम हों जाएँ, मनुष्य की नैसर्गिक बुद्धिमत्ता की बराबरी नहीं कर सकती हैं, ऐसा मैं सोचता हूँ। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अथाह शक्ति और अपार संभावनाओं से इंकार नहीं, पर अगर हम इसे पूरी ज़िम्मेदारी से इस्तेमाल नहीं कर पाए, तो यह माध्यम हमारे लिए ख़तरनाक भी साबित हो सकता है। किसी भी वैज्ञानिक शोध या आविष्कार के प्रति हमें सकारात्मक नज़रिया ही रखना चाहिए, क्योंकि नकारात्मक ऊर्जा हमारे विकास में सहायक न होकर व्यवधानों को ही जन्म देती है। कंप्यूटर साइंस की इस उन्नत शाखा के साथ अगर मानव- मस्तिष्क का सार्थक तालमेल बिठा कर काम किया जाए तो बहुत सारी अद्वितीय उपलब्धियों को हासिल किया जा सकता है। जहाँ तक मनुष्यों की नैसर्गिक बुद्धिमत्ता का प्रश्न है तो उसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता कैसे हरण कर सकती है भला? आख़िर कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रादुर्भाव तो मानवीय मेधा का ही प्रतिफल है! वैसे आपने संपादकीय के अंत में सही ही कहा है कि, हमें देखना होगा कि भविष्य में इसके कैसे परिणाम होंगे ।

इधर कम ही पत्रिकाएँ बची हुई हैं हिन्दी में जिसके संपादकीय में कुछ ऐसा पढ़ने को मिलता है जो ज्ञान चक्षु के नूतन द्वार खोलता है। इस बात से सहमत हूँ कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस मानव मस्तिष्क की अद्भुत खोज है, एक ऐसी खोज है जिसने मानव मस्तिष्क को बहुत तेज़ी से अपने ऊपर निर्भर कर लिया है। क्या वाकई कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव मन की गहराइयों को समझ-बूझ कर हमारी सोच तक पहुँच कर, हमारे दिमाग़ को भी किसी दिन अपने नियंत्रण में ले लेगी ? मुझे तो ऐसा नहीं लगता है, क्योंकि अगर कृत्रिम बुद्धिमत्ता इतना सक्षम होती कि मानव की सोच तक पहुँच जाए तब तो कोई नौसिखिया कहानीकार महान् कथाकारों के दिमाग़ में सेंध लगाकर विषय उड़ा कर महान् कथाकारों में शामिल हो जाता।

-नवनीत कुमार झा, हरिहरपुर

000

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का क्षेत्र सीमित है

अभी-अभी विभोम-स्वर पत्रिका प्राप्त हुई और उसमें आपका आलेख पढ़ा। समस्या यह है की इंटरनेट के प्रादुर्भाव के साथ जानकारी इतनी सुलभ रूप में उपलब्ध होने लगी है कि लोग जानकारी और ज्ञान के अंतर को भुला बैठे हैं। हम कितना भी ज्ञानाधार एकत्रित कर लें अगर उसका उपयोग नहीं करते हैं तो वह हमारे ज्ञान न होकर जानकारी भर रह जाती है। यह बात आपके दिए उदाहरण से स्पष्ट होती है। तथाकथित कृत्रिम बुद्धिमत्ता वस्तुत: जीव तत्व के अभाव में एक ऐसी स्थिति है जिसकी सीमा अभी उतना विस्तार प्राप्त नहीं कर सकी है कि रचनात्मकता में प्रवेश कर सके। जब तक कृत्रिम बुद्धिमत्ता उस स्तर तक न पहुँच जाए जहाँ रचनात्मकता प्रारंभ होती है तब तक उसका व्यवहार मनुष्य समकक्ष हो ही नहीं सकता है। यही कारण है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का क्षेत्र सीमित है और मनुष्य द्वारा संगणकीय क्षमता का उपयोग कर रचनात्मक क्षेत्र में इसका जो उपयोग किया जा रहा है, वह साहित्य को यांत्रिक कर रहा है और उस दिशा में ले जा रहा है जहाँ गति तो मिलेगी लेकिन वह सद्गति न होकर दुर्गति होगी; जिसका मुख्य कारण रहेगा रचनात्मकता का अभाव। कृत्रिम बुद्धिमत्ता अभी ज्ञात की सीमाओं में है जबकि रचनात्मकता पूरी तरह ज्ञात से बाहर विचरण करती है।

-तिलक राज कपूर, भोपाल

000

अत्यंत विचारणीय संपादकीय

संपादकीय पढ़ा, अत्यंत विचारणीय! कहानी को बाना पहनाने की कला एआई अभी विकसित नहीं कर सका, आगे की बात कंप्यूटर आने से पहले की बातों की याद दिलाता है। बहुत बहुत धन्यवाद।

-ओम प्रकाश शुक्ला

000

चिंता को ज़ाहिर करता आलेख

रेखा भाटिया द्वारा साझा किया गया है यात्रा वृत्तान्त जो अमेरिका के शहर लॉस वेगस की यात्रा पर आधारित है। यह विभोम-स्वर के अक्टूबर-दिसम्बर 2023 के अंक में प्रकाशित हुआ था। लेखिका ने ऐसे शहर की यात्रा करवा दी जो रात को सोता नहीं है ऐसा कहा जाता है। भौगोलिक विवरण रेगिस्तान से लेकर पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य यह एक नखलिस्तान-सा है। शहर के आस-पास के पर्यावरण का वर्णन करते हुए यूटाह राज्य, नेवादा आदि के बारे में जानकारी प्रदान करते हुए थीम पार्क से मॉल की यात्रा करवाते हुए हवाई उड़ान की ख़ुशी महसूस करवाकर एक बात पर संजीदा कर दिया लेखिका ने। वह है जलवायु परिवर्तन। हम मनोरंजन ढूँढ़ते हैं, निर्माण करते हैं मगर प्रकृति को भूल गए हैं। हाल ही में दुबई की बाढ़ व भारत के जंगल की आग व एथेन्स की लाल आँधी ने चेतावनी दे दी है कि सँभल जाओ अभी भी वक़्त है। यह आलेख इसी चिंता को ज़ाहिर करता है। यात्राएँ सुखद होती हैं मगर इनके साथ यात्रियों द्वारा फैलाए गए प्लास्टिक कचरे धरती के लिए ज़हर होते हैं जिनके परिणाम हमें ही भुगतने होंगे। ज़िम्मेदारी नियमों से नहीं मन से मानेंगे तो ही पर्यावरण बचेगा।

-जितेन्द्र सिंह 'सोम',
निराधनू (झुन्झुनू) राजस्थान

000

'विभोम-स्वर' के अप्रैल-जून 2024 अंक में छपा ज्योति जैन का रेखाचित्र 'कलई वाला' पर खंडवा में साहित्य संवाद तथा वीणा संवाद ने चर्चा की। इस चर्चा के संयोजक गोविन्द शर्मा तथा समन्वयक राजश्री शर्मा थे।

कलई वाले का हूबहू चित्रांकन

प्रस्तुत रेखा चित्र में लेखिका ने कलई वाले का हूबहू चित्रांकन कर दिया है। प्रारंभ से ही रेखाचित्र रोचक लगने लगता है और एक साँस में ही पाठक संपूर्ण रेखाचित्र को पढ़ने के लिए लालायित हो उठता है।

चित्रात्मक शैली का प्रयोग लेखिका ने इस अनूठे ढंग से किया है कि उक्त रेखाचित्र धारावाहिक की मानिंद ही पाठकों के हृदय के पटल पर गहरी छाप छोड़ देता है।

अंत में आँखें भीग उठती हैं। लेखिका ने एक ऐसे कलई वाले की मार्मिक कहानी का चित्रांकन किया है जिसकी पत्नी का निधन हो चुका है और जिसकी आठ वर्षीय बेटी उसके साथ रहती है। अपनी बेटी को लोगों की कुदृष्टि से बचाने के लिए कैसे एक पिता उसे बेटे का जामा पहना कर अपने साथ रखता है यह विवशता इस रेखाचित्र के द्वारा बख़ूबी समझी जा सकती है।

रेखा चित्र के पात्र पिता, बेटी और वे सभी महिलाएँ जो बर्तन कलई कराती हैं, एकदम जीवंत से प्रतीत होते हैं। कहानी के अंत में पाठक का हृदय द्रवित हो जाता है। उस पिता की मजबूरी पर रोना आता है जिसे अपनी बेटी को बेटे के रूप में रखना पड़ रहा है। यह वाक्य पढ़कर नयन सजल हो उठते हैं-

"शुरू-शुरू में मैं जिस जगह जाता था तब यह बेटी ही थी। लेकिन वहाँ के कुछ पुरुषों की निगाहों में मेरी बेटी के लिए अजीब और गंदे भाव देखे। तब से मैं चौकन्ना हो गया और उसके बाद वह इलाका छोड़ दिया। दूसरे इलाकों में जाना शुरू किया तो इसे बेटे की तरह ही रखा।"

रेखाचित्र के अंत में ही उस बेटी का ख़ामोश रहने का कारण पाठकों को ज्ञात हुआ। जहाँ पिता इतना बातूनी है वहीं उसके बेटे की ख़ामोशी का राज़ जानकर पाठकों का हृदय दया, करुणा और ममता से भर उठता है। रेखाचित्र उत्कृष्टता के पैमाने पर खरा उतरता हुआ प्रतीत हो रहा है। चाहे वह पात्रों का चरित्र-चित्रण हो, कथानक हो या संवाद शैली हो, रेखाचित्र प्रत्येक दृष्टि से अनुपम अप्रतिम एवं प्रशंसनीय है।

-प्रीति चौधरी "मनोरमा",
जनपद बुलंदशहर, उत्तरप्रदेश

000

चरित्र चित्रण सुंदर व मनमोहक

प्रस्तुत रेखाचित्र कलई वाला में कहानीकार ज्योति जैन ने आज से चालीस-पचास वर्ष पूर्व मोहल्ले में घूमने वाले कलई वाले का हुबहू रेखाचित्र पाठकों के समक्ष अंकित किया है। रेखाचित्र में महिलाओं के दैनिक क्रियाकलापों का इतना सटीक चित्रण किया है जो पढ़ते समय वस्तुत: पाठकों के समक्ष चलचित्र की तरह घूमता रहता है। कलईवाले की बेटी को बेटा बनाकर हर पल अपनी आँखों के समक्ष रखने की वास्तविकता उजागर होती है तो रेखाचित्र अत्यंत मार्मिक बन पड़ता है एवं पाठक सोचने को मजबूर हो जाता है कि उस ज़माने में बेटियों की अस्मिता सुरक्षित नहीं थी। भाषा की दृष्टि से सामान्य बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है जो स्थिति के अनुरूप जान पड़ती है। रेखाचित्र में कला-कौशल व चरित्र चित्रण भी सुंदर व मनमोहक है। पूरी कहानी को पढ़ते हुए मेरे बचपन का दृश्य भी नेत्रों के समक्ष घूमने लगा जब माँ व अन्य घरों की महिलाएँ भी पीतल के बर्तनों में कलई करवाती थीं। कहानीकार ने वास्तव में तत्कालीन सच्चाई को मनभावन व रोचक तरीक़े से पाठकों तक पहुँचाया है।

- मंजु बंसल 'रमा', बैंगलोर

000

कलई वाले का पूरा चित्रांकन

प्रस्तुत रेखा चित्र में ज्योति जैन ने कलई वाले का पूरा ही चित्रांकन प्रस्तुत कर दिया है। कलई वाला यह कहानी पढ़ने के बाद आँखों के सामने वह व्यक्ति अपनी पूर्ण वेशभूषा के साथ प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है। आज से कुछ वर्ष पहले गाँवों में बहुत कलई वाले घूमा करते थे और बर्तनों को चमकाना, उन्हें ठीक करना यह सब उनका काम था। पहले ज़माने में औरतें कहीं निकलती नहीं थीं। मोहल्ले में ये लोग आते तो औरतों की भीड़ लग जाती। यहाँ भी लेखिका ने हूबहू रेखांकन के द्वारा सभी पाठकों के मानस पटल पर इस कलई वाले का चित्र पूर्णत: उकेर दिया है।

शिदा कलीकर की पत्नी के निधन के बाद आठ वर्षीय बेटी को समाज की दृष्टि से बचाने के लिए बेटे के रूप में अपने साथ रखना एक बेटी के पिता की मजबूरी को दर्शाता है। एक तरफ पिता का वाचाल होना और दूसरी तरफ बेटी का मौन रहना इस डर से कहीं पता नहीं लग जाए क्या यह बेटी है। अंत बहुत ही मार्मिक दिखाया गया है। जहाँ बच्चे खेल रहे होते हैं वहीं उसका बेटा (बेटी) मैं भी खेलूँगी कह कर संबोधित करता है। तो उसकी आवाज़ से औरतें पकड़ लेती है क्या यह लड़का नहीं लड़की है। शिदा कलीकर अपनी सारी सच्चाई उन मोहल्ले वाली औरतों के सामने रख देता है। फिर बेटी और पिता गले मिलकर बहुत रोने लगते हैं। इस रेखा चित्र के सभी पात्र जीवंत लगते हैं। आज भी कहीं पुरुषों की निगाहें के वे गंदे भाव और उनके चरित्र चित्रण पर लगी हुई कालिख मानव की छोटी सोच को दर्शाता है। बहुत ही सुंदर और शिक्षाप्रद रेखा चित्र को ज्योति जैन ने प्रस्तुत किया है। हम पाठकों के समक्ष अत्यंत प्रशंसनीय, भावपूर्ण शैली से उद्धृत इस कहानी को प्रस्तुत करने के लिए ज्योति जैन को हार्दिक धन्यवाद।

-मनीषा अग्रवाल 'प्रज्ञा'
आरा, बिहार

000

पाँच दशक पीछे ले गया

रेखाचित्र कलई वाला बरबस ही पाँच दशक पीछे ले गया। पीतल के चमचमाते बर्तन रसोई की शान होती थी और उस पर कलई करवाना उसमें चार चाँद लगा देता था।

कलई वाले का हुलिया हूबहू वैसा ही चित्रित हुआ है, जैसा हम देखते थे। वह समय आँखों के सामने जीवंत हो उठा।

रेखाचित्र पढ़कर जहाँ अतीत की मधुर स्मृतियाँ सजीव हो गईं, वहीं एक भयानक सत्य से भी सामना हुआ। समय बदला, परन्तु पुरुषों की नज़र नहीं बदली, मातृहीन बेटी को इन्हीं पुरुषों की गंदी नज़रों से बचाने के लिए कलई वाला शिदा कलीकर बेटी को बेटा बनाकर साथ लिए घूमता रहता है, उसका व्यवसाय ही ऐसा है कि वह एक जगह टिककर नहीं बैठ सकता, इसलिए बेटी को साथ लेकर घूमता है।

पीपल के जिस पेड़ के नीचे उसकी अस्थायी दुकान नियमित लगती थी, वहाँ बच्चियाँ रोटा पानी खेल खेल रही थीं। उन्हें देखकर कलई वाले की बेटी भी बोल पड़ती है

कि मैं भी खेलूँगी और यहीं उसका लड़की होना जाहिर हो जाता है। मोहल्ले की औरतें जब सच्चाई जानती हैं तो सब की सहानुभूति उसके साथ हो जाती है।

सुंदर रेखाचित्र अंत में मार्मिक हो जाता है, यह अंत पाठकों को विचार करने के लिए मजबूर कर देता है कि, कब तक बेटियाँ असुरक्षित रहेंगी। पचास साल पहले के हालात आज और बदतर हो गए हैं।

इस रेखाचित्र के माध्यम से लेखिका जहाँ पाठकों को सुनहरे अतीत में ले गई हैं, वहीं बड़ी कुशलता से एक ज्वलंत सामाजिक समस्या को भी उठा दिया है, जिसके लिए पाठक सोचने पर मजबूर हो जाता है।

अनूठा विषय, सरल किंतु प्रभावी भाषा, तत्कालीन जीवन शैली का रोचक ढंग से सजीव चित्रण पाठक को बाँध लेता है। लेखिका को बधाई, शायद ही कोई पाठक हो जो कलई वाले के साथ अपने बचपन की गलियों में नहीं घूमा हो।

-शशि शर्मा, इंदौर

000

एक उम्दा विषय पर लिखा रेखाचित्र

प्रस्तुत रेखाचित्र कलई वाला को पढ़ा तो मानों बचपन के समस्त फेरी वालों का रेखाचित्र मानस पटल पर अंकित हो गया। लेखिका ने रेखाचित्र के माध्यम से पचास साठ साल पहले के चित्रों को उकेरा हैं, जब कलई वाले बर्तनों का चलन था। रेखाचित्र के माध्यम से लेखिका ने अतिमध्यम वर्ग के जीवन को एक चलचित्र की तरह आँखों में उभार दिया है। ताँबे, पीतल के बर्तनों के चमकाने की होड़, महिलाओं का उत्साह गली मोहल्ले में उत्सव जैसी बात, रेखाचित्र को जीवंत कर देती हैं। कलई वाले की वेशभूषा उसका बड़बोलापन और बिना माँ के बच्चे का मार्मिक चित्रण यह सोचने पर मजबूर कर देता है, दुनिया में कितने ही ऐसे लोग हैं जो मासूमियत से खिलवाड़ करते हैं। कितने ऐसे लोग हैं जो दर्द और पीड़ा से भरे हैं, और कितने ऐसे लोग हैं जो साथ, सहयोग और सहानुभूति के लिए खड़े हैं। भावनात्मक दृश्य को चित्रित करता ये रेखाचित्र "कलई" समाज में फैली गंदगी की कलई खोलता है। एक उम्दा विषय पर लिखा रेखाचित्र पाठकों को अंदर तक झकझोरता है। सादर धन्यवाद हम सबके बीच इस नई विधा और विषय को लाने के लिए।

-कविता पगारे 'मुक्ता'

बलवाड़ा

000

कलीगर का चित्रण

रेखाचित्र 'कलईवाला' में लेखिका ने घूम घूम कर बर्तनों में कलई करने वाले एक कलीगर का चित्रण किया है लेखिका ने अपने बचपन के संस्मरण के आधार पर उस कलई वाले का नाम भी याद करने का प्रयास किया है। कुछ बातें उन्हें याद नहीं है जैसे कि वह कहाँ का था... यह संस्मरण उस कलई वाले की जीवन की सच्चाई पर आधारित है। शिदा कलीकर के साथ में उसका आठ वर्षीय बालक रहता था, बाद में लोगों को पता चलता है कि वह लड़का नहीं लड़की है और वह लड़की से लड़का के रूप में क्यों रहता है उसका कारण जानकर सब नि:शब्द रह जाते हैं। सच्चाई यही है की लड़कियाँ पुरुषों की गंदी निगाहों से सुरक्षित नहीं हैं। एक पिता साथ में होते हुए भी अपनी बेटी को इसी वजह से बेटा बना कर रखता है कि लोगों की गंदी निगाह से अपनी बेटी को बचा सके। संस्मरण में देशज भाषा का प्रयोग शुरू से हुआ है और वह जँचता भी है। स्थानीय भाषा संस्मरण को रोचक भी बना रही है। कुछ शब्द हैं जैसे गुवाड़ी, रोटा-पानी आदि इन शब्दों का अर्थ समझ में नहीं आते हुए भी लेखक क्या कहना चाहती हैं समझ में आ जाता है।

शैली रोचक है जिस तरह से उन्होंने संस्मरण लिखा है आँखों के सामने पूरा चित्र उभर आता है। शिदा कलीकर के पहनावे, झोले और उसके स्वभाव... सब के बारे में बारीकी से बताया गया है। संस्मरण पढ़कर हमें भी अपने बचपन के फेरी वालों की हल्की स्मृति हो आई। पहले लोगों का जीवन बहुत सरल था, एक फेरी वाले के आने से मोहल्ले में उत्सव का माहौल बन जाता था। एक घर में काम होता था तो बाकी घरों में भी काम निकल आता था... संस्मरण पढ़कर अगर हम आज पर दृष्टि डालते हैं तो लगता है कि अब समय कितना बदल गया है सब कुछ ऑनलाइन हो गया है... बड़े-बड़े मॉल खुल गए हैं लेकिन जीवन में रस नहीं रहा। लोग अपने-अपने दायरे में सिमटे जा रहे हैं। पहले और आज के जीवन के अंतर को बहुत अच्छे से यह रेखाचित्र बताने में सक्षम हुआ है। इस रेखाचित्र से समाज के उस स्याह पक्ष को सामने लाया गया है जो अभी भी बदस्तूर चली आ रही है वह है किसी भी स्त्री जाति की ओर उठती लोगों की लोलुप निगाहें और लड़कियों की सुरक्षा का मुद्दा।

-अरुणा अग्रवाल

रायपुर छत्तीसगढ़

000

पाठकों को द्रवित कर देती है

प्रस्तुत रेखाचित्र सभी पाठकों को एक विलुप्त होती कला (पीतल के बर्तनों पर चमकदार कलई) बड़े नाटकीय ढंग से परिचित कराता है। 'शिदा कलीकर' बर्तनों पर कलई करने वाला कहानी का मुख्य चरित्र है, जो गली-गली घूमकर अपनी रोज़ी रोटी कमाता है और कोई सहारा न होने की वजह से अपने बेटे को साथ रखता है।

एक दिन सबके सामने उसका झूठ पकड़ा जाता है कि उसके साथ जो बच्चा है वह लड़का नहीं लड़की है, बच्ची ठहरी आख़िर, मुहल्ले की लड़कियों के साथ रोटा पानी खेलने को मचल जाती है।

समाज के कुछ विकृत मानसिकता वाले लोगों की बुरी नज़रों से अपनी बेटी को बचाने के लिए नायक ने उसे लड़के के वेश में रखा था। यहाँ बड़ी सुंदर पंक्ति है-दाई से पेट नहीं छिपता। सच सामने आने पर 'शिदा' और उसकी बेटी की सबके सामने कारुणिक पुकार पाठकों को द्रवित कर देती है।

कहानी में आज से पचास साल पुराने काल का वर्णन है, जब आसपास के सभी घर एक परिवार की तरह रहते थे, सबके सुख, दुख में सहभागी हुआ करते थे, तभी तो कलाई वाले कि बेटी को सभी औरतें गले लगाकर उसके आँसू पोंछती है। कहानी की समाप्ति

पर बहुत करारा व्यंग्य है -पुरुषों की गंदी कालिख को कोई कलई वाला नहीं उतार सकता। इतनी सार्थक कहानी के लिए मैं कहानीकार को बधाई देती हूँ।

-साधना शर्मा

000

पुरुष कामुकता पर तीखा प्रहार

'कलई वाला' रेखाचित्र में पुरुष कामुकता पर तीखा प्रहार किया गया है। यह इतना वीभत्स है कि एक 8-10 साल की लड़की की अस्मिता भी ख़तरे में रहती है। दूसरी और इस रेखा चित्र में नारियों की भावनाओं को भी बख़ूबी दर्शाया गया है। साँझा क्रिया-कलापों का चित्रण भी रोचक है।

शब्द जैसे भांडे, ठिया, फिक्स, रोटा पानी का प्रयोग यही दर्शाता है की भाषा शैली की कोई बंधन नहीं है। शिदा कलीकर की वेशभूषा, चेहरे का वर्णन, उसकी वाचालता, बेटी का मौन रहना, सिगड़ी का चित्रण बहुत ही रोचक है। एक बिन माँ की छोटी बच्ची के पिता की मजबूरी को देख पाठक का हृदय विचलित हो जाता है।

-ललिता अग्रवाल आशना

संबलपुर, ओड़ीशा

000

संपूर्ण घटनाक्रम घूमता रहा

रेखाचित्र 'कलईवाला' में लेखक ने कलई वाले का चित्रण करते हुए पाठकों को उसके कद, आयु, रंग, रूप से बहुत ही सहजता से परिचित करवाया, साथ ही महिलाओं के सामान्य दैनिक क्रियाकलाप, बच्चों का परिहास। पढ़ते-पढ़ते पाठक जब उस दृश्य को पढ़ (देख) रहे हैं मुस्कान चेहरे पर अपने आप खिल उठी। जब बात बेटी की आई, चिंता की लकीरें माथे पर अनुभव हुईं। समाज के घिनौने सच से परिचय पाते ही मन में पुरुषों के लिए नफ़रत होने लगी। कलईवाले की मजबूरी समझ आ गई।

बेटी का पिता समाज के साथ बहुत सँभल कर चलता है। इस रेखाचित्र में आरंभ से अंत तक कलई वाले के आस-पास ही संपूर्ण घटनाक्रम घूमता रहा और पाठक के मन के भाव उसकी बातों के अनुसार परिवर्तित हो रहे थे। भाषा शैली विषय अनुरूप है।

-अपर्णा पोद्दार 'शैलजा'

संबलपुर, ओड़िशा

000

अमूल्य यादों का झरोखा

आज जब विभिन्न धातुओं और साज-सज्जा से चमक-दमक से भरपूर बर्तन-भाँडों की भरमार है। प्रस्तुत रेखाचित्र, अवलोकन से पीतल-तांबे और मिश्र धातुओं के तरह-तरह के बर्तनों के उपयोग का वह स्वर्ण युग आज ऐसा लगता है, मानों काफी पीछे छूट गया। ज्योति जैन द्वारा इस रोचक और मार्मिक चित्रण से बर्बस ही उन दिनों की याद ताज़ा कर दी गई, मुहल्ले में घर-बाड़ों में सभी घरद्वारों में कोई तीज त्यौहार या कोई भी रस्म रिवाज़ों में दैनिक उपयोग के लिए इन पात्रों का प्रचुरता से रखरखाव होता रहा। अपने यहाँ भी जब अम्मा घर में खीर और कढ़ी एक साथ बनाती थी, तो हमारा बालमन जिज्ञासा और कौतूहल से भर जाता था कि पीतल की तपेली में छाछ, दही या कढ़ी जैसे खाद्य पदार्थ न रखने और उसके लिए कलई वाले बर्तनों का ही उपयोग सुरक्षित होते हैं, तब यह समझ से परे था।

प्रस्तुत रेखाचित्र कलईवाला में घर पर महिलाओं की रसोईघर में घटित दैनिक गतिविधियों का सटीक चित्रण दर्शन होता है। यहाँ पर निश्चय ही पाठक के समक्ष बीते ज़माने का चलचित्र घूम जाता है। यह रेखाचित्र उस समय अत्यंत ही मार्मिक स्थिति से गुज़रता है जब कलईवाले का बेटी को बेटा बनाकर अपने समक्ष रखने का राज़ उजागर हो जाता है और तब बड़ी ही मायूसी छा जाती है। रुँधे गले से अपराधबोध से ग्रस्त महसूस कर बच्ची का यह कथन :"बाबा अब कुछ नहीं करूँगी पक्का!। अब कुछ नहीं कहूँगी"। बालमनोविज्ञान और सामाजिक व्यथा की उलझन भी दृश्य में उजागर हो रहा है। पाठक को, यह तत्कालीन अनावश्यक अपराध बोध उस बालमन पर क्या नकारात्मक प्रभाव और बालविकास के पथ पर चलने वाले बच्चों के लिए एक बड़ा संकट का अहसास जान पड़ती है। तत्कालीन और आज की घटनाओं की तुलना करने की दृष्टि से देखें तो एक बारगी पाठकों को पुन: सोचने को मजबूर कर देता है कि उस गुज़रे ज़माने में भी नन्हीं कोमल बेटियों की सुरक्षा करना कितना कठिन था। रचनाकार ने प्रस्तुत चित्रण में भाषा सहज सरल और सामान्य बोलचाल की भाषा का सटीक प्रयोग किया है। वेषभूषा-पहनावा, बोलचाल जो कि परिस्थिति जन्य और उचित लगता है। यह रेखाचित्र को मज़बूती प्रदान करता है। साथ ही रचनाकार द्वारा प्रस्तुत कथ्य स्थिति के अनुरूप जान पड़ता है। रेखाचित्र में कला-कौशल व चरित्र चित्रण भी सहज- सुंदर और धाराप्रवाह है।

सम्पूर्ण कथ्य-घटनाक्रम हम जैसे पाठकों को उन पुरानी यादों का स्मरण कराता चलता है जब कलई वाला मुहल्ले में आता था और हम बच्चों की भीड़ कौतूहल वश उसे घेर लेती थी। खुले मैदाननुमा स्थान पर कलई वाला अपना बाज़ार सजाता और करतब दिखाने जैसे वातावरण को क्रिएट करता जान पड़ता था।

वात्या भट्टी, कोयले जलने की महक और कलई की चमक, चमड़े की थैली से हवा भर कर भट्टी को चेताना। गर्म कर बर्तन पर कलई का रसायन छिड़काव कर जादूगरी से पीतल को चाँदी सा चमकदार बनाना। बाड़े में काकी-अम्मा और भाभीजी द्वारा पीतल के बर्तनों में कलई करवाती तस्वीरों का पावन स्मरण। ज्योति जैन ने अद्वितीय और अद्भुत रेखाचित्र प्रस्तुत कर अमूल्य यादों का झरोखा खोल दिया। सादर साधुवाद। सादर आभार।

-डॉ. अशोक कुमार नेगी

खण्डवा मध्यप्रदेश

000

भावपूर्ण अंत

ज्योति जैन का रेखाचित्र कलई वाला एक रेखाचित्र के लगभग सभी मापदंडों पर खरा उतरता है। प्रवाहपूर्ण भाषा एवं चित्रात्मकता के साथ-साथ ही यह रेखाचित्र भावात्मक, मार्मिक किंतु फिर भी तटस्थ एवं एकात्मक रहा है। कलई वाले द्वारा समय-समय पर मोहल्ले (गुवाड़ी) में लगने वाले फेरों के माध्यम से बीते समय का महीन ताना बाना

बुना है। जिसमें दैनिक जीवनचर्या को उत्सव में बदलती महिलाएँ हैं, जो मौसी, काकी, बुआएँ हैं, आंटियाँ नहीं। प्रभावशाली रूप से यह रचना पाठकों के अंत:करण के भावों को उकेरती है और अपने दृश्यों के साथ एकात्म कर देती है। चाहे कलई वाले का गाना हो, या उसके सिगड़ी सुलगाने का वर्णन, पाठकों का दृश्य के साथ स्वत: ही तादात्म्य स्थापित हो जाता है। कहीं-कहीं पर यथासमय अनुरूप देशज शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। कलई वाले कि बेटी के रहस्य का पता चलना और उस पर मोहल्ले की महिलाओं द्वारा व्यक्त की गई प्रतिक्रिया, इस रेखाचित्र का सबसे सशक्त पहलू और इस रेखाचित्र का भावपूर्ण अंत है। जो इसे एक प्रभावी सम्पूर्णता प्रदान करता है।

-गरिमा चवरे

000

बेहतरीन अन्त

रेखाचित्र कलई वाला में कहानीकार ज्योति जैन आज से चालीस वर्ष पूर्व मोहल्ले में घूमने वाले कलई वाले का जीवंत वर्णन कर पाठकों के मस्तिष्क पटल पर पूर्णत: अंकित करने में कामयाब रहीं। स्वयं मुझे भी बचपन की यादें ताज़ा हो गई, जब कलई वाला मोहल्ले में आता था, और आवाज़ लगाता था। कहानी में हूबहू वैसा ही चित्रित किया गया है। महिलाओं की वही दिनचर्या एवं क्रिया कलाप, बच्चों का उसको घेर कर बैठ जाना कलईवाले का यथा स्थान अपनी अंगीठी जलाकर अपने कार्य को अत्यंत लगन और ख़ूबसूरती से अंजाम देना ये सभी बातें जैसे पूर्व से ही पाठक को ज्ञात हों। कलई वाले का अपनी बेटी को बेटा बनाकर हर पल अपनी आँखों के समक्ष रखने की वास्तविकता उजागर होते ही कहानी अत्यंत मार्मिक बन जाती है एवं पाठक सोचने को मजबूर हो जाता है कि उस ज़माने में भी बेटियों की अस्मिता की सुरक्षा एक पिता के लिए सबसे प्रथम कर्त्तव्य होता था। भाषा सामान्य किन्तु कहानी के उपयुक्त ही बोलचाल प्रयुक्त की गई है, पात्रों का संयोजन, कला-कौशल व चरित्र चित्रण भी अत्यंत ही सुंदर व मनमोहक है। कहानीकार प्रारंभ से अंत तक एक ही प्रवाह से पाठकों को बाँधे रखने में कामयाब रहीं। वहीं निरंतरता कहानी को ख़ास बनाती है। लेखिका ने सर्वथा भिन्न विषय पर अपनी कलम सफलता पूर्वक चलाई है। एक चलचित्र की भाँति बहुत ही सरल, सहज, मनभावन व रोचक ढंग से कहानी प्रस्तुत की गई।

-कल्पना दुबे, खण्डवा, मध्यप्रदेश

000

ख़ूबसूरत कलई

ज्योति जैन एक बहुत परिपक्व कथाकारा हैं। रेखाचित्र के अन्तर्गत आपने एक शब्द कलई को अपनी चतुर कलम से बहुत ख़ूबसूरत कलई की है। रचना का अन्त पाठक को भावुक कर देता है। यही तो बड़े लेखक की जादूगरी है। समय जब विपरीत होता है तो वह अच्छे अच्छों से वह काम करा लेता है, जो वे सोच भी नहीं पाते।

शिदा कलीकर की पत्नी के मरने के बाद इकलौती बेटी को माँ की तरह ही सँभालने की विवशता और इस कलि समय के दुमदार पुरुषों की वासनामय नज़रों से बचाने की अनिवार्यता ने उसे विवश किया कि वह अपनी बेटी को अपने कामकाज के दौरान भी साथ लेकर चले। कामकाज के दौरान किस किस की नज़रों से बचाता इसलिए उसकी बेटी को बेटा के स्वांग में रखने की सोच, उसकी चतुराई की ओर इंगित करती है। और हमें विवश करती है यह सोचने के लिए कि आज के इस क्रूर समय में मांसलता के लालची कैसे और कितने गिर चुके हैं?

किस पर विश्वास करें और किस पर नहीं आज बेटियों वाला बाप यह तय ही नहीं कर पाता। आज के इस रक्ष युग ने कम से कम पुरुष वर्ग की तो कलई खोल कर रख दी है। और इस रेखाचित्र ने भी.. रेखाचित्र का शिल्प प्रवाह और अन्त बेहतरीन बन पड़े हैं। पढ़ते हुए वाकई कलई वाले का पाठक के मन पर रेखाचित्र बन जाता है यह आपकी विशेषता है।

-श्याम सुन्दर तिवारी, खण्डवा

000

समय की विद्रूपताएँ

कलई वाला, जिसे कलईगर कहा जाता है। ज्योति जैन का एक मोहक रेखाचित्र है जिसमें वे कलईगर के जीवन की चुनौतियों के साथ उसकी इकलौती बेटी के पालन पोषण की जवाबदेही भी है। समय के साथ बेटी बड़ी हो रही है और पिता सायास उसे बेटे की तरह रख रहा है। वह अपने सफेद कपड़ों पर कलई के दौरान लगने वाले दागों को धो सकता है, बर्तन चमका सकता है पर जितने हृदय काले हों उन्हें साफ करने का माद्दा उसके पास नहीं है। समय की विद्रूपताओं को अच्छी तरह व्यक्त करने में वे सफल हुई हैं।

सचमुच एक चित्र उभारने में ज्योति जैन सफल हुई हैं।

-सुधीर देशपांडे

000

स्मृतियों को शब्द बद्ध किया है

कहानीकार ने बचपन की धुँधली यादों में बसी अपने मन-मस्तिष्क की स्मृतियों को शब्द बद्ध किया है और पाठकों को बाँधकर रखने में सफल रही है। लेखिका ने इस संपूर्ण प्रसंगों में स्वयं को प्रत्यक्षदर्शी निरूपित किया है। लेखिका अपने बचपन में, जिस गुवाड़ी में रहती थी वहाँ शिदा कलीकर घर के भांडे - बर्तन कलई करने के उद्देश्य से आता था। 'भांडे कली करा लो... पुराने नवे करा लो.... पाँच रुपये में चाहे छोटे, चाहे मोटे ..... " इस तरह के विशेष तरह की मनलुभावन पुकार के सहारे गुवाड़ी की महिलाओं को भांडे कलई करवाने के लिए प्रेरित करता। उसकी पत्नी का निधन हो चुका था अत: अपने आठ वर्षीय बेटे के साथ गुवाड़ी में अपने रोज़गार के लिए आता था। वहाँ लेखिका और उसकी बचपन की सखी सहेलियाँ लड़कियों के मनमाफ़िक खेल खेलने में आनंदित रहतीं थीं। एक दिन शिदा कलई वाले का बेटा भी उनके साथ खेलने की अपनी तीव्र इच्छा प्रकट करता है और कहता है कि मैं भी तुम लोगों के साथ खेलूँगी। लड़के के मुख से "खेलूँगी" शब्द सुनकर लेखिका और उनकी सखियाँ उसका उपहास करते हैं। लेकिन गुवाड़ी की महिलाओं को संदेह हो जाता है और कलई

वाले से प्रश्न करती हैं कि क्या कहीं यह लड़का सचमुच लड़की तो नहीं है ? महिलाओं की आशंका सही साबित होती है, जब कलई वाला असलियत बखान करता है। वह बताता है कि बेटी की माँ के मरने के बाद इसकी देखभाल की पूरी ज़िम्मेदारी मेरी थी इसलिए जहाँ भी मैं कलई करने हेतु रोज़गार के लिए जाता वहाँ मेरी बेटी मेरे साथ ही रहती। शुरू-शुरू में जहाँ भी जाता तो बेटी ही थी लेकिन वहाँ के कुछ पुरुषों की निगाहों में मेरी बेटी के लिए अजीब और गंदे भाव देखे। तब से मैं चौकन्ना हो गया और उसके बाद मैंने वह इलाका छोड़ दिया। दूसरे इलाक़ों में जाना शुरू किया तो इसे बेटे की तरह ही रखा। इसीलिए इसे बोलता हूँ कि कम बोला कर। पर आज आपकी बेटियों को देखकर यह अपने आप को नहीं रोक पाई। और कहते कहते उसका गला रुंध गया और आँखों से आँसू बहने लगे। रेखाचित्र के समापन अंश में लेखिका ने कटुसत्य को चित्रित करते हुए मर्मस्पर्शी शब्दों में कुछ इस तरह लिखा है "लेकिन मुझे इस बात की तकलीफ़ है कि तब से लेकर अब तक या उसके भी पहले से लेकर अब तक भी, कई पुरुषों के चरित्र की कालिख आज भी बरकरार है। कोई कलई वाला उसे चमका नहीं सकता।" कलई वाला रेखा चित्र द्वारा लेखिका ने कम उम्र लड़कियों के प्रति पुरुषों की घिनौनी मनोवृत्ति को रेखांकित किया है। पुरुषों की इस तरह की घृणित नज़रों को दर्शाने के लिए लेखिका ने कथा को अपने शब्दों में पिरोया है।

-राकेश दवे, नासिक

000

समाज में व्याप्त एक निकृष्ट सोच

तारीफ, रचनाकार की पहले ही कर रहा हूँ, जिन्होंने बहुत कम शब्दों में समाज में व्याप्त एक निकृष्ट सोच को उजागर किया है। रेखाचित्र का मुख्य पात्र शिदा कलईकार है जो अपने साथ बिन माँ के एक आठ बरस के बच्चे को लेकर अपनी रोज़ी रोटी पर नित्य फेरी लगाता है।

उस बच्चे को शिदा ने बोलने की मनाही कर रखी थी लेक़िन एक दिन कुछ बच्चियों को रोटा-पानी खेलते देख उसका बाल मन व नैसर्गिकता जाग उठी व वह बोल उठी, "मैं भी खेलूँगी"। बस यही वाक्य / घटना कहानी का क्लाइमेक्स है। लोगों के पूछने पर शिदा सारी सच्चाई बयाँ कर देता है की क्यों उसने उस बिन माँ की बच्ची को लड़के की पोशाक पहनाई। बहुत ही रोचक ढंग से कहानी आगे सरकती जाती है।

ऐसा ही एक सच्चा किस्सा है मिस्र का। मिस्र के लक्झर शहर में 43वर्ष तक एक महिला सीसा-अबू-डाउह पुरुष वेष में रही। जिसे वहाँ की सरकार ने "आदर्श माँ" के सम्मान से विभूषित किया था, तब वह 64 की थी। महज 20 वर्ष की आयु में, जब वह गर्भवती थी तब ही वह विधवा हो गई।

बेटी हुदा को जन्म देने के बाद स्थिति उसके लिए विकट हो गई क्योंकि उनके समाज में महिला के लिए बाहर निकलकर किसी भी प्रकार का काम करने की सख्त मनाही थी। केवल भिक्षा वृत्ति के किंतु बेटी की परवरिश कैसे करूँ इस बात को सोच-सोच कर वह सिहर उठती।

भीख तो मैं नहीं माँगूँगी यह ठानकर उसने पुरुषों जैसी वेशभूषा (ढीली ढाली) पहनकर निकल पड़ी मैदान में। बूट पॉलिश से लेकर सीमेंट की बोरियाँ उठाने जैसे कठिन कार्य किये व आजीविका कमाई साथ ही अपनी आइडेंटिटी को छिपाए रखने की चुनौती भी। ज्योति जैन को बधाई।

-मोरेश्वर राव मंडलोई

000

उजागर सत्य

रेखाचित्र के वाबस्ता एक नियति और उसके विरुद्ध जूझने की वैकल्पिक आयोजना है। कमोबेश इस सत्य को उजागर न होने देना एक असहाय व उपेक्षित समाज के लिए मजबूरी है। निर्लिप्त व एकाकी मन के अंतस को उजागर करती यह कहानी उस पक्ष का सत्य उजागर करती है जिसके प्रतिनिधि आदिकाल से अद्यतन सदैव उपस्थित है और इस विकृत मानसिकता को रोकने का कोई उपाय उपलब्ध नहीं है। शोषित व वंचित समुदाय ही नहीं, लिंगभेद से उपजा या अवसाद आज भी और हर वर्ग के लिए एक अनुत्तरीय प्रश्नचिह्न है। लेखिका के इस कथानक ने इसी भावना को शिद्दत से झंझोड़ा है।

-विश्वास सोनी

000

सटीक रूप से प्रस्तुत

ज्योति जैन द्वारा लिखे रेखाचित्र "कलई वाला" पढ़कर कई बार ऐसा लगा जैसे उस समय काल में चले गए हैं जहाँ कभी यह सब समाज का हिस्सा हुआ करता था। किसी भी कहानीकार के लिए पाठकों को अपने शब्दों में बाँध लेना उसकी सफलता कहलाती है जिसमें ज्योति जैन पूरी तरह से सफल हुई हैं।

समाज की मानसिकता पर कुठाराघात करते हुए कलई वाला के रूप में एक पिता के दर्द को जितना अच्छे से ज्योति जैन ने दर्शाया है वह हृदय स्पर्शी मार्मिक और बहुत अंदर तक प्रभावित करने वाला है। लड़की की सुरक्षा के लिए, उसे अपने साथ लेकर घूमना, उसे लड़के के रूप में रखना, उसे चुप रखना, एक ग़रीब पिता की मजबूरी का अच्छा विवरण प्रस्तुत करती है, साथ ही उसके द्वारा अपनाए गए सुरक्षा के कदम बहुत ही स्वाभाविक लगे। शब्द विन्यास, भाषा शैली सब उत्तम है। लेकिन कहानी में कई जगह पर लेखकीय प्रवेश दिखता है। गूगल अंकल के विषय पर बात करते समय का लेखकीय प्रवेश इसे आत्मकथा जैसा स्वरूप देता हुआ प्रतीत होता है। कहानी का मुख्य कथानक कहानी के उत्तरार्ध के भी उत्तरार्ध में ही दिखाई देता है, जिस कारण कहानी का पूर्वार्ध तत्कालीन परिस्थितियों का विस्तार मात्र ही प्रतीत होता है। जिस तरह लेखिका ख़ुद के विचारों को कहानी के अंत में जोड़ती है उससे यह कहानी उपदेशात्मक होती हुई प्रतीत हुई, तथा इसके विषय की गंभीरता और गहराई के प्रभाव को कम करती हुई दिखाई दी।

एकल, ग़रीब पिता की जवान होती बेटी की चिंताओं को बहुत सटीक रूप से प्रस्तुत करने के लिए लेखिका को बहुत-बहुत बधाई।

-संजय आरजू 'बड़ौतवी'

000

जीवन का आंतरिक संसार केवल लेखक ही अपनी संवेदनशीलता और अंतरात्मा से व्यक्त कर पाता है

कहानीकार-उपन्यासकार उर्मिला शिरीष से आकाश माथुर की बातचीत

उर्मिला शिरीष
503 आर्किड, रुचि लाइफस्केप,
जाटखेड़ी, होशंगाबाद रोड, भोपाल-
462038 मप्र
मोबाइल- 9303132118
ईमेल- urmilashirish@hotmail.com

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, सीहोर,
मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

प्रकाशित कहानी संग्रह- नाच-गान, बिवाईयाँ तथा अन्य कहानियाँ, उर्मिला शिरीष की श्रेष्ठ कहानियाँ, दीवार के पीछे, मेरी प्रेम कथाएँ, ग्यारह लंबी कहानियाँ, लकीर तथा अन्य कहानियाँ, पुनरागमन, निर्वासन, रंगमच, केंचुली, मुआवज़ा, वे कौन थे, कुर्की और अन्य कहानियाँ, शहर में अकेली लड़की, सहमा हुआ कल।

उपन्यास- ख़ैरियत है हुज़ूर, चाँद गवाह।

जीवनी- बयावाँ में बहार (गोविन्द मिश्र की जीवनी), साक्षात्कार- शब्दों की यात्रा के साथ, संपादित कहानी संग्रह- ख़ुशबू, धूप की स्याही, संपादित पुस्तकें- प्रभाकर श्रोत्रिय- आलोचना की तीसरी परम्परा, हिन्दी भाषा एवं समसायिकी, सृजनयात्रा गोविन्द मिश्र, चित्रा मुद्गल : सृजन के विविध आयाम।

सम्मान/ पुरस्कार- मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी का अखिल भारतीय मुक्तिबोध पुरस्कार, कमलेश्वर कथा सम्मान, रामदास तिवारी, कृष्ण प्रताप कथा सम्मान, शैलेष मटियानी चित्रा कुमार कथा सम्मान, निर्मल पुरस्कार, डॉ. बलदेव मिश्र पुरस्कार, वागीश्वरी पुरस्कार, समर स्मृति साहित्य पुरस्कार। फैलोशिप- मानव संसाधन विकास मंत्रालय, संस्कृति विभाग, भारत सरकार द्वारा 1995 में जूनियर फैलोशिप। रिसर्च एवार्ड-यू.जी.सी. न्यू दिल्ली द्वारा स्वीकृत रिसर्च अवार्ड के अन्तर्गत भारतीय उपमहाद्वीप में स्त्री का संघर्ष तथा उसकी बदलती हुई छवि, आधुनिक कथा साहित्य के संदर्भ में विषय पर शोधकार्य।

सम्प्रति- सेवानिवृत्त प्राध्यापक, संयोजक- स्पंदन भोपाल।

आकाश- मेरा पहला सवाल यह है कि इन दिनों आपकी कहानियाँ कम आ रही हैं। आपका पिछला उपन्यास आये हुए भी काफी समय बीत गया है। इसका क्या कारण है?

उर्मिला शिरीष- आपका कहना बिल्कुल सही है। मार्च 2003 से मेरे जीवन में जिस तरह की परिस्थितियाँ बनी उसमें मेरा लिखना पढ़ना दोनों ही बंद हो गया था। पहले मेरी बायपास सर्जरी उसके बाद जुलाई में शिरीष जी का जाना मेरे लिए सबसे बड़ा वज्रपात था। अकल्पनीय घटना जिसने मेरे और बच्चों के जीवन को ख़त्म-सा कर दिया था। शिरीष जी का मेरे साहित्य के साथ गहरा जुड़ाव था। बस किसी तरह स्वयं को बचाकर जो भी मुझसे और बच्चों से जुड़े शिरीष के सपने है उनको साकार करना है स्वयं को किसी तरह खड़ा करने की कोशिश कर रही हूँ इसीलिए न कहानियाँ, न ही उपन्यास आ पाया।

आकाश- आप लगातार अपनी संस्था और लेखन से साहित्य को पोषित कर रही हैं। लंबे समय से आप साहित्य से जुड़ी हैं। आप मध्यप्रदेश के साहित्य को किस स्थिति में देखती हैं?

उर्मिला शिरीष- आकाश जी यह सही है कि लेखन के क्षेत्र में आये हुए मुझे लगभग चार दशक हो गए हैं। लगातार साहित्य के क्षेत्र में टिके रहना, लिखते रहना जबकि मेरे पास न कोई पत्रिका थी न कोई संस्था या संगठन की सदस्यता न किसी विचारधारा विशेष का जुड़ाव बस एकमात्र मेरा लेखन ही मेरा आधार स्तम्भ था। संस्था (स्पंदन संस्था भोपाल) तो 2009 में अस्तित्व में आई जब हमने इसके बैनर तले प्रोग्राम करने आरम्भ किए, साथ ही पुरस्कार भी आरम्भ किए। संस्था का योगदान मैं बहुत विनम्रता से कहना चाहती हूँ कि इस मायने में रहा कि हमने केवल और केवल साहित्य तथा कलाओं को महत्त्व दिया। किसी विचारधारा, संगठन या वाद को हमने हमेशा अलग ही रखा क्योंकि साहित्य ही हमारे लिए सर्वोपरि था। हर विचारधारा और संगठन के लेखक स्पंदन के मंच पर आते रहे हैं रचना पाठ, पुस्तक चर्चा, सम्मान समारोह

व्याख्यान सभी आयोजनों में पाठकों की भरपूर उपस्थिति रहती थी। मध्यप्रदेश तो साहित्य का गढ़ रहा है। मध्यप्रदेश की साहित्यिक संस्थाओं चाहे वे शासकीय हो या निजी साहित्य के लिए बहुत शानदार काम किया है। मध्यप्रदेश के साहित्यकार वैश्विक पटल पर छाये हुए हैं। उनके साहित्य की विश्व में चर्चा होती है और वे पढ़े तथा सराहे जा रहे हैं।

आकाश- भोपाल का दबदबा साहित्य में बढ़ा है। जिसमें आपकी संस्था की भी सहभागिता है। ये सफर भोपाल के साहित्यकारों और संस्थाओं ने कैसे तय किया।

उर्मिला शिरीष- भोपाल का दबदबा साहित्य में हमेशा से रहा है। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाने वाले साहित्यकार शायर भोपाल में रहे हैं। खुशी की बात यह है कि हर नई पीढ़ी ने भोपाल की समृद्ध साहित्य परम्परा तथा विरासत को आगे बढ़ाया है। सरकारी संस्थानों के अलावा यहाँ की जो पुरानी और प्रतिष्ठित साहित्यिक, कला, संस्थाएँ हैं उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में महान् योगदान दिया है। साहित्यिक प्रोग्राम करना, पुस्तक चर्चा, रचना-पाठ सम्मान समारोह आदि निरंतर आयोजित होते रहते हैं। कई राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा आयोजित साहित्यिक समारोहों में ही मैं बड़े-बड़े साहित्यकारों से मिली थी। स्पंदन संस्था की स्थापना 2009 में हुई थी। पर सम्मान समारोह तथा राष्ट्रीय स्तर की साहित्यिक गतिविधियाँ दो हज़ार नौ से लगातार हम लोगों ने की। भोपाल की साहित्यिक संस्थाओं में ज़बरदस्त कलानुराग, वैश्विक दृष्टि, अनुवासन तथा प्रतिबद्धता है। उसी भावना तथा सिद्धान्त ने यहाँ की संस्थाओं को उस संस्कार में ढाला जो निरन्तरता में विश्वास रखता है। यही कारण है यहाँ के साहित्यकार तथा संस्थाएँ लगातार साहित्य को समृद्ध कर रही हैं। मध्यप्रदेश में कई अंतर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थान हैं जो अपनी महान् साहित्यिक परम्पराओं को बनाये रखने के लिए जानी जाती हैं।

आकाश- हम आपकी 'स्पंदन' संस्था, भोपाल के बारे में भी जानना चाहेंगे इसकी शुरुआत कैसे हुई? आपकी संस्था पहले कम अवार्ड देती थी। अब अवार्ड की संख्या बढ़ी है।

उर्मिला शिरीष- जैसा कि मैंने बताया कि 'स्पंदन संस्था' ललित कलाओं को समर्पित संस्था है। साहित्य और कलाओं के अंतर्संबंध को हमारे यहाँ एक मजबूत सेतु के रूप में देखा जाता है। कलाओं की आवाजाही साहित्य और कला की दुनिया को वैविध्य से भरती है। सौन्दर्य बोध को न सिर्फ फैलाती है, बल्कि चेतना को उसकी विराटता से आलोकित भी करती है। भोपाल में मैं साहित्यिक प्रोग्रामों में जाती थी कई बार यह देखकर दु:ख होता था कि कोई बहुत बड़ा साहित्यकार आया है, पर चूँकि वह दूसरे लेखक संगठन या विचारधारा का है इसलिए लोग उसे सुनने नहीं आएँगे या उस मंच पर नहीं जाएँगे, तब हम लोगों ने निश्चय किया कि एक ऐसी संस्था बनायी जाये जो सिर्फ साहित्य और कलाओं के लिए समर्पित होगी। विचार जोखिम भरा था पर बहुत मेहनत के बाद कहूँ कि ईमानदारी के साथ इसकी शुरुआत के कारण सभी विचारधारा के, संगठन के साहित्यकार आते रहे हैं। ये हमारा सौभाग्य था कि स्पंदन संस्था के ईमानदार प्रयासों को सफलता मिली और आप जानते ही है कि आज स्पंदन संस्था की अपनी एक पहचान है।

जहाँ तक पुरस्कारों का सवाल है। एक लेखक सभी के साथ जुड़ा होता है। पत्रिका, आलोचना, कविता, कहानी, उपन्यास, अन्य कलाएँ इसलिए अवार्ड की संख्या भी बढ़ा दी थी। हम लोग विभिन्न विधाओं में सात पुरस्कार देते हैं।

युवाओं के लिए भी एक पुरस्कार है चाहे वह किसी भी विधा में सृजनरत क्यों न हो। स्पंदन संस्था अपनी कार्यशैली को लेकर निष्पक्षता को लेकर, साहित्य और कलाओं के प्रति अपनी विश्वसनीयता को लेकर प्रतिबद्ध है। साहित्य जगत् में वह अपने सिद्धान्तों पर चलती रहेगी। मुझे मालूम है कि इसके लिए मैंने बहुत लोगों की नाराज़गी भी झेली है और कीमत भी चुकायी हैं, पर मुझे संतोष है कि हम अपने लक्ष्य से कभी भटके नहीं। मुझे विश्वास है कि भविष्य में भी स्पंदन संस्था की यह यात्रा यूँ ही जारी रहेगी।

आकाश- स्पंदन संस्था लेखन के साथ ही अन्य विधाओं के कलाकारों को भी अवार्ड देती है। कलाओं की एक दूसरी विधा में आवाजाही को आप किस तरह देखती है और क्यों ज़रूरी है?

उर्मिला शिरीष- आप पूरे साहित्य और कलाओं के इतिहास को उठाकर देखेंगे तो पायेंगे कि साहित्य और कलाओं का गहरा संबंध रहा है। कहानी, उपन्यास, नाटक, रंगमंच, चित्रकला, मूर्तिकला या नृत्य या गायन-वादन सभी तो हमारी मूलभूत आत्मवृत्तियों को आनंद देने, स्वयं को अभिव्यक्त करने, मनुष्य समाज को परस्पर जोड़ने और भावों के संसार को अलग-अलग माध्यमों से व्यक्त करने का माध्यम रही हैं। मुझे यह बेहद खूबसूरत और महत्वपूर्ण बात लगती है कि कलाओं का परस्पर संबंध तथा एक-दूसरे के अंतप्रदेश में आवाजाही करने का प्रयोजन हमेशा सुंदर और विविधतापूर्ण रहा है। संस्कृत साहित्य को पढ़िये या हिन्दी साहित्य वह कितने रूपों में कहाँ-कहाँ दिखाई नहीं देता है। साहित्य का महाविस्तार इन कलारूपों में देखा जा सकता है। हालाँकि इस पर बहस भी होती रही है कि कला कला के लिए है या कला जीवन के लिए है जो साहित्य में शब्दों के माध्यम से लिखा जाता है वही सब यानी मनुष्य समाज के बारे में अन्य कलाओं में प्रतिबिम्बित होता है। हमारी सभ्यता और संस्कृति की झलक कितने कला रूपों में दिखाई देती है।

इसलिए ज़रूरी है कलाओं की परस्पर आवाजाही बनी रहे ताकि हम एकांकी मार्ग पर न चलें। जब लिखते-पढ़ते हुए मन भर जाता है तब नाटक देखना अच्छा लगता है। चित्र तथा मूर्तियाँ देखना अच्छा लगता है। नृत्य देखकर मन आनंदित हो जाता है। आप देखिए गायन-वादन में भी हमारा साहित्य है। साहित्यिक रचनाओं पर केन्द्रित नृत्य की प्रस्तुतियाँ होती हैं। कई बार उपन्यास या कहानियाँ जब नाट्य

रूप में प्रस्तुत होती है तो ज़्यादा प्रभावशाली बन पड़ती हैं या फिल्मों के माध्यम से वही कृति एक व्यापक समाज के पास पहुँच जाती है। मुझे हमेशा से ये तमाम कलाएँ आकर्षित करती रही हैं एक ज़माने में रेडियो नाटक मेरी कमज़ोरी थे तो मैं साहित्य के बारे में इन सभी कलाओं को आवश्यक मानती हूँ। कलाओं का समन्वय मन, हृदय, मस्तिष्क, बुद्धि को अपने-अपने ढंग से पोषित और पल्लवित करता है।

आकाश- स्पंदन आपकी संस्था है, लेकिन शिरीष जी की स्पंदन के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका थी। अब उनकी कमी में स्पंदन संस्था कैसे आगे बढ़ेगी और हम स्पंदन को कब स्पंदित होते देखेंगे?

उर्मिला शिरीष- स्पंदन संस्था शिरीष जी की मेहनत और समर्पण का परिणाम है। मेरी छोटी बहिन गायत्री जो स्वयं बहुत अच्छी चित्रकार है इसके बनने में उसकी भूमिका भी महत्वपूर्ण है। इसमें क्या-क्या प्रोग्राम होना चाहिए यह सब हमने मिलकर तय किया था, लेकिन पुरस्कार शुरू करने का विचार शिरीष जी का था। डॉक्टर होने के बावजूद साहित्य में उनकी गहरी रूचि थी और वे पढ़ते बहुत ज़्यादा थे तो साहित्य समाज के साथ उनकी व्यापक मित्रता हो गई थी। हर आयोजन में वे साथ रहते थे। कार्ड बाँटने से लेकर प्रोग्राम समाप्त होने तक सारी व्यवस्थाएँ देखना। वे सारे आयोजना मन से करते थे। उन्होंने हमेशा मन से काम किया था। और आपने कभी नहीं देखा होगा कि वे मंच पर बैठे हैं सबसे अख़िरी वाली कुर्सी पर बैठते थे। उनका जाना तो हमारे लिए पहाड़ का टूटना है। उनकी अनुपस्थिति को फिलहाल मैं शब्दों में व्यक्त भी कर पा रही हूँ। पर स्पंदन के साथ उनका जुड़ाव था तो उनके जुड़ाव को उनके सपने को पूरा करना मेरा तथा मेरे बेटों का सपना है। देखिए कब कैसे हम लोग स्पंदन के प्रोग्रामों शुरू कर पाते हैं। मानसिक रूप से स्थिर होते ही स्पंदन के कार्यक्रम शुरू करने की कोशिश करूँगी।

आकाश- जब आपने लेखन शुरू किया, तब और अब के स्त्री लेखन में क्या अंतर है। अब और तब के स्त्री लेखन में क्या सुविधा और क्या परेशानी आई है?

उर्मिला शिरीष- जब मैंने लेखन शुरू किया था तब मैं सचमुच नहीं जानती थी कि साहित्य के भीतर क्या खेमेबाजी है? कौन किस विचारधारा का है और साहित्य को भी खाँचों में बाँटकर देखा जाता हैं क्योंकि मैं तो बचपन से ही पढ़ाकू थी मतलब मैं समान रूप से लेखक लेखिकाओं को पढ़ती थी। तत्कालीन पत्रिकाओं में लेखिकाओं की कहानियाँ, उपन्यासिकाएँ उनके फ़ोटो बग़ैरह देखकर मैं प्रभावित होती थी, पर मेरे मन में दोनों को लेकर कोई भेद नहीं था। तब मैं अक्सर पढ़ा करती थी कि स्त्री लेखन केवल मध्यमवर्गीय समाज, परिवार तथा व्यक्तिगत अनुभवों तक सीमित है। या आलोचना के क्षेत्र में उसे वह स्थान नहीं दिया जाता है जो उसे मिलना चाहिए। आलोचक स्त्री लेखन को हाशिए पर रखते हैं। चूँकि मेरी पसंद अलग थी मेरे पसंदीदा लेखक थे और मैने स्वयं को भी कभी इस तरह के दायरे में नहीं बांधा था तो मेरे लिए इस तरह से सोचना थोड़ा अजीब-सा लगता था। लेकिन आज स्त्री लेखन न हाशिए पर है न आलोचना के क्षेत्र में कमतर है। विषय वैविध्य और संख्या की दृष्टि से आज का स्त्री लेखन लेखन की समान श्रेणी में ही आता है। एक साथ तीन पीढ़ियाँ लिख रही हैं। हर विषय पर लिख रही है तो बहुत समृद्ध हुआ है। डोमीनेट भी कर रहा है। पिछले दशक में स्त्री कथाकारों की जितनी बड़ी संख्या में रचनाएँ आई हैं वह अपने आप में एक उपलब्धि है।

तब पत्रिकाओं या पेपरों में ही साहित्यिक रचनाएँ छपा करती थी। प्रकाशन संस्थान भी उतने नहीं थे जितने आज है। आज सोशल मीडिया का समय है कोई भी कृति आती है तो सोशल मीडिया पर भी उसका तेज़ी से प्रचार हो जाता है। आलोचना का क्षेत्र भी विस्तृत हुआ है। ऑनलाईन गोष्ठियाँ हो रही हैं जिसमें आप घर बैठे-बैठे साहित्य की चर्चा कर और सुन सकते हैं। उसमें शामिल हो सकते हैं। व्यक्तिगत रूप से मैं बताऊँ तो मुझे न कल कोई असुविधा या परेशानी थी न आज है। मेरे परिवार का माहौल हमेशा मेरे लिए सुविधाजनक और अनुकूल रहा था। हाँ मेरी अपनी व्यवस्तताएँ, नौकरी, बच्चों की परिवरिश, साहित्यिक आयोजन आदि में भागीदारी रही है वह अलग बात है, लेकिन लिखने-पढ़ने और आयोजनों में शामिल होने को लेकर कभी कोई परेशानी नहीं हुई। लेखन के लिए एक अलग तरह का माहौल होता है जो लेखक स्वयं भी बनाता है और परिवार में भी बनाया जाता है। दोनों में चयन आपको करना पड़ता है कि प्राथमिकता किसे देना है। लेखन से न कल जीविका चलती थी न आज चलती है। एक दो अपवाद छोड़ दें तो लेखन केवल लेखक का एकान्तिक श्रमसाध्य रचनात्मक सफ़र और साधना है जिस पर केवल और केवल लेखक को ही चलना पड़ता है।

आकाश- स्त्री स्वतंत्रता को लेकर खूब लेखन हो रहा है। क्या स्त्री विमर्श अब देह की स्वतंत्रता की ओर जा रहा है?

उर्मिला शिरीष- स्त्री स्वतंत्रता के साथ भी वही हुआ जो स्त्री विमर्श को लेकर हुआ यानी बहुत सीमित दायरे में देखकर चर्चा करना। स्त्री स्वतंत्रता के मायने क्या है? क्या उसकी वैचारिक स्वतंत्रता रहन-सहन जीवन शैली। पुरुषों के समान व्यवहार। शराब सिगरेट पीना, खुले कपड़े पहनना... मैं तो यही सारे जुमले सुनती हूँ स्त्री स्वतंत्रता के नाम पर या इस तरह का जीवन जीने वाली स्त्रियों को स्वतंत्रता के साथ जोड़कर खारिज किया जाना है? उन्हें सम्मानित समाज में उपेक्षाभरी नज़रों से देखना। न ही स्त्री स्वतंत्रता केवल इतनी सी दुनिया में नहीं सिमटी है। मेरे लिए स्त्री स्वतंत्रता के मायने है, उसका वैचारिक विस्तार उसके व्यक्तित्व का विकास, उसकी दृष्टि की व्यापकता और उसके भीतर 'निर्णय लेने की क्षमता', यदि ये तमाम गुण या तत्व किसी स्त्री के भीतर नहीं है तो वह स्वतंत्रता के बारे में सोच भी कैसे पायेगी? उसकी सोच का स्वाधीन होना पूरे परिवेश का निर्माण होना। स्त्री ही वह प्राणी है, ताकत है, चेतना है, प्रेरणा है जो मनुष्य समाज की संरचना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अब स्त्री विमर्श यदि सिर्फ देह पर केन्द्रित होना चाहता है तो

उसकी उम्र बहुत लंबी नहीं होगी, क्योंकि देह विमर्श को आप कितना लंबा खींचोगे? देह विमर्श के लिए भी तो आपको उसके शारीरिक विज्ञान को मनोविज्ञान को, उसके सौन्दर्य शास्त्र को उसकी उपयोगिता को उसकी मुद्राओं को जानना समझना होगा। देह का हौआ खड़ा करके आप बुनियादी सवालों को नहीं नकार सकते। इस देह के पालन-पोषण साज-शृंगार उसके स्वरूप के लिए आपको ज़रूरी साधन, चीज़ें तथा अर्थ की ज़रूरत पड़ेगी यानी आपको सोचना तो तब भी पड़ेगा।

आकाश- प्रवासियों का अपना हिन्दी लेखन है, जो प्रभावी भी है। प्रवासियों की इस यात्रा को आप किस तरह देखती हैं।

उर्मिला शिरीष- प्रवासी साहित्यकारों का आज सारी दुनिया में मान सम्मान है, ख्याति है वे पढ़े और सराहे जाते हैं। मैं उनकी लेखन यात्रा को एक सेतु के रूप में देखती हूँ कि वे विदेश में रहकर भी अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता अपने मूल्यों तथा अपनी ज़मीन से जुड़े हुए हैं। विदेश में रहकर वे दो देशों की जीवन शैली को भली-भाँति जानते समझते हैं क्योंकि उन्हीं के बीच वे रह रहे हैं।

अक्सर कहा जाता हैं कि प्रवासी साहित्यकारों की रचनाओं को हम आलोचना की कसौटी पर नहीं कसते। यह कहना ठीक नहीं है। प्रवासी साहित्यकार भी लंबे समय से लिख रहे है। बड़ी संख्या में लिख रहे हैं। हर विधा में लिख रहे हैं। सबसे बड़ी बात कि प्रवासी साहित्यकारों के साहित्य के माध्यम से हम एक नए वैश्विक समाज को अपनी समग्रता में देख-पढ़ रहे हैं।

आकाश- हम विदेशी लेखकों के अनुवाद और प्रवासियों की रचनाएँ पढ़ते हैं। दोनों एक ही परिवेश में लिखते है। इनके बीच क्या अंतर है?

उर्मिला शिरीष- दोनों में बहुत अंतर है। विदेशी लेखक यानी पूरी तरह से किसी भी देश का लेखक। मान लीजिए रूस का, जर्मनी का, जापान का, चीन का या अन्य देशों के लेखक में पूरी तरह से अपने देश, समाज, परिवेश तथा परिस्थितियों के बारे में लिखते हैं हम उन्हें अनुवाद के माध्यम से पढ़ते हैं। पूरा रशियन साहित्य मैंने अनुवाद के माध्यम से पढ़ा है। काफ्का, ओ हेनरी, मोपासा, चेखव या अन्य विदेशी लेखकों का साहित्य बिना अनुवाद के नहीं पढ़ा जा सकता है। जबकि प्रवासी लेखक विदेश में रहकर अपनी भाषा में लिख रहे हैं। हाँ कथ्य या विषय वस्तु कहीं का भी हो सकती है वहाँ की भी और भारत का भी। वे उतने ही भौगोलिक क्षेत्र को ले सकते हैं जितने में वे रह रहे हैं, उन्हें वहाँ के जीवन, मूल्य, संस्कृति तथा अन्य चीज़ों को जानने के लिए खोज करनी पड़ती है। जन्मजात चीज़ों के साथ रहना और वहाँ रहकर चीज़ों के बारे में जानकर में अंतर रहेगा ही। हम दोनों को एक साथ मिलाकर नहीं देख सकते हैं।

आकाश- आपको प्रवासी लेखकों में कौन-कौन पसंद है।

उर्मिला शिरीष- मैंने प्रवासी लेखकों को बराबर पढ़ा है। बहुत सारे प्रवासी लेखकों के साहित्य को काफी मात्रा में पढ़ा है। उन पर लिखा भी है। तेजेन्द्र शर्मा, ज़किया ज़ुबैरी, सुधा ओम ढींगरा, ऊषाराजे सक्सेना, दिव्या माथुर, हंसा दीप आदि लेखक मेरे प्रिय लेखक हैं। मॉरीशस के लेखक भी एक ज़माने में खूब पढ़ती थी। पुष्पिता अवस्थी की कविताएँ पसंद है मुझे।

आकाश- आपने जिन प्रवासी लेखकों को अवार्ड दिए हैं उनके बारे में बताएँ वे किस तरह आपको प्रभावित करते हैं।

उर्मिला शिरीष- सुधा ओम ढींगरा तथा तेजेन्द्र शर्मा को स्पंदन प्रवासी सम्मान से सम्मानित किया था। दोनों का लेखन मुझे पसंद है। हिन्दी भाषा के लिए वे विदेश में रहकर जिस तरह काम कर रहे हैं वह प्रशंसनीय है। उनकी रचनाएँ भी मुझे पसंद है और बतौर इंसान भी।

आकाश- आप करीब तीस साल से लिख रही हैं। पहले जब आपने शुरुआत की थी तब और अब कहानी में क्या अंतर है? तीस साल पहले की भाषा और शिल्प में क्या अंतर है?

उर्मिला शिरीष- लगभग चालीस साल हो गये हैं मुझे लिखते हुए। इन चार दशकों में काफी अंतर आया हैं प्रेमचंद की परम्परा को नई कहानी के आंदोलन ने एक नया रूप दिया था उसके बाद कहानियों का स्वरूप भी बदला और कहानी की शैली भी। सीधे-सीधे ढंग से लिखी- कहानियों को सामान्य कहानी माना जाने लगा। प्रयोगधर्मिता पर ज़ोर दिया गया। अमूर्त ढंग से कहानी लिखने की एक धारा चली। सबसे ज़्यादा बदलाव आया विषय को लेकर। विषय वैविध्य ने कहानी की सृजनात्मकता को नया आसमान दिया। कहानी का विस्तार हुआ और व्यापकता भी उसमें आई। अब पाठक को आसानी से भरमाया नहीं जा सकता हैं यदि आप कोई तथ्य दे रहे हैं या वैज्ञानिक विचार का बीज उसमें है तो पाठक तुरंत गूगल पर जाकर उसकी खोज कर लेता है। जीवन के विविध रूप कहानी के प्राण होते हैं सूचनाएँ तो हम कहीं से भी प्राप्त कर सकते हैं लेकिन जीवन का आंतरिक संसार केवल लेखक ही अपनी संवेदनशीलता और अंतरात्मा से व्यक्त कर पाता है। तो संवेदनशीलता, कोमलता, भावनात्मकता और दिल तक उतरने वाली कला कहीं न कहीं कहानी से बाहर निकल गई है। अंतर्वस्तु के साथ-साथ पठनीयता का अभाव पाठकों के लिए जो कहानी को अपने जीवन का प्रतिबिम्ब मानते थे और कहानी में स्वयं को खोजते थे। वह भी कम हो गया।

आकाश- आपको कोई विषय मिलता है तो आप कैसे तय करती हैं कि यह उपन्यास होगा या कहानी?

उर्मिला शिरीष- आकाश जी, कथाकार स्वयं ही अपना विषय चुनता है कि जो विषय उसके पास है उसमें वह कहानी लिख सकता है या उपन्यास। मैंने लंबी कहानियाँ बहुत लिखी हैं। बाद में पाठकों ने कहा कि इस पर तो आपको उपन्यास लिखना चाहिए था। विषय स्वयं उपन्यास कहानियों की संभवनाओं को लेकर चलता है और उसी के अनुसार मैं तय करती हूँ। कई विषय ऐसे होते हैं जो केवल उपन्यास के लिए ही होते है, जिनमें बहुत सारी घटनाएँ होती है, कई पात्र होते हैं, उनका जीवन होता है, जीवन से जुड़ी समस्याएँ होती है जैसे- 'खैरियत है हुजूर' उसका विषय ऐसा था कि उस पर उपन्यास ही

लिखा जा सकता था और मैंने लिखा भी। अभी भी कई विषय ऐसे हैं जो उपन्यास के लिए ही है।

आकाश- आपको कभी किसी अपनी पुरानी या नई कहानी लिखते समय ऐसा लगा कि अब हमें उपन्यास बनाया जाये।

उर्मिला शिरीष- मैंने कहा ना कि मैंने कई लंबी कहानियाँ लिखी जिसमें उपन्यास की आत्मा थी, विस्तार था और उन्हें आसानी से उपन्यास का रूप दिया जा सकता था जैसे 'पुनरागमन' कहानी जिसमें पूरी संभावना थी कि मैं उसे उपन्यास का रूप दे सकती थी पर उस समय दिमाग़ में कहानी का ही भूत सवार रहता था। इसी तरह से 'तिकड़ी' कहानी को अच्छा खासा उपन्यास बना सकती थी, लेकिन उसे भी मैंने कहानी में समेट दिया। लेकिन अब कोई पछतावा नहीं। लेखक की लिखते समय एक सीमा होती है कि वह उस समय अपनी विषय वस्तु को किस तरह किस रूप में खूबसूरती के साथ लिख सकता था या लिख पाता है।

आकाश- घटना को कहानियों में कैसे बदला जाये क्या हर घटना कहानी बन सकती है?

उर्मिला शिरीष- यह हर कथाकार की लेखन शैली, कल्पना शक्ति, देखने के नज़रिए पर निर्भर करता है कि वह किसी घटना विशेष को कैसे अपनी कहानी या उपन्यास में साकार कर पाता है। विश्व की या हिन्दी की ही कितनी कहानियाँ हैं जो किसी एक छोटी घटना को बड़े व्यापक संदर्भों के साथ कहानी में चित्रित हुई है। ऐसी कहानियाँ अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों को ज़्यादा गहराई के साथ व्यक्त करती हैं। क्योंकि घटनाएँ ही हैं जो समय को, समाज को, इतिहास को और मनुष्य की सम्पूर्ण सोच को बदल देती हैं या नई धारा की तरफ मोड़ देती हैं। यहाँ उदारण देना विस्तार में जाना होगा, लेकिन सवाल आपका बहुत अच्छा है।

आकाश- हिन्दी आलोचना के अधिकतर बड़े नाम कॉलेज के प्राध्यापकों के हैं, इन आलोचनाओं से हिन्दी को नुकसान हुआ है या फायदा?

उर्मिला शिरीष- ये बहुत पेचीदा सवाल है पर मैं कहूँगी कि हिन्दी आलोचना के जितने भी शीर्षस्थ आलोचक हुए हैं और जो कॉलेज से जुड़े रहे हैं मेरा मानना है कि हिन्दी आलोचना को उससे फायदा ही हुआ है। जो लोग 'प्राध्यापकीय आलोचना' कहकर मज़ाक उड़ाते हैं- उड़ाया भी है वही लोग या उनमें से बहुत सारे लोग यह भी अपेक्षा करते हैं कि उनकी कृतियाँ कॉलेज के पाठक्रम में लगायी जाएँ। मैं मानती हूँ कि स्वतंत्र आलोचना का अपना स्वरूप, अपना अस्तित्व होना चाहिए पर ऐसा हो पाया है क्या? हमेशा आलोचना को लेकर लेखक-लेखिकाओं को शिकायत रही है। आलोचक प्राध्यापक हो या स्वतंत्र व्यक्ति, उसकी प्राथमिकताएँ क्या हैं? वह लेखकों के साथ कितना निष्पक्ष रहता है और केवल रचना को रचनात्मक कसौटियों पर उसकी आलोचना करता है ये बात ज़्यादा मायने रखती है पर मैं इस बात पर अडिग हूँ कि प्राध्यापक आलोचकों ने आलोचना को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया है, बल्कि फायदा ही पहुँचाया है।

आकाश- प्राय: सभी लेखक कवि होते हैं। पद्य से गद्य की ओर मुड़ते हैं, बढ़ते हैं। क्या आपने भी कविताएँ लिखी हैं?

उर्मिला शिरीष- ये सच है। जब भी किसी कथाकार से पूछा जाता है तो उसका कवि रूप सामने आ जाता है। हिन्दी के बड़े कथाकार कवि हमारे बीच में है (विस्तार की वजह से नाम नहीं ले रही हूँ) और कुछ ऐसे भी हैं जो दोनों विधाओं को साथ लेकर आज भी लिख रहे हैं। मैंने भी शुरू में छोटी-छोटी कविताएँ लिखी थीं। एकाध भास्कर में छपी भी थी, पर मेरी डायरी में एक लंबी कविता आज भी मौजूद है। वह कैसे लिखी थी क्यों लिखी थी आज याद नहीं पर बहुत साल बाद 'चाँद गवाह' में चार पाँच कविताएँ अनायास ही आ गईं।

आकाश- सरकारी सेवा में होने के साथ लेखन कार्य करने में आपको क्या ख़तरे महसूस होते थे?

उर्मिला शिरीष- सरकारी सेवा में रहते हुए लेखन को लेकर ऐसे तो कोई ख़तरे नहीं महसूस हुए, लेकिन हमेशा एक अनुशासन का पालन करना पड़ता था कि शासन की नीतियों के ख़िलाफ़ कोई टिप्पणी या बात नहीं होनी चाहिए। शासकीय नौकरी का मतलब ही है कि आप शासन के अधीन काम कर रहे हैं तो शासन के नियमों का पालन करना चाहिए। पर नौकरी के दौरान मैं लगातार लिखती रही हूँ और कुछ चीज़ें हुई भी थीं उनके बारे में अब चर्चा करने की ज़रूरत नहीं है।

आकाश- सेवानिवृत्ति के बाद आपके पास साहित्य के लिए भरपूर समय है। आपकी आगामी योजना क्या है?

उर्मिला शिरीष- भरपूर समय तो कभी होता नहीं है बस समय ज़्यादा मिल जाता है कोई भी काम करने के लिए। मैंने तो हमेशा स्वयं को सख्त अनुशासन में रखा था। तभी इतना काम मसलन नौकरी, परिवार, स्पंदन संस्था के काम तथा लेखन कर पाई थी। अब पूरा समय परिवार के साथ-साथ बस अपने लेखन, स्पंदन संस्था की साहित्यिक गतिविधियों को देना चाहती हूँ। दो उपन्यास एक डायरी और एक अन्य किताब पर काम करना चाहती हूँ।

आकाश- अंत में आपसे जानना चाहेंगे कि आपके पसंदीदा लेखक एवं पसंदीदा किताबें कौन सी हैं?

उर्मिला शिरीष- मेरे पसंदीदा लेखक हैं- कालीदास, प्रेमचंद, रविन्द्रनाथ टैगोर, शरतचंन्द्र, जैनेन्द्र कुमार, शिवाजी सामंत, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा, गोविन्द मिश्र एवं चित्रा मुद्गल हैं। विदेशी लेखकों में- चेखब दोस्तोबस्की, मोपासा, ओ हैनरी काफ्का, गोरकी, बर्जिनिया बुल्फ और भी बहुत सारे नाम हैं। किताबें बहुत सारी पसंद हैं पर जिनको बार-बार पढ़ना चाहती हूँ वो हैं- कालीदास का सम्पूर्ण काव्य, गोदान, अन्नाकारेनीना, माँ, एकान्त के सौ बरस मृत्युंजय, पाँच आँगनों वाला घर, कनुप्रिया, आषाढ़ का एक दिन, युद्ध और शांति, ब्रदर्स करमाजोव आदि।

000

मैं और मेरा समय...

तेजेन्द्र शर्मा एम. बी. ई.

तेजेन्द्र शर्मा
33-ए, स्पेन्सर रोड, हैरो एण्ड वील्डस्टोन,
मिडिलसेक्स, एच.ए.37ए.एन., यूके
मोबाइल- +44 7400 313433
ईमेल- tejinders@live.com,
kathauk@gmail.com

मेरा जन्म जगराँव (पंजाब) में हुआ। जगराँव या पंजाब से मेरा इतना ही नाता है कि मैं वहाँ पैदा हुआ और अपने जीवन के पहले नौ वर्ष पंजाब के अलग अलग शहरों में बिताए- जहाँ-जहाँ मेरे पिता का तबादला होता रहा। अपनी कहानी 'काला सागर' में मैंने केन्द्रीय पात्र विमल महाजन के मुँह से कहलवाया है, "जगराँव में दो महान् लोगों ने जन्म लिया है, ... दूसरे का नाम है लाला लाजपत राय!"

मैं हमेशा एक सोच में डूब जाता हूँ, जब कभी कोई मुझसे पूछता है, "तेजेन्द्र भाई, आपका गाँव कौन सा है?" मैं कभी किसी गाँव में रहा नहीं। मेरी स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय की पढ़ाई दिल्ली में हुई। इस तरह मेरा गाँव तो दिल्ली ही कहलाएगा। इसके बाद मैंने इक्कीस साल तक एअर इंडिया की नौकरी बंबई में रह कर की (मैं अपने शहर को आज भी मुंबई नहीं कह पाता)।

यानी कि मैं पूरी तरह से एक शहरी उत्पाद हूँ। इसीलिये मेरी कहानियों में गाँव नहीं आता। क्योंकि अगर मैं गाँव के बारे में लिखूँगा, तो वह एक तरह का झूठ हो सकता है। मुझे गाँव की राजनीति, खेती, किसान, साहूकार, ट्रैक्टर, फ़सल आदि की कोई समझ नहीं है। मगर मैं शहर की संरचना से ख़ासी हद तक वाक़िफ़ हूँ। निम्न-मध्य वर्ग, मध्य वर्ग और उच्च मध्य वर्ग की सोच को मैं समझता हूँ। मैंने इक्कीस वर्ष तक एअरलाइन में फ़्लाइट परसर के पद पर नौकरी की है। यानी कि मेरे अनुभव क्षेत्र में वे मज़दूर भी आते थे जो कि येन केन प्रकारेण किसी भी तरह खाड़ी देशों में काम करने जाते थे। ब्रिटेन और अमरीका जाने वाले भारतीय प्रोफ़ेशनल लोगों से भी मेरी मुलाक़ात होती थी। मुंबई के फ़िल्मी सितारों और राजनेताओं से भी मेरा वास्ता रहा। प्रधानमंत्री राजीव गांधी के लिए चुने गए विशेष कर्मीदल का मैं एक महत्त्वपूर्ण सदस्य था। यानी कि मेरा अनुभव क्षेत्र हिन्दी की मुख्यधारा के लेखकों और आलोचकों से एकदम अलग था। मुझे उनके अनुभव क्षेत्र का ज्ञान नहीं था और मेरे अनुभव क्षेत्र में उन सबका ज्ञान ख़ासा सीमित था।

मुझे याद पड़ता है कि 1959 में जब हम 'मौड़ मण्डी' नामक छोटे से स्टेशन के साथ लगे घर में रहते थे, वहाँ बिजली नहीं थी। स्टेशन पर बिजली थी किन्तु अभी तक घरों में नहीं पहुँची थी। रेडियो चलाने के लिये बड़ी-सी कार बैटरी जैसी एक बैटरी इस्तेमाल में लाई जाती थी। दिल्ली एकदम अलग ही दुनिया का अजूबा थी। 1961 में अपने स्कूल में पहली बार टेलिविज़न सेट देखा। ब्लैक-एण्ड-व्हाइट फ़िलिप्स का बड़ा-सा टी. वी. सेट जो कि ऊँचे से स्टैण्ड पर रखा रहता था। बच्चे आपस में बात किया करते थे, "बेटा तुम्हें कुछ नहीं पता। अब मुहम्मद रफ़ी और लता मंगेशकर टी. वी. सेट के पीछे आकर खड़े हो जाया करेंगे और गाने गाया करेंगे।"

दिल्ली आने के बाद भी बहुत दिनों तक मेरी माँ अँगीठी जला कर और स्टोव में पम्प मार मार कर खाना बनाती रही। अभी भाप इंजिन रेलगाड़ियों को खींच रहे थे और डीज़ल इंजिन शुरू हो गए थे। दिल्ली की सड़कों पर एम्बैसेडर, फ़िएट और स्टेण्डर्ड नाम की कारें दिखाई देती थीं।

मैं जब पाँचवीं में पढ़ता था तो मेरे स्कूल के इर्द-गिर्द कोई बाउंड्री की दीवार नहीं थी। उसी स्कूल के बाहर बैठा करता था सुदर्शन नाई। उसके पास दुकान के नाम पर बस एक पुरानी-सी कुर्सी, एक मेज़ और धुँधला पड़ता शीशा था। एक ऐसी चारपाई रखी रहती जिसकी हालत अपने मालिक की हालत की ही तरह खस्ता हुआ करती थी। मैं वहाँ बाल कटवाने जाया करता था। हालाँकि मुझे बहुत बुरा लगता था कि सुदर्शन नाई सिर्फ़ मशीन से बाल काटता था जबकि बाबूलाल नाई कैंची से कटिंग करता था। मगर फिर भी मेरे बाऊजी हमेशा सुदर्शन लाल से ही बाल कटवाते थे। सुदर्शन नाई की चारपाई पर नवभारत टाइम्स और प्रताप (उर्दू) समाचार पत्र रखे रहते थे। उसके सभी ग्राहक वहाँ बैठकर राजनीति पर चर्चा किया करते थे। कांग्रेस और जनसंघ सबकी ज़बान पर रहते। इसी माहौल से मेरी कहानी 'एक ही रंग' का जन्म हुआ। सुदर्शन नाई उस कहानी का मुख्य पात्र है।

मेरा प्राइमरी स्कूल 'अंधा मुग़ल' क्षेत्र में था। अंधा मुग़ल का भी अपना इतिहास है। कहा

जाता है कि रोहिला क़बीले के लड़ाकों ने मुग़ल बादशाह शाह आलम को इसी इलाक़े में हरा कर अंधा कर दिया था। इस इलाक़े के नज़दीक ही सराय रोहिल्ला है जहाँ रोहिल्ला क़बीले के लोगों ने आकर पड़ाव डाला था। कभी यह क्षेत्र भी दिल्ली-6 का हिस्सा था। बाद में दिल्ली-6 को दो हिस्सों में बाँट दिया गया और अंधा मुग़ल और सब्ज़ी मण्डी दिल्ली-7 का हिस्सा बन गए। अंधा मुग़ल के नज़दीक ही रौशनारा बाग़ है जिसका नाम औरंगज़ेब की बहन रौशनारा बेग़म के नाम पर रखा गया।

बाद में मेरा सेकण्डरी स्कूल भी अंधा मुग़ल क्षेत्र में ही था। मैं सब्ज़ी मण्डी रेल्वे कालोनी से पैदल चल कर स्कूल जाया करता था। बाऊजी को दिल्ली में पहले किशन गंज, उसके बाद सब्ज़ी मण्डी, वापिस किशन गंज, फिर लाजपत नगर की रेल्वे कालोनियों में रहने के लिये फ़्लैट अलॉट हुए। हम भी बार-बार उनके साथ-साथ घर बदलते रहे। बाऊजी की ख़ासियत ही उनकी कमज़ोरी भी थी। बाऊजी ज़रूरत से ज़्यादा ईमानदार व्यक्ति थे। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उनकी बाईं बाज़ू में गोली लग गई थी। बाऊजी की चरम ईमानदारी के कारण महीने की चौबीस या पच्चीस तारीख़ को माँ जा कर अपनी चचेरी बहन (सुमित्रा मासी), के यहाँ से पाँच रुपये उधार ले आया करती थीं, जो उन्हें पगार आते ही वापिस कर दिये जाते। मुझे याद है कि वर्ष 1961 में मेरे जन्मदिन पर कुल सवा रुपया ख़र्च हुआ था। बाऊजी की यह छवि मेरी बहुत सी कहानियों में दिखाई देती है। 'पासपोर्ट का रंग' कहानी के बाऊजी का पूरा चरित्र मैंने अपने बाऊजी पर आधारित किया है जबकि मेरे बाऊजी मेरे ब्रिटेन प्रवास करने से बहुत पहले ही स्वर्गवासी हो गए थे।

बाऊजी की सोच अपने पिता यानि कि मेरे दादाजी के साथ कभी मेल नहीं खा पाई। दोनों में हमेशा छत्तीस का आँकड़ा बना रहता। दादाजी को शिकायत थी कि बाऊजी ने कभी बड़े पुत्र की भूमिका सही ढंग से नहीं निभाई। जबकि बाऊजी एक देशभक्त जवान थे जिनके लिये अपने परिवार से बढ़ कर भारत की स्वतंत्रता थी।

बाऊजी गर्म दल के सदस्य थे। तीन अंग्रेज़ों को ज़िन्दा जला देने का आरोप लगा था उन पर। दादाजी वकीलों के चक्कर काटते रहे। उन्हें ग़ुस्सा इस बात का था कि उनका पुत्र पढ़ाई-लिखाई छोड़ कर देशप्रेमियों के चक्कर में पड़ गया था। उनका दूसरा ग़ुस्सा इस बात पर भी था कि कांग्रेसी गले में मालाएँ पहन कर जेल गए और आज़ादी के बाद कोटे परमिट ले कर पेंशनें भी पक्की करवा लीं। मगर उनके पुत्र ने ईमानदारी का जो राग अलापना शुरू किया तो उसे बन्द ही नहीं किया। ज़ाहिर सी बात है कि जिन पुत्रों ने दादाजी की बात मानी थी और पढ़ाई करके ऊँचे पद हासिल किये थे, दादाजी का प्यार उनके और उनके पुत्रों के प्रति अधिक ममतामय था। दादाजी से दूसरे पोते-पोतियों को तो मिलते भेंट और खिलौने, जबकि मेरे पल्ले आते केवल वादे। उन्होंने मुझे एक बार साइकिल और घड़ी ले कर देने का वादा किया था। किन्तु वे मेरे देनदार के रूप में ही इस दुनिया से चलाना कर गए। मेरे पहले कहानी संग्रह 'काला सागर' में मेरी कहानी 'कड़ियाँ' इसी थीम पर आधारित थी।

पढ़ाई करते-करते मेरा आत्मविश्वास लगभग घमण्ड बनता जा रहा था। दसवीं क्लास में हिसाब के पेपर में फ़ेल हो गया। साल मारा गया। पिताजी का तबादला शिमला के पास 'शोघी' स्टेशन पर हो गया था। वे वहाँ के स्टेशन मास्टर बना दिये गए थे। भला एक फ़ेल हुए लड़के को शिमला के अच्छे स्कूल में दाख़िला मिलता भी तो कैसे। मेरे एक मित्र थे जो कि मेरे बाऊजी के भी मित्र थे - ईश्वर स्वरूप भटनागर। उन्होंने बाऊजी से बात की और मुझे वापिस दिल्ली ले आए। यहाँ उन्होंने मेरा दाख़िला प्रेसिडेन्ट्स एस्टेट स्कूल में करवा दिया। मैं एक बार फिर एक नए स्कूल में हीरो बन गया। पढ़ाई में मूलत: अच्छा था ही। अंग्रेज़ी मेरा प्रिय विषय था। मेरी आवाज़ बचपन में ख़ासी सुरीली थी, एक्टिंग का शौक़ था। स्कूल के लिये बहुत से कप और शील्ड जीत कर लाया। भटनागर जी के जीवन पर आधारित दो कहानियाँ मैंने लिखीं - 'दंश' और 'रिश्ते'।

जब स्कूल का ज़िक्र आ ही गया है तो बताता चलूँ कि मेरा यह स्कूल एक को-एजूकेशनल स्कूल था। यहाँ लड़के और लड़कियाँ इकट्ठे पढ़ा करते थे। मेरे साथ दसवीं में एक लड़की पढ़ती थी नाज़िमा, वह मुझे छेड़ा करती थी। मैं उन दिनों ख़ासा सीधा सादा सा लड़का हुआ करता था। वह आते जाते मुझ पर फ़िकरे कसा करती थी। एक बार मैं प्रिंसिपल के कमरे में जा खड़ा हुआ, "सर नाज़िमा मुझे छेड़ती है। रिमार्क्स पास करती रहती है।" मेरी रोंदू सी आवाज़ सुन कर प्रिंसिपल ने ज़ोर का ठहाका लगाया, "अबे छेड़ती है तो छिड़। मर्द का बच्चा बन। आज के बाद ऐसी शिकायत ले कर आया तो मुर्गा बना दूँगा। समझे!" लन्दन जा कर लिखी जाने वाली कहानियों में मेरी कहानी 'टेलिफ़ोन लाईन' की मुख्य पात्रा मेरी इसी स्कूली मित्र नाज़िमा के चरित्र पर आधारित है।

मेरे बाऊजी सिगरेट बहुत पीते थे। दिन भर में साठ से सत्तर सिगरेट और वह भी फ़िल्टर के बिना, सादी सिगरेट। लाल रंग का पैकेट होता था। नाम शायद वर चक्र या वीर चक्र हुआ करता था। हमारे घर में एक सौ पैकेट का बंडल आया करता था। 1967 की मुझे एक घटना याद आती है। बाऊजी ने मुझे अपने कमरे में बुलाया और कहा, "काका, तूं हुण पंद्रह सालाँ दा हो गया है। ऐहो उमर होंदी है जदों बच्चा सिगरेट पीनी शुरू करदा है। मेरे तों ज़्यादा कोई नहीं जाणदा कि सिगरेट किन्नी बुरी चीज़ है। काका, अज तों मैं सिगरेट पीणी छोड़ रिहा हाँ, ताकि तैनूं सिगरेट पीण तो रोक सकाँ।" बाऊजी की बात दिल पर कुछ ऐसा असर कर गई कि मैंने जीवन में कभी सिगरेट का स्वाद नहीं चखा।

बाऊजी का तबादला वापिस दिल्ली हो गया। अब स्थिति ख़ासी अजीबो-ग़रीब थी। रेलवे अधिकारियों का कहना था कि आप शोघी (शिमला) वाला घर खाली करिए ताकि आपको दिल्ली में घर अलॉट किया जा सके। और बाऊजी का कहना था कि आप मुझे घर अलॉट करें तो मैं शोघी वाला घर खाली करूँ। इसी उहापोह में क़रीब 6 से 7 महीने गुज़र

गए।

इस दौरान बाऊजी ने अपने किसी मित्र के घर एक कमरा किराए पर ले लिया। उसी कमरे में मैं, बड़ी बहन, छोटी बहन, माँ और बाऊजी सभी रहते थे। उसी कमरे के एक कोने में माँ खाना बनाती थी। वहीं सोते भी थे। गर्मी के दिनों में तो बाहर सहन में सोने से समस्या सुलझ जाती किन्तु जैसे ही थोड़ी ठण्ड बढ़ी तो पाँचों लोग एक ही कमरे में सोने को बाध्य। शोघी वाले घर का किराया रेलवे बाऊजी की पगार में से काट रही थी और यहाँ मालिक मकान को किराया देना होता।

रात को सवा नौ बजे पढ़ने का समय होता और वही समय होता हमारी मकान मालकिन का रेडियो पर 'हवा महल' और बाद में पुराने गाने सुनने का। अभी घरों में टेलिविज़न आम बात नहीं थी। पूरी कालोनी में बस एक या दो टीवी ही सुनाई देते थे। जब मकान मालकिन हवा महल का नाटक और पुराने फ़िल्मी गीत सुनती, मैं रोशनारा बाग़ की स्ट्रीट लाइट के नीचे बैठ कर पढ़ाई करता। यानी कि मेरी ज़िंदगी में भी वे रोमांटिक पल गुज़रे जो कि हिन्दी सिनेमा के नायक के साथ गुज़रते हैं। बस फ़र्क़ इतना ही था कि मेरे जीवन पर कभी कोई फ़िल्म नहीं बनी।

ग्यारहवीं पास करने का बाद मैंने स्वयं यह निर्णय लिया कि आगे पढ़ाई नहीं करूँगा। पहले नौकरी फिर पढ़ाई। इसलिये आई. टी. आई. निज़ामुद्दीन में स्टेनोग्राफ़ी के कोर्स में दाखिला ले लिया। आज की युवा पीढ़ी को शायद स्टेनोग्राफ़ी शब्द समझ ही न आए। मगर हमारे ज़माने में पिटमैन्स शॉर्टहैण्ड एण्ट टाइपिंग कोर्स बहुत लोकप्रिय होते थे।

हमारी आई. टी. आई. में दो तरह के वज़ीफ़े मिला करते थे। एक ग़रीबी का और एक क्लास में अव्वल आने का। अव्वल आने पर दस रुपये महीने का वज़ीफ़ा मिलता था। मन ही मन फ़ैसला कर लिया कि यह 10 रुपये महीने का वज़ीफ़ा मुझे ही जीतना है। यानी कि साल भर के पूरे एक सौ बीस रुपये।

क्लास में आम तौर पर प्रथम मैं ही आता था और मेरे बाद थी तीन लड़कियाँ। उनके नामों में भी गड़बड़ हो जाती थी - एक सुनीता

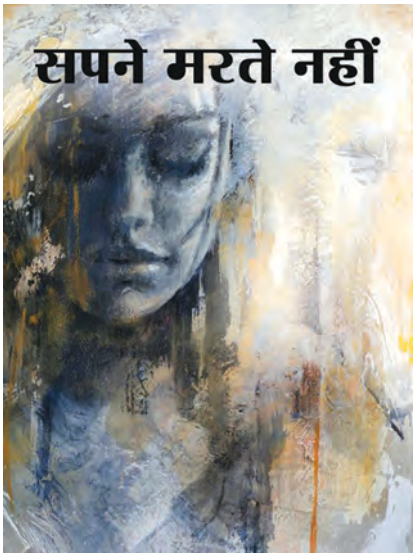

चावला, दूसरी निर्मल टण्डन और तीसरी निर्मल चावला। इन्हीं में से एक से बात करते हुए महसूस हुआ कि मैं बड़ा हो गया हूँ। क्योंकि उससे बात करते समय कुछ-कुछ होता था।

अभी डिप्लोमा पूरा होने में 2 महीने का समय बाक़ी था कि मुझे अपनी पहली नौकरी भी मिल गई। राजश्री पिक्चर्स, चान्दनी चौक में स्टेनो टाइपिस्ट - पगार रुपये 200 मात्र। मेरे आई. टी. आई. के प्रशिक्षकों - ओमर अफ़जल ख़ान एवं डी. पी. वाधवा ने एक प्रस्ताव रखा कि मैं पढ़ाई तो पार्ट-टाइम क्लास में करूँ, लेकिन मुझे हाज़िरी फ़ुल-टाइम की दी जाएगी। मेरे लिये तो यह जैसे आकाश से आशीर्वाद की वर्षा थी। मेरा साइकिलिंग अभियान शुरू हो गया - किशन गंज से चाँदनी चौक तक साइकिल पर, शाम को वहाँ से निज़ामुद्दीन साइकिल पर, रात को निज़ामुद्दीन से किशन गंज वापिस साइकिल पर। यह साइकलिंग का जो दौर शुरू हुआ तो मेरे एम. ए. पूरा करने तक चलता ही रहा। उस नौकरी की एक ही बात है जो भूले नहीं भुलाई जा सकती, मेरे बॉस मिस्टर सेठी का कहना, "मिस्टर शर्मा आपके टाइपराइटर की आवाज़ नहीं आ रही, इसका मतलब है कि आपके पास काम नहीं है। आइये और डिक्टेशन ले लीजिए।"

जब मैं मुड़ कर देखता हूँ तो पाता हूँ कि मेरे व्यक्तित्व के विकास में चार महिलाओं और दो पुरुषों का बहुत महत्त्वपूर्ण हाथ है। पहली महिला है मेरी माँ। मेरी माँ ने मुझे सिखाया है कि अभावों में भी चेहरे पर कैसे मुस्कुराहट क़ायम रखी जा सकती है। कम से कम रिसोर्सों से भी कैसे बेहतरीन नतीजे हासिल किये जा सकते हैं। मेरे पास दो ही कमीज़ें होती थीं और दो ही निक्करें। किन्तु मैं क्लास का सबसे साफ़ सुथरा बच्चा कहलाता था। क्योंकि मेरे कपड़े रोज़ धुले और इस्त्री किये होते। क्लास के लड़के मुझे किसी बहुत अमीर घर का बच्चा समझते थे। माँ स्वयं कुछ खाये या न खाये, मेरे लिये घर की बेस्ट चीज़ें बचा कर रखती थी। और जब बाऊजी से मार पड़ती थी तो वह आधे से अधिक मार अपनी पीठ पर ले लेती थी।

दूसरी महिला थी मेरी हरजीत दीदी। दरअसल उससे मेरा कोई सग़ा रिश्ता नहीं था। वह मेरे दोस्त हरदीप की बहन थी। हरदीप और मैं पाँचवी कक्षा में इकट्ठे पढ़ते थे। हरजीत दीदी हम दोनों से चार चार साल बड़ी थीं। जब बैंक ऑफ़ इंडिया में नौकरी लगने के पश्चात् मैंने बी. कॉम में दाखिला लिया तो दीदी ने ही मुझे इंग्लिश ऑनर्स की पढ़ाई करने को प्रेरित किया। उनका मेरे प्रति स्नेह देख कर उनके भाई तक को जलन होने लगती थी। उनके व्यक्तित्व की ख़ासियत यह थी कि उन्हें मेरे घर के सभी सदस्य दीदी कह कर ही बुलाते थे। इसमें मेरी माँ और बाऊजी भी शामिल थे। मैंने अपनी पहली लिखी अंग्रेज़ी की पुस्तक उन्हें ही समर्पित की थी। मेरी कहानी 'मुट्ठी भर रोशनी' की नायिका सीमा का व्यक्तित्व काफ़ी हद तक दीदी पर आधारित था।

मेरे अंग्रेज़ी साहित्य पढ़ने से जिस व्यक्ति को सबसे अधिक दु:ख हुआ, वे थे ईश्वर स्वरूप भटनागर। भटनागर साहब ने मुझे शिमला से दिल्ली ला कर एक वर्ष अपने साथ रखा था। वे एक तलाक़शुदा व्यक्ति थे जो अपने एक छोटे भाई एवं दो बहनों एवं माता पिता के साथ हैमिल्टन रोड कश्मीरी गेट में रहते थे। उनकी एक बहन अपने पति का घर छोड़ कर वहाँ आ बैठी थी। उस बहन को मेरा वहाँ रहना बहुत अखरता था।

भटनागर साहब ने एक बार बाऊजी को

पत्र लिखा था - "भाई साहब, जब मैं काके को सुबह बस्ता उठा कर स्कूल जाते देखता हूँ तो आपके प्रति मन से धन्यवाद निकलता है कि आपने मुझे औलाद का सुख महसूस करने का मौका दिया है।" भटनागर साहब मेरी दो कहानियों के नायक बने - 'दंश' एवं 'रिश्ते'।

मेरी हिन्दी फ़िल्मों में रुचि एवं समझ का लगभग पूरा का पूरा श्रेय भटनागर साहब को ही जाता है। मैंने उनके साथ सुबह के शोज़ में जगत्, 'मिनर्वा', 'कुमार' और 'मोती' सिनेमा में 1940 व 1950 के दशक की बहुत सी ब्लैक एण्ड व्हाइट फ़िल्में देखीं। वे हमेशा मुझे वकील बनाना चाहते थे। मेरे साहित्य-प्रेम ने उन्हें बहुत निराश किया था। दरअसल वे स्वयं अपने घर के हालात के कारण वक़ालत नहीं कर पाए थे। अपने अधूरे सपने मुझमें पूरे होते देखना चाहते थे। मगर...

इंदु जब मेरे जीवन में आई, उस समय तक मैं लड़कियों में ख़ासा लोकप्रिय हो चुका था। यूनिवर्सिटी की कुछ लड़कियाँ तो मुझे लेकर आपस में लड़ भी लेती थीं। इंदु को देख कर लगा कि बस मेरे जीवन की नैया के लिए यही साथी सही साथी है। सादी, सुन्दर और समझदार - यह थी इंदु। हम दोनों ने जात-पात की दीवार लाँघ कर शादी की थी। इंदु के दिमाग़ का फ़ोकस बिलकुल क्लीयर था। उसे घर शब्द के सही मायने मालूम थे। उसने मुझे तराशा, सँवारा और हिन्दी का कहानीकार बनाने के साथ-साथ एक बेहतर इंसान बनाया।

इंदु जैसे लोग दुनिया में विरले ही पैदा होते हैं जिनकी ख़ूबियाँ गिनाते-गिनाते पन्नों पर पन्ने भरे जा सकते हैं। हम दोनों ने अपने जीवन का संघर्ष मुंबई में इकट्ठे शुरू किया था। एक-एक चीज़ पैसे जोड़-जोड़ कर ख़रीदी थी। वह उधार से चीज़ें ख़रीदने में विश्वास नहीं रखती थी। क्रेडिट कार्ड के विरुद्ध थी वह।

मुझे उसने दीप्ति और मयंक जैसे प्यारे बच्चे दिये। मेरी कहानियों की पहली पाठक वही होती थी। मुझे भाषा के तौर पर हिन्दी का अधिक ज्ञान नहीं था। इंदु मेरी कहानियों की भाषा भी सुधारती और थीम की प्रस्तुति में भी

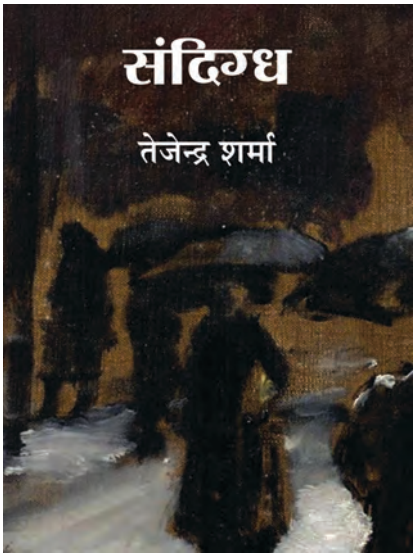

सहायता करती। जब मेरा दूसरा कहानी संग्रह 'ढिबरी टाइट' प्रकाशित हुआ तो इंदु मुंबई के नानावटी अस्पताल में दाख़िल थी। कैंसर से जूझ रही थी। उस किताब का समर्पण मैंने कुछ यूँ लिखा था - "इंदु के लिये, जो मेरी पत्नी होने के बावजूद मेरी मित्र है।"

मुझे लगता है कि यह एक पंक्ति इंदु के पूरे वजूद को समझने के लिये बहुत आवश्यक है। इंदु की बीमारी के दौरान बहुत से ऐसे अनुभव हुए जो मेरी भिन्न भिन्न कहानियों में देखे जा सकते हैं। इंदु के व्यक्तित्व के अलग अलग पहलू 'कैंसर', 'अपराध बोध का प्रेत', 'ईंटों का जंगल', 'भंवर', 'रेत का घरोंदा', 'पासपोर्ट का रंग' आदि कहानियों में महसूस किये जा सकते हैं। इंदु के साथ मुझे ब्रिटेन, अमरीका, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, मॉरीशस, हाँगकाँग, टोकियो आदि स्थानों पर जाने का मौक़ा मिला।

बच्चों का जन्मदिन मनाने का उसका अपना तरीक़ा था। ग्यारह किलो चावल और ग्यारह किलो अरहर की दाल के ग्यारह पैकेट बनवा कर ग़रीबों में बाँट देती थी। यह ग्यारह कभी इक्कीस भी हो जाता मगर तरीक़ा यही रहता। उसका कहना था कि जो लोग पहले से ही गैस और अपच के मारे हों उनको दावत पर बुलाने का क्या फ़ायदा। दावत तो उनकी होनी चाहिए जो सुबह उठें तो उन्हें पता न हो कि रात का खाना मिलेगा या नहीं। इंदु हमें 1995 में छोड़ कर गईं और उसी वर्ष से 'इंदु शर्मा कथा सम्मान' की शुरूआत हुई। जब इंदु की मृत्यु हुई उसका सिर मेरी गोद में था। उल्टी साँसें क्या होती हैं, मैंने स्वयं देखा और महसूस किया।

मुंबई में जब मेरी बेटी दीप्ति का जन्म हुआ था तो ज़िंदगी ने एक नया अनुभव दिया था। उस मांस की सचमुच की गुड़िया ने जैसे मुझे दीवाना बना दिया था। मैं पागलों की हद तक प्यार करता था उससे। उसकी कोई भी इच्छा पूरी करना जैसे मेरा पहला कर्त्तव्य होता था। उसके पैदा होने से चार वर्ष तक के सारे रिकॉर्ड हमने जोड़ कर रखे - कब पहला शब्द बोला, कब पहला कदम चली, कब पहला दाँत निकला, कब पहली दाढ़ निकली इत्यादि इत्यादि। जब मयंक - मेरा पुत्र पैदा होने वाला था तो मैंने इन्दु से कहा था, "इन्दु मैं दीप्ति को इतना प्यार करता हूँ, भला होने वाले बच्चे के साथ मैं कैसे न्याय कर पाऊँगा? मुझे नहीं लगता कि मैं किसी और को प्यार भी कर सकता हूँ!" इंदु ने हमेशा की तरह परिपक्व अंदाज़ में कहा था, "आने वाला बच्चा ख़ुद ही आपसे अपना प्यार ले लेगा।" और ठीक यही हुआ भी। जब इन्दु गईं तो दीप्ति सोलहवें वर्ष में थी और मयंक ग्यारहवें।

बाऊजी इंदु से दो वर्ष पूर्व 1993 में हमें छोड़ गए थे। बाऊजी को दिल की बीमारी थी। दिल के मसल कमज़ोर हो गए थे। डॉ. पुरी का कहना था कि बाऊजी की बीमारी को कार्डियोमायोपैथी कहते हैं। मुझ से जुड़े दो सबसे क़रीबी लोगों को सबसे भयंकर बीमारियाँ थीं। एक को कैंसर और दूसरे को दिल की बीमारी।

बाऊजी से बहुत सी चीज़ें विरासत में मिली थीं। एक सच बोलना; बेख़ौफ़ सच बोलना; सच बोल कर नुक़सान उठाना; ईमानदारी का बोझ सिर पर उठाए रखना; साहित्य रचना करना; और हर काम को मेहनत से करना। बाऊजी से जो नहीं सीख पाया वह था हाथ का काम। बाऊजी साइकिल, रेडियो और घर की कोई भी चीज़ ठीक कर लेते थे। उन्होंने अपनी बीमारी के दौरान भी अपने नए बनाए कमरे के लिये एक दरवाज़ा ख़ुद बनाया। जो काम मेरे बाऊजी नहीं करते थे वह मैं कर लेता था - जैसे घर के

छोटे छोटे काम - खाना बनाना, बरतन साफ़ कर लेना, सफ़ाई कर लेना।

बाऊजी बहुत ग़ुस्से वाले थे। शायद उस ज़माने के पिता ऐसे ही होते होंगे। मैंने बचपन में बहुत मार खाई उनसे। मगर वही बाऊजी अपनी अप्रोच में बिल्कुल मॉडर्न थे। उन्होंने ख़ुद ही बताया था कि उन्हें एक अंग्रेज़ औरत से इश्क हो गया था। किन्तु अपने पिता को उस रिश्ते के लिये नहीं मना पाए। अंतत: मेरी माँ से ही शादी हो गई। जिस दिन बाऊजी और माँ की शादी थी उसी शाम महात्मा गांधी की हत्या हो गई यानी कि 30 जनवरी 1948।

जिस व्यक्ति का प्रभाव मेरे व्यक्तित्व पर बाद के दिनों में पड़ा वे हैं लन्दन के कॉलिंडेल क्षेत्र की काउंसलर श्रीमती ज़किया ज़ुबैरी। उम्र में मुझ से एक दशक बड़ी, ज़किया जी ने मुझे कमिटमेंट की नई परिभाषा सिखाई। उनका कथा यू. के. के काम के प्रति जो लगाव है उसे आम आदमी समझ नहीं पाएगा। ब्रिटेन में हिन्दी और उर्दू भाषाओं के बीच की दूरी पाटने में जुटी हैं ज़किया जी। उनका मानना है कि ऐसा कोई काम है ही नहीं जो हम नहीं कर सकते। पैसे की समस्या कभी किसी अच्छे काम को होने से नहीं रोक सकती।

ज़किया जी के माध्यम से मेरे लेखन को उर्दू के पाठकों तक पहुँचने का ज़रिया मिला। मेरी तेरह कहानियों को उर्दू में अनूदित करवा कर उन्होंने पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करवाया। फिर मेरी सोलह कहानियों का ऑडियो सी. डी. बनवाया। 'इंदु शर्मा कथा सम्मान' के आयोजन के साथ पूरी तरह से जुड़ गई हैं। वे मेरी बेटी दीप्ति की गार्जियन एंजिल भी बन गई हैं। दोनों में बेपनाह विश्वास एवं मुहब्बत है। ज़किया जी के माध्यम से मुझे लंदन में बसे मुस्लिम एवं पाकिस्तानी समाज के साथ मेलजोल बढ़ाने का अवसर मिला। मैंने उनके पति की जीवनी अंग्रेज़ी में लिखी जो कि ब्लैक एण्ड व्हाइट के नाम से प्रकाशित हुई। ज़किया जी की दुनिया से हुए परिचय ने ही 'एक बार फिर होली', 'क़ब्र का मुनाफ़ा', 'तरकीब', 'होमलेस', 'दीवार में रास्ता' जैसी कहानियाँ लिखने की प्रेरणा दी। आम तौर पर हिन्दी लेखक मुस्लिम थीम पर

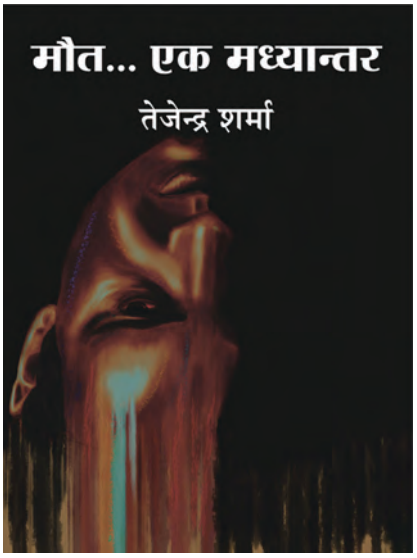

क़लम उठाने से डरते हैं। किन्तु ज़किया जी ने यह भी सिखाया कि जिस काम का फ़ैसला कर लिया, उसे पूरा करके ही दम लो।

इंदु की मृत्यु के बाद मैंने घर के हालात के मद्देनज़र नैना जी से विवाह किया। दीप्ति और मयंक को इंदु जी मेरे पास छोड़ गई थीं। नैना जी का पहले विवाह से एक पुत्र था रिकी (ऋत्विक)। रिकी ने वारिक विश्वविद्यालय से गणित में डिग्री हासिल की। पढ़ाई में हमेशा होशियार रहा। हम दोनों ने प्रयास किया कि यह एक परिवार बन जाए। किन्तु हम दोनों ही इस प्रयास में विफल हो गए। कभी-कभी दो अच्छे लोग मिल कर अच्छी तरह इकट्ठे नहीं रह पाते। यह रिश्ता चल नहीं पाया।

ब्रिटेन में बसने के बाद से मेरे लेखन में एक निश्चित बदलाव आया। मेरी कहानियों के थीम बदलने लगे। 'इंदु शर्मा कथा सम्मान' के सिलसिले में पढ़ना भी काफ़ी पड़ा और सम्मानित कथाकारों के साथ एक संवाद भी स्थापित हुआ। ब्रिटेन की हिन्दी कविता एक दो अपवादों को छोड़ कर अभी अपनी पहचान समझने में लगी थी और कहानी लेखन तो एकदम शैशव काल में था। कविता के मुक़ाबले मेरी अपनी रुचि कथा लेखन में कहीं अधिक है। इसलिये कथा यू. के. के माध्यम से कथागोष्ठियों का आयोजन शुरू किया गया। आज कम से कम दस लेखक ऐसे हैं जिनके कहानी संग्रह या उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। मेरी अपनी कहानियों में ब्रिटेन में बसे भारतीय या फिर यहाँ के स्थानीय गोरे समाज का चित्रण अपनी जगह बनाने लगा।

मेरी शुरुआती कहानियाँ सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं। क्योंकि जीवन में कुछ न कुछ ऐसा घटित होता रहता है जो लेखक को क़लम उठाने के लिये प्रेरित भी करता है और मजबूर भी। किन्तु उन कहानियों में भी घटना से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण रही हैं उन घटनाओं की मारक स्थितियाँ। फिर वह चाहे 'काला सागर' थी या 'ढिबरी टाइट' या फिर 'कड़ियाँ' या 'एक ही रंग'। मेरी कहानियों में एक अंडरकरंट महसूस किया जा सकता है कि आज की दुनिया में रिश्ते अर्थ से संचालित होते हैं। यह मेरी 80 और 90 की कहानियों में तो ख़ास तौर से महसूस किया जा सकता है। मेरी आज की कहानियाँ भी इस थीम से अछूती नहीं हैं। कहीं अन्याय होता नहीं देख सकता। अपने आप को कमज़ोर के साथ खड़ा पाता हूँ। हालाँकि मानता हूँ कि दर्द सबका एक सा होता है। मुझे अपनी दो कहानियाँ इस मामले में बहुत प्रिय हैं कि उन कहानियों के किसी भी पात्र से मैं परिचित नहीं हूँ। न ही स्थितियाँ मेरी देखी हुई थीं।

'देह की कीमत' अपनी कुछ अन्य कहानियों के साथ मेरी प्रिय कहानियों में से एक है। इस कहानी की एक विशेषता है कि मैं इस कहानी के किसी भी चरित्र से परिचित नहीं हूँ। लेकिन मैं तीन महीने तक एक-एक किरदार के साथ रहा और उनसे बातें कीं और उनकी भाषा, मुहावरे तक से दोस्ती कर ली।

एम. ए. में मेरे एक दोस्त पढ़ा करते थे - नवराज सिंह। वह उन दिनों टोकियो में भारतीय उच्चायोग में काम कर रहे थे। टोकियो से दिल्ली फ़्लाइट पर आते हुए उनकी मुलाक़ात मुझ से हुई। उन दिनो मैं एअर इंडिया में फ़्लाइट परसर के पद पर काम कर रहा था। बातचीत के दौरान उन्होंने मुझे तीन लाइन की एक घटना सुना दी, "यार की दस्सां, पिछले हफ़्ते इक अजीब जही गल्ल हो गई। ओह इक इंडियन मुण्डे दी डेथ हो गई। उसदा पैसा उसदे घर भेजणा सी। घर वालियाँ विच लड़ाई मच गई कि पैसे कौन लवेगा। बड़ी टेन्शन रही। इंसान दा की हाल हो गया

है।"

अपनी बात कह कर नवराज तो दिल्ली में उतर गया। लेकिन मेरे दिल में खलबली मचा गया। मैं उस परिवार के बारे में सोचता रहा जो अपने मृत पुत्र से अधिक उसके पैसों के बारे में चिन्तित है। उन लोगों के चेहरे मेरी आँखों के सामने बनते बिगड़ते रहे। मैंने अपने आसपास के लोगों में कुछ चेहरे ढूँढ़ने शुरू किये जो इन चरित्रों में फ़िट होते हों। उनका बोलने का ढंग, हाव-भाव, खान-पान तक समझता रहा। इस कहानी के लिये फ़रीदाबाद के सेक्टर अट्ठारह और सेक्टर पन्द्रह का चयन भी इसी प्रक्रिया में हुआ। मुझे बहुत अच्छा लगा जब सभी चरित्र मुझसे बातें करने लगे; मेरे मित्र बनते गए।

इस कहानी की विशेषता यह रही कि घटना का मैं चश्मदीद गवाह नहीं था। घटना मेरे मित्र की थी और कल्पनाशक्ति एवं उद्देश्य मेरा। यानी कि कहानी की सामग्री मौजूद थी। बस अब उसे काग़ज़ पर उतारना बाकी था। जब मेरी जुगाली पूरी हो गई तो कहानी भी उतर आई पन्नों पर।

ठीक इसी तरह 'क़ब्र का मुनाफ़ा' एक चुटकुले की तरह मुझे सुनाई गई। ज़किया जी ने बताया कि उनके पति ने उन दोनों के लिए एक पॉश किस्म के क़ब्रिस्तान में क़ब्रें बुक करवा दीं। जब अगले वर्ष ज़किया जी का जन्मदिन आया तो ज़ुबैरी साहब ने मज़ाक में कहा कि "तुमने पिछले जन्मदिन के तोहफ़े का तो अभी तक इस्तेमाल नहीं किया, फिर भला नया तोहफ़ा दे कर क्या करूँगा।"

उन्हीं दिनों मैंने एक विज्ञापन देखा जिसमें लाश के बेहतरीन मेक-अप के सामान का ज़िक्र था। मैं हैरान हुआ कि बाज़ारवाद लाश को भी बख़्शने को तैयार नहीं है और उसके मेकअप तक को व्यापार बनाने पर तुला है। फिर मैंने देखा कि एक वित्तीय संस्था से जुड़े अधिकारी किसी नए धन्धे के बारे में अपने मित्र से ज़िक्र कर रहे थे। और मैं सोच रहा था कि क़ब्र में पैर लटकाए ये लोग आराम क्यों नहीं करना चाहते। नादिरा के किरदार के लिये मुझे ज़किया जी का व्यक्तित्व एकदम सटीक लगा। बस हो गया कहानी के लिये मसाला

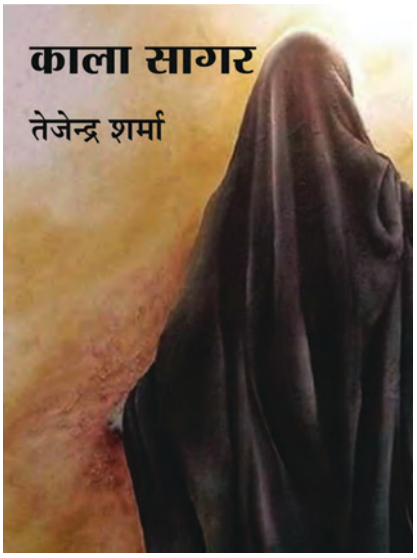

तैयार। कुल मिला कर एक ऐसी कहानी तैयार हुई जो कि बाज़ारवाद की कड़ी पड़ताल करती है। इस कहानी को रचना समय के संपादक हरि भटनागर ने पिछले साठ वर्षों की बीस बेहतरीन हिन्दी कहानियों में शामिल किया। एक मज़ेदार बात यह है कि इन दोनों कहानियों को पढ़ने और सुनने के बाद पाठकों ने इन कहानियों की तुलना प्रेमचन्द की 'कफ़न' के साथ की। फिर चाहे यह कहानियाँ लन्दन में पढ़ी गईं या फिर दिल्ली, फ़रीदाबाद, बरेली, यमुना नगर, शिमला या भोपाल में मुझे दर्शकों और पाठकों का स्नेह बेशुमार मिला।

मुझ से पूछा जाता है कि मेरे प्रिय लेखक कौन हैं। मेरा जवाब एक ही होता है कि मुझे न तो अंग्रेज़ी में और न ही हिन्दी में कोई एक लेखक पसन्द है। मुझे दरअसल रचनाएँ पसन्द हैं जैसे जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुर्दाघर', हिमांशु जोशी का 'कगार की आग', पानू खोलिया का 'सत्तर पार के शिखर', राही मासूम रज़ा का 'टोपी शुक्ला', असग़र वजाहत का 'जिस लाहौर नहीं वेख्या...' आदि रचनाएँ मुझे पसन्द हैं।

मैं आज भी मानता हूँ कि यदि नरेन्द्र कोहली महाभारत पर उपन्यास लिखने के स्थान पर अपने समाज से जुड़े विषयों पर कहानियाँ ही लिखते तो हमें बेहतर रचनाएँ पढ़ने को मिलतीं चाहे उनके बैंक बैलेंस में पैसे कम जाते। वे केवल पौराणिक रचनाओं को दोबारा लिखने वाले रचनाकार के रूप में पाठकों में लोकप्रिय हैं। उनकी 'परिणति' और 'कहानी का अभाव' कहानियाँ मुझे आज भी प्रभावित करती हैं। अपनी पीढ़ी के लेखकों में मुझे उदय प्रकाश की 'तिरिछ', स्वयं प्रकाश की 'क्या तुमने कभी सरदार भिखारी देखा है', अरुण प्रकाश की 'भैया एक्सप्रेस', हरि भटनागर की 'सिवड़ी रोटियाँ', ज्ञान प्रकाश विवेक की 'मुंडेर', एस. आर. हरनोट, देवेन्द्र और हृषिकेश सुलभ, पंकज सुबीर की कुछ कहानियाँ मुझे पसन्द हैं। युवा पीढ़ी के कहानीकारों में मुझे अल्पना मिश्र, मनीषा कुलश्रेष्ठ, पंखुड़ी सिन्हा, गीताश्री, विवेक मिश्र, अजय नावरिया, संजय कुंदन आदि से श्रेष्ठ साहित्य की अपेक्षाएँ रहती थीं। इन सबने अपने लेखन से अपने आपको बड़े लेखक के रूप में स्थापित कर लिया है। वंदना यादव का उपन्यास 'कितने मोर्चे' और 'शुद्धि' इन दिनों चर्चा में हैं।

भारत के बाहर लिखे जा रहे हिन्दी साहित्यकारों ने मुख्यधारा में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। अमरीका की सुधा ओम ढींगरा ने उपन्यास, कहानी और कविता – तीनों विधाओं में स्तरीय सृजन किया है। वे एक साहित्यकार के रूप में और हिन्दी सेवी के रूप में समान रूप से सक्रिय हैं। सुषम बेदी, अर्चना पेन्युली, अनिल प्रभा कुमार, रेखा राजवंशी, सुरेश चन्द्र शुक्ल, पुष्पिता अवस्थी, कपिल कुमार, राम तक्षक, जैसे तमाम लेखक अब भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का हिस्सा बन चुके हैं।

ब्रिटेन में ज़किया ज़ुबैरी, उषा राजे सक्सेना, उषा वर्मा, दिव्या माथुर, कृष्ण कुमार, अरुण सब्बरवाल, कादम्बरी मेहरा, शैल अग्रवाल, निखिल कौशिक, तोषी अमृता, जय वर्मा जैसे लेखकों की वरिष्ठ पीढ़ी; मोहन राणा, पद्मेश गुप्त, कृष्ण कन्हैया, वंदना मुकेश, अजय त्रिपाठी और शिखा वार्ष्णेय जैसे लेखकों की वर्तमान पीढ़ी और आशुतोष कुमार, आशीष मिश्रा, ऋचा जैन, इंदु बारोठ, तिथि दानी, स्वाति पटेल और धरती वासानी वर्तमान में भी सक्रिय हैं।

सत्येन्द्र श्रीवास्तव, गौतम सचदेव, नीना पॉल, प्राण शर्मा और नरेश भारतीय जैसे

साहित्यकार देह त्यागने से पहले प्रचुर मात्रा में साहित्य सृजन कर गए जो उन्हें वर्षों तक पाठकों के बीच जीवित रखेगा। मुझे यह कहने में कोई झिझक महसूस नहीं होती कि मैंने तमाम भारतेतर लेखकों से कुछ न कुछ सीखा है और अपने साहित्य को मैच्योर बनाने की कोशिश की है। यह प्रक्रिया अभी भी जारी है।

लेखक तेजेन्द्र शर्मा के साथ एक समस्या तो हमेशा से लगी रही। मुझे हमेशा मार्क्सवाद विरोधी व्यक्ति समझा गया। जब मुंबई में रहता था तब भी तथाकथित वामपन्थी लेखकों के कोप का भाजन बनना पड़ता। यहाँ तक घोषित कर दिया जाता कि तेजेन्द्र शर्मा के पास राजनीतिक दृष्टि नहीं है इसलिये उनका लेखन सशक्त नहीं हो सकता। मेरे पारिवारिक मित्र प्रो. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित तक यही सोचते रहे। मैंने एक बार प्रश्न भी किया, "दीक्षित जी, यदि मेरा राजनीतिक दृष्टिकोण आपके दृष्टिकोण से अलग हो, तो क्या आप यह मान लेंगे कि क्योंकि मेरा एक राजनीतिक दृष्टिकोण है, इसलिये मेरा लेखन स्तरीय है?... मैं जानता हूँ कि ऐसा नहीं होगा। क्या यह तानाशाही नहीं है कि आप मुझे वामपन्थी न होने का दण्ड दे रहे हैं और मेरे लेखन को लेखन ही नहीं मान रहे?" दरअसल मेरा विरोध हमेशा छद्म-मार्क्सवादी लेखकों के व्यवहार से रहा है, न कि मार्क्सवाद से।

यहाँ तक तो फिर भी ठीक था। मुश्किल तो तब हुई जब मुझे आर. एस. एस. से जुड़ा व्यक्ति घोषित कर दिया गया। मुझे आर. एस. एस. की तो उतनी भी जानकारी नहीं जितनी की मार्क्स की है। मैं तो लन्दन आने वाले अपने साहित्यकार मित्रों को मार्क्स की क़ब्र दिखाने भी ले जाता हूँ, जो कि लन्दन के एक पूँजीपतियों के इलाक़े में बनी है। फिर भला यह अफ़वाह कैसे फैल गई कि मैं आर. एस. एस. समर्थक हूँ या कट्टर हिन्दूवादी हूँ?

दरअसल हुआ यूँ कि लन्दन में बसने के बाद इंदु शर्मा कथा सम्मान को अंतर्राष्ट्रीय कर दिया और पहला सम्मान चित्रा मुद्गल जी को दिया उनके उपन्यास 'आवां' पर। उसके बाद मैं 'पुरवाई' पत्रिका का संपादक बन गया। बस दो और दो को जोड़ कर मैं बन गया

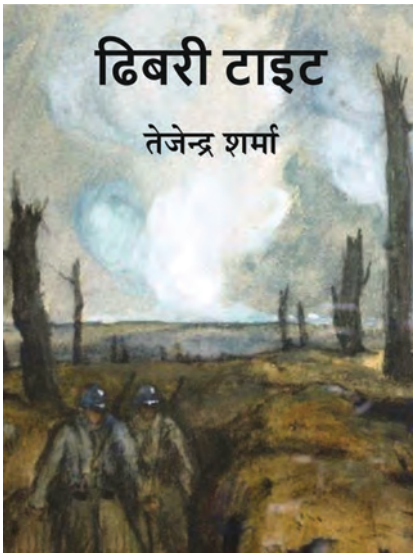

आर. एस. एस. समर्थक। मेरी कोई भी कहानी पढ़े बिना मेरे नाम को भगवे कपड़े पहना दिये गए। और मुझसे सवाल किया जाने लगा, "भाई तेजेन्द्र शर्मा, जब तुम हो भगवाधारी, तो भला असग़र वजाहत, संजीव, विभूति नारायण राय, हृषिकेश सुलभ, एस. आर. हरनोट जैसे लोगों को सम्मानित कैसे करते हो? और मुख्य अतिथि के तौर पर गिरीश करनाड, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित और रवीन्द्र कालिया को कैसे बुला लेते हो?" मुझे नहीं लगता कि मेरे लिये ऐसे सवालों के जवाब देना ज़रूरी है।

जब अपनी हिन्दी साहित्य की यात्रा के बारे में सोचता हूँ तो पाता हूँ कि पहले जासूसी उपन्यास पढ़े। फिर डॉ. धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता'। यह उपन्यास क़रीब सतरह या अठारह बार तो पढ़ा ही होगा। वहाँ से नरेन्द्र कोहली की 'दीक्षा' तक सफ़र तय किया। उस किताब से बहुत प्रभावित हुआ था और उसकी तुलना मिल्टन की 'पैराडाइज़ लॉस्ट' से करते हुए अंग्रेज़ी में एक लंबा-सा पत्र लेखक को लिख डाला। क्योंकि स्कूल कॉलेज में हिन्दी न के बराबर ही पढ़ी थी। इसलिये हिन्दी के क्लासिक कवियों से परिचय नहीं हो पाया।

जब इंदु ने मुंबई में डॉ. देवेश ठाकुर के मार्गदर्शन में पीएॅच. डी. शुरू की तभी मुझे हिन्दी उपन्यास से जुड़ने का अवसर मिला। मैंने हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर, हिमांशु जोशी, जैनेन्द्र कुमार, राही मासूम रज़ा, मन्नू भण्डारी, आदि के उपन्यास पढ़े। कुल सौ के लगभग अवश्य पढ़े होंगे। मुझे जगदीश चन्द्र और पानू खोलिया के लेखन ने बहुत प्रभावित किया। मुझे आज भी लगता है कि जगदीश चन्द्र के लेखन का सही अवलोकन नहीं हो पाया है। शायद वे किसी गुट विशेष से नहीं जुड़े थे। उनका हर उपन्यास एक क्लासिक उपन्यास है और पंजाब के ग्रामीण जीवन की तस्वीर खींच कर रख देते हैं। पानू खोलिया का उपन्यास 'सत्तर पार के शिखर' मुझे आज भी याद आता है।

जब पहली कहानी लिखी थी, 'प्रतिबिम्ब'; तो इंदु उसे पढ़ कर बहुत हँसी थी। उसने कहा कि यह कैसी भाषा है। सोचते अंग्रेज़ी में हो और लिखते हिन्दी में हो। खाली 'हैं' लगा देने से अंग्रेज़ी हिन्दी नहीं बन जाती। उसने मुझे मूलमंत्र दिया था कि पंजाबी में सोचो और हिन्दी में लिखो। आँख मूँद कर उसकी बात का अनुसरण शुरू कर दिया। आहिस्ता- आहिस्ता अंग्रेज़ी और पंजाबी हाशिये पर होती गईं और मैं सपने भी हिन्दी में देखने लगा। यह कहानी नवभारत टाइम्स के रविवारीय संस्करण में प्रकाशित हुई थी। जब सारिका और धर्मयुग में पहली कहानियाँ प्रकाशित हुईं तो लगने लगा कि अब लेखक बनता जा रहा हूँ।

एअर इंडिया में फ़्लाइट परसर की नौकरी के कारण मेरी अधिकतर कहानियाँ विदेश के पाँच-सितारा होटलों में लिखी गईं। 'ईंटों का जंगल' कहानी तो हवाई जहाज़ में एक ही सिटिंग में लिखी गई। हुआ यूँ कि मुझे दिल्ली से फ़्रैंकफ़र्ट 'सुपरन्यूमरी क्रू' के रूप में जाना था। यानी कि यूनिफ़ॉर्म तो पहननी थी किन्तु विमान में काम नहीं करना था। इससे एअरलाइन को हमारे लिये वीज़ा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

विमान में दाख़िल होने के बाद मैंने अपनी कमीज़ बदली और फ़र्स्ट क्लास की एक सीट पर बैठ कर अपना राइटिंग पैड निकाल लिया। करीब नौ घन्टे लंबी उड़ान में तरह-तरह के व्यवधान आने के बावजूद फ़्रैंकफ़र्ट पहुँचते पहुँचते मेरी कहानी का पहला ड्राफ़्ट पूरा हो चुका था। ऐसे ही 'बेघर आँखें' कहानी लन्दन

से मुंबई जाते हुए पूरी की थी। एक सिटिंग में कहानी पूरे करने के कुछ लाभ भी हैं तो कुछ दिक्कतें भी हैं। फ़ायदा तो यह होता है कि स्पांटेनियटी और कांटीन्युइटी बनी रहती है। कमी यह हो सकती है कि कहानी को अपने आप आगे बढ़ने का मौक़ा नहीं मिलता और कहानी जैसी सोची जाती है वैसी ही लिखी भी जाती है।

'कड़ियाँ' कहानी मेरी एक ऐसी कहानी है जिसका अंत पहले लिख लिया था। क्योंकि यह मैंने स्वयं महसूस किया था। मेरे दादाजी ने मुझे दसवीं पास करने के बाद एक साइकिल ले कर देने का वादा किया था और ग्यारहवीं पास करने के बाद एक घड़ी ले कर देने का वादा भी कर दिया। किन्तु मेरा उधार उतारे बिना ही एक सड़क दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। मैं आज भी उनको बेनेफ़िट ऑफ़ डाउट देता हूँ कि अगर उनकी दुर्घटना में मौत न हो जाती तो शायद मेरा उधार उतार देते। किन्तु सच यही था कि मेरा उधार चुकता किये बिना ही वे दुनिया छोड़ गए थे। जब उनके अंतिम संस्कार के लिये निगम बोध घाट गया था तो कुछ महसूस किया था जो कि दिमाग़ के किसी कोने में छप सा गया था।

बस एक दिन वही ख़्याल शब्दों में उतर आया और मैंने कहानी शुरू करने से पहले ही उसका अन्त लिख लिया, "पापा ने चिता का चक्कर लगाया और चिता को अग्नि दी। अब दादाजी से कभी मुलाक़ात नहीं हो पाएगी। क्या राज की सारी निराशाएँ भी चिता के साथ ही जल जाएँगी? शोले ऊपर उठने लगे। एकाएक राज को लगा कि चिता में से एक साइकल निकली और शोलों के ऊपर स्थिर हो गई। कुछ ही क्षणों में साइकल का एक पहिया घड़ी बन गया और दूसरा पहिया पापा का मुंडा हुआ सिर। दोनों पहिये घूमने लगे। घड़ी मुंडा हुआ सिर, साइकिल! .... राज से देखा नहीं गया। उसने मुँह फेर लिया।"

हिन्दी साहित्य में एक प्रवृत्ति जो मुझे परेशान करती है वह है दूसरे किसी के लेखन की तारीफ़ न कर पाना। यहाँ तारीफ़ भी यह देख कर की जाती है कि अमुक लेखक किस गुट का है। या फिर उसकी तारीफ़ करके मैं

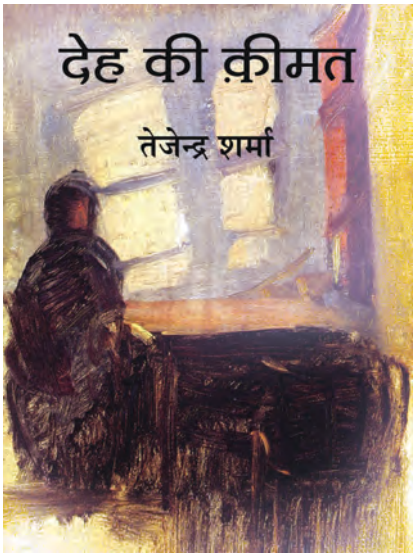

उसे कैश कैसे कर सकता हूँ। हर लेखक अपने लेखन को ले कर आत्म-मुग्ध रहता है। जिस खुले दिल से मैं ब्रिटेन के कुछ लेखकों की रचनाओं की श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए उनकी तारीफ़ कर देता हूँ, मुझे हैरानी होती है कि बहुत से वरिष्ठ लेखक ऐसा नहीं कर पाते।

मुझे साहित्य में राजनीति कभी न तो समझ आई और न ही पसन्द है। राजनीति के लिये पैम्फ़लेट तो लिखे जा सकते हैं, साहित्य नहीं। जब हम पीछे मुड़ कर देखते हैं तो पाते हैं कि महान् साहित्य किसी राजनीतिक विचारधारा का मोहताज नहीं था। दरअसल जब हम किसी एक राजनीतिक विचारधारा के दबाव में साहित्य रचना करते हैं तो साहित्य एकरस सा होने लगता है। वरना क्या बात है कि निराला 'राम की शक्ति पूजा' भी लिख सकते हैं, 'सरस्वती वंदना' भी और उसके साथ-साथ '...वह तोड़ती पत्थर' भी, जबकि आज का साहित्य भ्रष्टाचार, मज़दूर, किसान और बाज़ारवाद से ऊपर नहीं उठ पाता। शेक्सपीयर का शाइलॉक सही पूछता है कि 'क्या किसी यहूदी को दर्द नहीं होता जब उसे चोट लगती है?' यानी कि चोट लगने पर दर्द एक सा होता है चाहे आप समाज के किसी भी वर्ग से संबंध रखते हों। हमें दर्द और समस्याओं का वर्गीकरण नहीं करना चाहिए। साहित्य की कोई सीमाएँ तय नहीं करनी चाहिए। देखिये आजकल राजे-रजवाड़े तो रहे नहीं। इसलिये कोई भी लेखक राजाओं की कथाएँ तो नहीं ही लिखेगा। जो लिखेगा, साहित्य प्रेमी उसे माफ़ नहीं करेंगे।

विदेशों में यदि प्रवासी भारतीय अपने धर्म और कल्चर की तरफ़ ध्यान देते हैं तो यह भगवा या हरे झण्डे का चक्कर नहीं होता। यह होता है अस्मिता का सवाल। यदि हम अपने बच्चों को हिन्दी पढ़ाना चाहें, तो वह केवल मन्दिरों में ही पढ़ाई जाती है। हम उन्हें अपने धर्म के बारे में इसलिए बताते हैं ताकि वे केवल पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण ही न करते रहें। हम चाहे बम्बइया फ़िल्मों का कितना भी मज़ाक क्यों न उड़ा लें, सच तो यह है कि विदेशों में भारत की मिट्टी से जुड़े रहने में किसी भी साहित्य से कहीं अधिक योगदान इन फ़िल्मों का है। हमारा प्रयास रहता है कि घर में भी हिन्दी टेलिविज़न चैनल के माध्यम से हमारी भाषा की गूँज सुनाई देती रहे। समस्या यह भी है कि भारत के लेखक और आलोचक विदेश में बसे भारतीयों की समस्याओं से परिचित नहीं हैं और प्रवासी लेखकों को भी उसी कसौटी पर कसने का प्रयास करते हैं जिससे कि वे भारत के लेखकों को कसते हैं।

मंदिरों की विदेशों में एक सांस्कृतिक भूमिका रहती है। जैसे यदि एक कवि सम्मेलन किसी किराये के हॉल में किया जाए तो पहले तो हॉल का किराया भरना पड़ता है फिर नाश्ते पानी का ख़र्चा अलग होता है। लन्दन में दिल्ली की तरह चाय और बिस्कुट का नाश्ता दे कर काम नहीं चलता। जबकि मंदिर अपने हॉल में मुफ़्त कवि सम्मेलन करवा देते हैं और कवियों एवं श्रोताओं को पूरा भोजन भी करवा देते हैं। यह मंदिर की सकारात्मक भूमिका है। मंदिर वाले यह नहीं पूछते कि आपके कवियों या श्रोताओं में से कितने हिन्दू हैं, कितने मुसलमान या सिख।

वहीं एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह भी है कि अमरीका, ब्रिटेन, यूरोप या खाड़ी देशों के लेखक पहली पीढ़ी के प्रवासी हैं। अभी हमें तलाश है दूसरी या तीसरी पीढ़ी के प्रतिनिधियों की जिनका जन्म किसी पश्चिमी सभ्यता वाले देश में हुआ हो और वह हिन्दी में साहित्य रचना करे। इसलिये प्रवासी साहित्य में नॉस्टेल्जिया एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है।

पहली पीढ़ी का प्रवासी अपने नए समाज को न तो समझ ही पाता है और न ही उसका हिस्सा बन पाता है। इसलिये जहाँ मॉरीशस, सुरीनाम या फ़िजी के हिन्दी साहित्य में जिस शिद्दत से वे देश उभर कर आते हैं, उस तरह पश्चिमी देशों के हिन्दी साहित्य में ऐसा नहीं हो पाता। दरअसल यहाँ के हिन्दी लेखक ब्रिटेन और अमरीका में रह कर भी भारत का साहित्य रचते हैं। वे वहाँ का हिन्दी साहित्य नहीं रचते।

विदेश में बसे हिन्दी लेखक यदि प्रयास करें तो हिन्दी को एक नया मुहावरा दे सकते हैं। उन्हें अपने अपनाए हुए समाज को सच्चे अर्थों में अपनाना होगा। कई लेखक बस सड़क का नाम या बिल्डिंगों के रंग बता कर दिखाने का प्रयास करते हैं कि वे अमुक देश की कहानी लिख रहे हैं। दरअसल हमें उस देश के सरोकार समझने होंगे, वहाँ की सामाजिक स्थितियों को जानना होगा। जब यह सब हमारी कहानियों, कविताओं में आएगा, तभी हम उस देश का हिन्दी साहित्य लिख रहे होंगे। होना यह चाहिए कि ब्रिटेन के हिन्दी लेखन से हमें ब्रिटेन की एक तस्वीर दिखाई दे और वहाँ के सरोकारों से हमारा परिचय हो।

मैंने अपनी कहानियों में तो ब्रिटेन के जीवन को दिखाने की कोशिश की ही है; अपनी कविताओं एवं ग़ज़लों में भी यह संभव करने का प्रयास किया है। मेरी प्रतिनिधि ग़ज़ल में ब्रिटेन अपने प्रवासियों को कहता है, 'जो तुम न मानो मुझे अपना, हक़ तुम्हारा है / यहाँ जो आ गया इक बार, वो हमारा है। ये घर तुम्हारा है इसको न कहो बेगाना / मुझे तुम्हारा तुम्हें अब मेरा सहारा है।' इसी तरह जब मैं अपने शहर हैरो के बदलते चरित्र को देखता हूँ तो परेशान हो जाता हूँ। हैरो-वासियों के बारे में कहा जाता है कि उनकी नाक ऊँची रहती है। मेरी छोटी बहर की ग़ज़ल कहती है, 'नाक ऊँची थी शहर की मेरे / यह अचानक इसे हुआ क्या है? / बाग़ में जिसने बना डाले भवन / तय करो उसकी फिर सज़ा क्या है।' टेम्स नदी के आसपास के माहौल को देखते हुए ज़ाहिर है कि गंगा नदी का ख़्याल आता है, 'बाज़ार संस्कृति में नदियाँ नदियाँ ही रह जाती

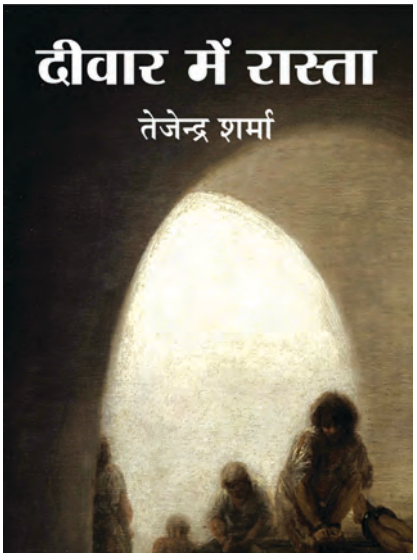

हैं / बनती हैं व्यापार का माध्यम, माँ नहीं बन पाती हैं।'

प्रकाशन को लेकर भी बहुत से अनूठे अनुभव हुए हैं। चालीस साल से अधिक का साथ खड़े-खड़े टूट जाता है। कुछ इसी तरह के हालात से जूझते हुए मित्र पंकज सुबीर ने अपने प्रकाशन संस्थान शिवना से मेरे तमाम कहानी संग्रहों के प्रकाशन का बीड़ा उठाया और काला सागर, ढिबरी टाइट, देह की कीमत, बेघर आँखें, दीवार में रास्ता, सपने मरते नहीं, मौत... एक मध्यांतर के साथ-साथ मेरा नवीनतम कहानी संग्रह संदिग्ध पेपर बैक में प्रकाशित किये। पंकज का मानना है कि आज का पाठक महँगी सजिल्द पुस्तकों के मुकाबले किफ़ायती पेपर बैक किताबें पसन्द करता है। विशेषकर विद्यार्थी तो केवल सस्ती पुस्तकें ही ख़रीदने में रुचि रखते हैं।

'संदिग्ध' कहानी संग्रह में मेरी कुछ ऐसी कहानियाँ शामिल हैं जो स्वयं मुझे भी चकित करती हैं। ख़्वाहिशों के पैबन्द, संदिग्ध, वन्स ए सोलजर, अंतिम संस्कार का खेल, और नाता टूट गया जैसी कहानियाँ लिखने के दौरान मैंने अपने आप को जैसे री-डिस्कवर किया। अपने घर के पीछे वाले छोटे से बाग़ में लोमड़ियों के परिवार के साथ बनाए अनूठे रिश्ते ने जो कहानी लिखवाई वह मेरे दिल के बहुत क़रीब है।

मेरी कहानियों में संवादों का ख़ासा इस्तेमाल होता है। बहुत सी बातें मैं स्वयं न बोल कर अपने पात्रों के माध्यम से कहलवाता हूँ। इसमें मेरा 'शांति' टेलिविज़न सीरियल लेखन बहुत काम आता है। मैं फ़िल्म या टेलिविज़न के लेखन को दोयम दर्जे का लेखन नहीं मानता। मेरे लिये यह लेखन बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यही लेखन ज़्यादा से ज़्यादा लोगों के साथ संवाद स्थापित करता है। मेरे शांति के एपिसोड करोड़ों दर्शकों ने देखे। वहाँ मैं अपने लेखन के साथ प्रयोग भी करता था। जैसे एक बार दिनेश ठाकुर ने कहा कि तेजेन्द्र भाई मेरे हर एपिसोड में कम से कम एक डॉयलॉग ऐसा लिखा करो जैसे राजकुमार टाइप - लार्जर दैन लाइफ़ - जिसे लोग याद रखें। मैं सरल भाषा में सादे संवाद भी लिखता था और बीच-बीच में लार्जर दैन लाइफ़ भी।

जब टेलिविज़न सीरियल की बात आ गई है तो अपना रेडियो, टी. वी. और फ़िल्मों का अनुभव भी याद आने लगा है। रेडियो से मैं शायद 1972 में जुड़ा था - पहले युववाणी के माध्यम से और फिर एक ड्रामा वॉयस के रूप में। सत्येन्द्र शरत, दीनानाथ और कुमुद नागर (नागर जी के सुपुत्र) के साथ बहुत से रेडियो नाटक किये। फिर स्कूल टेलिविज़न दिल्ली में अंग्रेज़ी पढ़ाने के लिये कलाकार के रूप में काम किया।

मुंबई आकर सीरियल लेखन और फ़िल्मों में अदाकारी का अनुभव भी हुआ। अन्नू कपूर के साथ एक फ़िल्म की थी 'अभय' जो कि ऑस्कल वाइल्ड की कहानी 'कैंटरविल घोस्ट' पर आधारित थी। फ़िल्म में मेरे पुत्र मयंक की चाइल्ड हीरो की भूमिका थी। वैसे उसमें नाना पाटेकर, मुनमुन सेन और बेंजामिन गिलानी भी थे। नाना पाटेकर को नज़दीक से देखने समझने का मौक़ा मिला।

मैं एक महीना राज पीपला में फ़िल्म के लिये रहा। इन्दु भी कुछ दिन वहाँ रही मगर तबीयत ख़राब होने के कारण दीप्ति के साथ वापिस मुंबई चली आई। मैंने देखा कि नाना भीतर से बहुत डरा हुआ इंसान है। इतना बड़ा कलाकार होने के बावजूद जब उसने मेरे पाँच लाइनों के डायलॉग को हथिया लिया और अन्नू कपूर बस बेबस देखता रह गया, तब मैंने पहली बार अनुभव किया कि फ़िल्मों में बड़ा

कलाकार किस तरह मनमानी करता है। जिस तरह नाना ने स्क्रिप्ट फेंक कर ज़मीन पर मारा इससे अनुभव और भी कड़वा हो गया। इस फ़िल्म की डबिंग भी एक अलग किस्म का अनुभव था।

हम सब यह मान कर चलते हैं कि पश्चिमी देशों में सभी धनाढ्य लोग बसते हैं। आम आदमी इन देशों में भी होता है जो सप्ताह में चालीस घन्टे नौकरी करता है, शनिवार को ओवरटाइम करता है। मॉर्गेज का भुगतान करते-करते उसकी कमर टूटने लगती है। उसके घर की हर चीज़ उधार ले कर ख़रीदी गई होती है। वह आम आदमी भी उतना ही परेशान है जितना कि भारतीय गाँव या महानगर का आम आदमी। मेरी कहानियों में ब्रिटेन के आम आदमी के दर्शन होते हैं।

'इंदु शर्मा कथा सम्मान' के लंदन आने के बाद मेरे अनुभव क्षेत्र में बहुत बढ़ोत्तरी हुई। मुझे यहाँ के भारतीय उच्चायोग से बहुत सहयोग मिला। श्री पी. सी. हलदर, श्री राजतवा बाग़ची, डॉ. गिरीश करनाड, श्री पवन के वर्मा, श्री आसिफ़ इब्राहिम, श्री सिद्धु और मनमीत सिंह नारंग, मोनिका मोहता, संगीता बहादुर, अनिल शर्मा, राकेश दुबे, आनन्द कुमार, विनोद कुमार, तरुण कुमार आदि का साथ हमारे सम्मान को ब्रिटेन में स्थापित करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

राकेश दुबे के माध्यम से लॉर्ड तरसेम किंग ने हिन्दी के इस अकेले अंतर्राष्ट्रीय सम्मान को हाउस ऑफ़ लॉर्ड में प्रतिष्ठित कर दिया और इसमें हैरो से ब्रिटेन के गृह राज्य मंत्री टोनी मैक्नल्टी का संरक्षण भी मिला। एअर इंडिया के साथ-साथ भारतीय वित्तीय संस्थाएँ स्टेट बैंक, बैंक ऑफ़ इंडिया, बैंक ऑफ़ बड़ौदा, भारतीय जीवन बीमा निगम, एवं इंडिया टूरिज़्म आदि हमारे काम में हमारे साथ आ खड़े हुए। हमने इस काम में अपने इलाक़े के हलवाई, नाई एवं मन्दिर तक से सहयोग लिया। हम अपने सम्मान के साथ यहाँ के आम आदमी को जोड़ना चाहते थे। ज़किया ज़ुबैरी जी के माध्यम से हबीब बैंक ज़्यूरिख़ भी हमारे कदम से कदम मिला कर चलने लगा है।

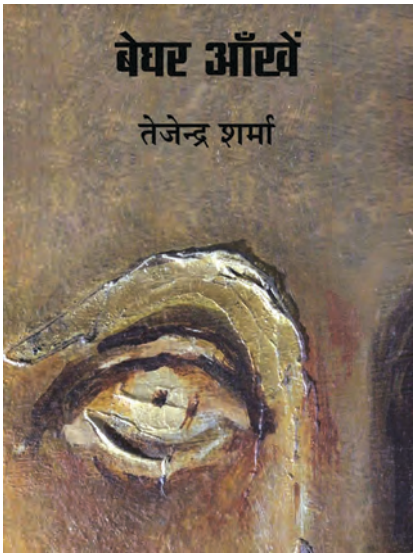

कथा सम्मान के मुंबई से लन्दन आ जाने के बाद मुझे सूरज प्रकाश एवं मधु भाभी के वजूद का अहसास बहुत शिद्दत से हुआ। दोनों ने पूरे कमिटमेंट के साथ कथा यू. के. के भारतीय फ्रन्ट को सँभाला हुआ है। दोनों बिना किसी स्वार्थ के शारीरिक, मानसिक और आर्थिक रूप से इस महायज्ञ के साथ जुड़े हैं। गीतांजलि बहुभाषीय समाज एवं डॉ. कृष्ण कुमार का सहयोग पिछले नौ वर्षों से लगातार मिलता रहा है। वर्ष 2008 से वरिष्ठ पत्रकार श्री अजित राय ने कथा सम्मान के साथ जुड़ कर इसे पूरे भारत में नए सिरे से स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई। अजित राय ने केवल इतना ही नहीं किया। उन्होंने मेरे लिखे साहित्य को लंदन में रह कर पढ़ा और उसे नए सिरे से भारत के आलोचकों, साहित्यकारों एवं नाटककर्मियों को भी पढ़ने पर मजबूर किया।

इंदु शर्मा कथा सम्मान की स्थापना भी विशेष हालात में हुई। मैं जगदम्बा प्रसाद दीक्षित को लेकर डॉ. धर्मवीर भारती के घर गया था। इससे पहले यह दोनों वरिष्ठ जन कभी एक दूसरे से नहीं मिले थे। वहीं पंद्रह मिनट की बातचीत के दौरान डॉ. भारती ने सम्मान की राशि ग्यारह हज़ार रुपये एवं कथा सम्मान का नाम एवं चालीस वर्ष की आयु-सीमा भी तय कर दी। वे मान भी गए कि पहला इंदु शर्मा कथा सम्मान वे स्वयं कार्यक्रम में उपस्थित हो कर देंगे। पूरे मुंबई में सब जानते थे कि भारती जी किसी कार्यक्रम में हिस्सा लेते ही नहीं। किन्तु वे आए, गीतांजलिश्री को सम्मानित किया और क़रीब चालीस मिनट तक धाराप्रवाह बोले।

मुंबई के साहित्य-प्रेमियों के लिये यह एक नया अनुभव था। कार्यक्रम ठीक समय पर शुरू हुआ और ठीक ही समय पर ख़त्म भी हो गया। हिन्दी जगत् के लिये यह भी एक नया अनुभव था। कुछ लोग तो कार्यक्रम के समाप्त होते-होते पहुँचे। मुंबई में हमारे मुख्य-अतिथियों एवं अध्यक्षों की सूची देख कर सम्मान की प्रतिष्ठा का अंदाज़ हो सकता है। उनमें भारती जी के अतिरिक्त ये नाम शामिल थे कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मनोहर श्याम जोशी, ज्ञान रंजन, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, कन्हैया लाल नंदन, गोविन्द मिश्र, कामतानाथ।

कभी-कभी ख़ुशियाँ अचानक कहीं से चली आती हैं। उस ख़ुशी का मज़ा भी कुछ अलग ही होता है। मुझे याद पड़ता है कि भारतीय उच्चायोग, लन्दन में कार्यरत मेरे एक मित्र थे विकास स्वरूप। उन दिनों लन्दन में टीवी पर एक प्रोग्राम आता था - हू वुड बी ए मिलियनेयर। जिसमें एक मेजर को खाँसी के माध्यम से सवाल का जवाब देने में सहायता करने का आरोप लगा। इसी थीम को लेकर विकास के दिल में अंग्रेज़ी में एक उपन्यास लिखने की योजना बनी। विकास ने उस थीम के बारे में मुझसे बातचीत की। कई बार हमारी उस मैन्युस्क्रिप्ट को ले कर बातचीत होती रही। मुझे याद पड़ता है कि मैंने विकास को कहा था, "विकास जी, जो उपन्यास आप लिख रहे हैं, इसमें बेस्टसैलर होने की सभी ख़ूबियाँ हैं। आप इसे साहित्य समझने के चक्कर में मत पड़िये गा। यह उपन्यास आपको शीर्ष के पाप्युलर लेखकों की कतार में ला खड़ा करेगा।"

बातें चलती रहीं और एक दिन विकास का उपन्यास क्यू अण्ड ए के नाम से प्रकाशित हो गया और लन्दन के नेहरु केन्द्र में उसका विमोचन भी हुआ। मुझे याद आया कि उससे एक साल पहले विकास ने 'इंदु शर्मा कथा सम्मान' में सक्रिय भाग लिया था। और मैंने उसे कहा था कि लो भाई अब तो हिन्दी के मंच पर तुम्हारा लोकार्पण हो गया। जब उपन्यास

को मैंने खोल कर देखा तो पाया कि विकास ने उस उपन्यास के लेखन में सहायता के लिये मुझे भी धन्यवाद कहा था। आज वही उपन्यास जब दुनिया की बेहतरीन फ़िल्म स्लमडॉग मिलिनेयर के नाम से पुरस्कार पर पुरस्कार जीत रही है, मुझे यह सोच कर अच्छा लगता है कि इस उपन्यास के लेखन के साथ किसी न किसी रूप में मैं भी जुड़ा था।

यह थोड़ी अजब सी स्थिति है कि मैं कथा सम्मान प्राप्त साहित्यकारों में से केवल दो एक से ही समारोह के बाद भारत में मिल पाया हूँ। भाई असग़र वजाहत से ज़रूर अच्छी मित्रता हो गई है। होता कुछ यूँ है कि मैं अधिकतर सम्मानित साहित्यकारों से पहली बार लंदन के हवाई अड्डे पर ही मिलता हूँ। और यहाँ लन्दन में सूरज प्रकाश जब तक कथा यूके से जुड़े रहे उनकी देखभाल करते रहे। मेरे साथ लेखकों का कोई ख़ास जुड़ाव हो ही नहीं पाता। कभी कभार किसी समारोह में मुलाक़ात हो जाती है। वर्ष 2008 में जब इंडिया इंटरनेशनल सेन्टर में मेरा कहानी पाठ था, तो शायद पहली बार ऐसा हुआ कि नासिरा शर्मा, असग़र वजाहत और प्रमोद कुमार तिवारी इकट्ठे उस कार्यक्रम में मौजूद थे। हरनोट साहब की सादगी हमेशा उनकी ईमेल के माध्यम से मुझ तक पहुँचती रहती है।

आज मुझे लंदन में रहते हुए 25 साल हो चुके हैं। बेटी दीप्ति अब आर्या के नाम से भारतीय टीवी में एक्टिंग करती है। पुत्र मयंक आई. टी. स्पेशलिस्ट है और अपनी डेंटिस्ट पत्नी उन्नति के साथ वापस मुंबई में बस गया है। मैं अपने लैपटॉप के ज़रिये अपने वैश्विक परिवार से जुड़ा रहता हूँ।

जब मैं पीछे मुड़ कर देखता हूँ तो पाता हूँ कि एक लड़का जिसे हिन्दी ठीक से लिखनी नहीं आती थी – उसे हिन्दी साहित्य के कारण ही भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी, राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी, शिक्षा मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक एवं लंदन के बकिंघम पैलेस में प्रिंस चार्ल्स द्वारा सम्मानित किया गया। महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं हरियाणा के मुख्यमंत्रियों ने मेरे लेखन को रेखांकित किया। भारत के विश्वविद्यालयों में मेरे लेखन पर शोध हो रहे हैं और मेरी कहानियाँ पाठ्यक्रम का हिस्सा बन रही हैं। एक ही बात कह सकता हूँ कि मैंने हिन्दी साहित्य को जो कुछ दिया है हिन्दी साहित्य ने चक्रवर्ती ब्याज के साथ वापिस कर दिया है।

यहाँ यह अवश्य कहना चाहूँगा कि मुझे अपनी युवा पीढ़ी पर नाज़ है। मैं उनसे जुड़ कर ख़ुद को युवा महसूस करता हूँ। युक्रेन के राकेश शंकर भारती ने जब अपने उपन्यास में मुझे एक चरित्र के रूप में पेश किया तो उस स्थिति को बयान करने के लिये शब्द मिलना मुश्किल है। युवा पीढ़ी से मैं केवल अपेक्षाएँ नहीं करता बल्कि उनसे कुछ सीखता भी हूँ।

कथा यू. के. एवं पुरवाई पत्रिका की मुहिम में बहुत से मित्रों ने साथ दिया है। जो भी उपलब्धियाँ मेरे नाम से जोड़ी जाती हैं उनमें इन मित्रों के सहयोग का बड़ा हाथ है। ब्रिटेन में रमेश पटेल, विभाकर बक्षी, कैलाश बुधवार, जय वर्मा, निखिल कौशिक, अरुणा अजितसरिया, इंदु बारौठ का निरंतर सहयोग मिला, भारत में वंदना यादव, महेन्द्र प्रजापति, नीलिमा शर्मा और पीयूष द्विवेदी ने नि:स्वार्थ भाव से इस मुहिम में साथ निभाया है।

यह सच है कि जब कभी एक लेखक के तौर पर हमारे काम को पहचान मिलती है तो उसका सुख अलग ही होता है। मैं उन लेखकों में से नहीं हूँ जो कहते हैं कि मैं स्वांत: सुखाय लिखता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरा लिखा एक एक शब्द प्रकाशित हो, उसे लोग पढ़ें और उस पर प्रतिक्रिया भी दें। मेरा लिखा साहित्य विद्यार्थी स्कूलों में पढ़ें, कॉलेज में पढ़ें। मैं सम्मानों के बारे में यह नहीं कहता कि फलाँ सम्मान मिलने से मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। मुझे एक आम पाठक का पत्र भी अच्छा लगता है; एक साथी लेखक की प्रतिक्रिया या सुझाव भी अच्छा लगता है; किसी वरिष्ठ लेखक या आलोचक की शाबाशी भी अच्छी लगती है।

मेरे निकट लेखन केवल अपने भीतर का सत्य खोजने का नाम नहीं है। मेरे लिए लेखन का अर्थ है अपने पाठक के साथ संवाद स्थापित करना।

000

लघुकथा

भय की मृत्यु

ज्ञानदेव मुकेश

ज़मींदार साहब का पूरे गाँव में काफी दबदबा और ख़ौफ़ था। उनके एक बुलाहट पर पूरा गाँव उनके दरवाज़े पर आकर खड़ा हो जाता था। अवसर छोटा हो या बड़ा उनके दालान में हमेशा हाथ जोड़े लोगों की भीड़ लगी रहती थी। दूर-दूर तक उनके नाम का डंका बजता था।

उनके घर के आगे दिनभर गाँव के आवारा कुत्ते भी मंडराते रहते थे।

एक सुबह ज़मींदार साहब का इन्तेकाल हो गया। गाँव में दूर तक ख़बर भेजी गई। मगर

जब उनका जनाज़ा उठा तो कंधा देने वाले चार लोगों और अन्य दो करीबियों के सिवा आसपास वहाँ कोई भी नहीं था। और तो और, वहाँ एक कुत्ता भी नहीं था।

000

ज्ञानदेव मुकेश
301, साई हॉरमनी अपार्टमेन्ट,
अल्पना मार्केट के पास, न्यू
पाटलिपुत्र कॉलोनी, पटना-800013
मोबाइल- 9470200491
ईमेल-
gyandevam@rediffmail.com

मारियूपोल की ज़ुबानी

मंजुश्री

आज मेरा मन बहुत भारी है, मेरा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है। जिधर देखता हूँ उधर उदास मौत का सन्नाटा कलेजा चाक किए देता है। ये वीरान लाशों से पटी सड़कें, ये खंडहर हो चुकी ख़ूबसूरत इमारतें, इधर बायीं ओर चौथी मंज़िल की इस काली पड़ी टूटी खिड़की के पीछे से झाँकती छोटी ईवा उसका भाई विक्टर और पार्क में टहलती बूढ़ी स्वेतलाना, एलिना पता नहीं ज़िंदा हैं भी या नहीं, सड़क पर दौड़ती कारें, अब तो सड़कों पर लाल-हरी बत्ती भी नहीं जलती किससे पूछूं, कोई भी तो नहीं दिखाई देता। वह ख़ूबसूरत सुलतान सुलेमान मस्जिद, वह रंग-बिरंगे फूलों से महकता ख़ुशनुमा सिटी गार्डन, वह पोर्ट सिटी मॉल। वह म्यूजियम, वह थियेटर सब तो खंडहर में बदल गए हैं। सुबह-सुबह फैक्टरियों, बंदरगाह पर खड़े जहाज़ों की ओर भागते लोगों के जूतों की आवाज़ें, वह चहल-पहल, वे हवा में घुली उनकी साँसें, ख़ुशी और सपने कुछ भी तो नहीं बचा। अब तो रात-दिन मलबे में तब्दील होती इमारतों से डरे-सहमे भागते लोग, बम धमाकों की आवाज़, यदा-कदा एम्ब्यूलेंस के सायरन, मिट्टी के ढेरों में दबे लोगों की हवा में तैरती चीखें दिल में हौल पैदा करती हैं। वह बूढ़ा पाब्लो कितने दिनों से उस टूटी इमारत के ढेर को हाथों से हटा कर अपनी शीरीन को ढूँढ़ रहा है। हालात बद से बदतर होते जा रहे हैं। ये सब जो मैंने खोया है उसकी क्या कभी भरपाई हो पाएगी ? कुछ भी तो नहीं बचा.. कुछ भी नहीं।

ये नए बनते रिहायशी इलाक़े, सड़कें, पार्क, स्कूल और न जाने क्या-क्या...ये उन हमलावरों की दरियादिली की निशानियाँ हैं क्या..... नहीं दरियादिली की नहीं, उनके घायल अहम् को सहलाती बेजान इमारतें हैं। सड़क के किनारे पड़ी लाशों को गाड़ियों में लकड़ी के लट्ठों-सा एक के ऊपर फेंकते उन लोगों को क्या बिल्कुल कुछ महसूस नहीं होता। यहाँ कभी भी पहले सी रौनक नहीं होगी। लाशों के ढेर पर खड़ी इन इमारतों में ज़बरदस्ती लोगों को बसा कर क्या कभी इस हँसते-खेलते शहर के इतिहास को भुलाया जा सकेगा!! उन्हें भी तो इस मिट्टी में दबी लोगों की आहें परेशान करेंगीं। इनकी दीवारों में इनके भीतर रहने वालों की धड़कनें बंद हैं पता नहीं लोगों ने किस दीवार का सहारा लेकर अपने आप को बम धमाके से बचाने की नाकाम कोशिश की होगी। मैंने देखा है, डर से चीखती छोटी मारियाना को छाती से चिपटाये भागते ईगोर को, पीछे रह गई अपनी बूढ़ी माँ यूलिया को हाथ के इशारे से अपने पीछे आने को कहते हुए। कारियाना विशेमिरस्कापा की शादी को तो अभी दो दिन ही हुए थे। वह देखो उसका पति ऑलक्जान्दर पागल-सा उसे खोज रहा है। किस-किस का नाम लूँ। अन्ना, नादिया, मार्को, दनिलो, अनस्तीसिया, याना, सोफिया, टैटियाना, ईवान, पाव्लो और पता नहीं कौन-कौन मेरे देखते-देखते लाशों में बदल गए और जो ज़िंदा बच गए हैं वे भी जान हथेली पर लिये सेना में भर्ती होकर दूसरों को मार रहे हैं। औरतों की देह युद्ध का मैदान बन गई है। यह देख कर भी मेरे आँसू नहीं निकलते मैं चीखता नहीं। मेरी आँखों का पानी सूख गया है, मेरे गले से आवाज़ नहीं निकलती, मेरी छाती फट क्यों नहीं जाती..!!

पता नहीं क्यों मैं चाह रहा हूँ कि मैं अपने मन की बात, अपना दुख आप से साझा करूँ हालाँकि ये बिल्कुल ज़रूरी नहीं है, न ही कोई बंधन कि आप अपना सब काम छोड़कर मेरी बात सुनने लगें, फिर भी मेरी गुज़ारिश है कि मेरे लिए, सिर्फ मेरे लिए आप अपना कुछ समय निकालें शायद मेरा मन हल्का हो जाए, मैं जानता हूँ कि ऐसा कुछ अनोखा नहीं है जो सिर्फ मेरे साथ ही यहाँ हुआ हो और किसी के साथ कहीं नहीं हुआ। आज तो दुनिया का कोई कोना ऐसा नहीं दिखाई देता जहाँ लोग आतंकी हमलों, आपसी लड़ाइयों, या भुखमरी से न मर रहे हों। मैं तो

मंजुश्री
ए-10 बसेरा दिन क्वारी रोड, देवनार,
मुंबई-400088, महाराष्ट्र
मोबाइल- 9819162949
ईमेल- saksenamanju@gmail.com

आप से अपना दुख बाँटने की कोशिश कर रहा हूँ क्योंकि जीने नहीं देगा मुझे छाती पर रखा यह भारी बोझ। मेरे जैसे ही दूसरे शहर कीव, खॉरकीव, खैरसॉन, बखमुत, ओडेसा, लुहानस्क भी इस दर्द से गुज़र रहे हैं। डैम के टूटने से पूरा खैरसॉन शहर डूब गया क्या दोष था उन बेगुनाह लोगों का। आज पूरी दुनिया में जो उठापटक चल रही है उसमें कुछ नया नहीं है यह सब हमेशा चलता आया है। दुनिया को ख़त्म करने पर उतारू है इंसान। जिस डाल पर बैठा है उसी को काट रहा है। हथियारों के परीक्षण ने जल, थल, आकाश में भयंकर प्रदूषण फैला कर समस्त सृष्टि के विनाश की तैयारी पहले ही कर डाली है। अपनी बेबसी पर मैं इतनी ज़ोर से चीखना चाहता हूँ, कि चारों दिशाएँ गूँजने लगें और लोग चौंक कर ग़फ़लत भरी नींद से जाग जाएँ।

यह जो मेरे साथ यहाँ हो रहा है इसके बादल हवा का रुख़ देखकर कहीं भी बरस सकते हैं। यह सब हर काल में होता रहा है और होता रहेगा बस उसके तरीकों और परिणामों में थोड़ा बहुत अंतर आ जाता है। दुनिया का इतिहास देखें तो यह बात बिल्कुल साफ दिखाई देती है कि आदि काल से न जाने कितनी सभ्यताएँ अपने चरम पर पहुँची कितने छोटे-बड़े ख़ूबसूरत राज्य बने और नष्ट हुए। मनुष्य की रक्त पिपासु प्रवृति के कारण अपनी विरासत अपने साथ लिए करोड़ों हँसती-गाती ज़िंदगियाँ या तो काल के मुख में समा गईं या अपनी जड़ों से उखड़कर विस्थापन की त्रासदी भोगती दूसरे देशों में दोयम दर्जे की ज़िंदगी जीने के लिए मजबूर हो गईं। ये सभ्यताएँ या शहर सिर्फ इसलिए ख़ूबसूरत नहीं थे कि इनकी पथरीली इमारतें मेहराबदार और मज़बूत थीं या उनमें बारीक नक़्क़ाशीदार झरोखे वाले किले बने थे या ख़ूबसूरत बगीचे, नदी, पहाड़ और जंगल थे या शक्तिशाली शासक के पास अकूत खज़ाना और शक्तिशाली सेना थी बल्कि इसलिए ये ख़ूबसूरत थे कि इनकी मिट्टी में लोगों की साँसें धड़कती थी, खून-पसीना बहा कर सुनहरे भविष्य के सपने बुने जाते थे। मासूम बच्चों की किलकारियाँ गूँजती थीं, ज़िंदा और ख़ुशहाल थे ये शहर। अब ख़ुशहाली नहीं दिखती।

लोग बस किसी तरह जीने की जद्दोजहद में लगे हुए है। अब तो ये भी भरोसा नहीं है कि कब कौन से देश पर, किस शहर पर क़यामत बर्पा होने लगे। जिधर नज़र उठाओ हाहाकार मचा है। शहर का हर जवान मर्द मरने-मारने को तैयार है तो बूढ़े, बच्चे और औरतें यतीमों की ज़िंदगी जीने को मजबूर हैं। दुनिया का हर छोटा-बड़ा देश बड़ी ताक़तों के चंगुल में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से फ़ँसा है। ग़ौर करने की बात यह है कि अपनी शक्ति प्रदर्शन के लिए बड़े देश छोटे देशों की सुरक्षा देने के बहाने अपने देश में बने हथियार उन्हें देकर युद्ध का अखाड़ा इन छोटे देशों को बनाते हैं जहाँ की जनता मरती और मारती है वे दूर खड़े तमाशा देखते हैं और नए-पुराने हथियारों का सफल परीक्षण उस बेबस छोटे देश की जनता पर होता है। हुक्मरानों को ये समझ क्यों नहीं आता कि क्या बिना किसी स्वार्थ के कोई देश अपना समय और धन यूँ ही कहीं भी बर्बाद कर देगा। अपने देशों में बने हथियारों का बाज़ार ढूँढ़ते इन देशों के हाथ और पैसा खून से रंगे हैं पर इन्हें क्या इनके मुँह में खून लग गया है। चारों तरफ नज़र घुमा कर देखो तो आज कोई भी ऐसा देश नहीं दिखता जहाँ बड़ी ताक़तों का दखल न हो।

यह कहानी उस समय की नहीं है जिस समय काला सागर के पास अजोव के समुद्र में गिरने वाली कैलिमस नदी के उथले मुहाने का बंदरगाह मुझ छोटे से शहर मारियूपोल में व्यापार के लिए छोटे जहाज़ आते-जाते थे, तब तक दूसरे बहुत से देशों के लोग तो इस शहर के बारे में या यहाँ रहने वालों के बारे में ज़्यादा जानते भी नहीं थे। यह कहानी उस समय की भी नहीं है जब मैं बदल रहा था और 1917 में रूस की औद्योगिक क्रांति के बाद बढ़ते व्यापार के कारण बड़े-बड़े जहाज़ उथले मुहाने की बजाय समुद्र के गहरे पानी में खड़े होने लगे और कल- कारखाने, फैक्टरियाँ, लोहे, स्टील, कोयले, भारी मशीनरी, अनाज का उत्पादन यहाँ बड़े पैमाने पर होने लगा। थोक व्यापार के लिए बड़े-बड़े गोदाम, रेलवे, सड़कें, यातायात के साधन, रिहायशी इमारतें, बनने लगीं और दुनिया के नक्शे में छोटा सा दिखने वाला मैं मारियूपोल शहर मुख्य बंदरगाह बन गया। तो भी व्यापारियों के अलावा दूर देश की सामान्य जनता मेरे बारे में नहीं जानती थी, जानने की ज़रूरत भी नहीं है सब अपने–अपने काम में इतने व्यस्त रहते हैं कि दुनिया के किसी कोने में क्या घट रहा है कहाँ मालूम पड़ता है जब तक वह कोई बहुत बड़ी ख़बर न हो या उसका प्रत्यक्ष प्रभाव अपने ऊपर न पड़ रहा हो।

कुछ सालों बाद 1922 में रशिया, बेलारूस, यूक्रेन, ट्रांसकॉकेसिया मिलकर यू. एस. एस. आर. एक कम्युनिस्ट देश बना जो इतना बड़ा था कि ग्यारह टाइम जोन थे और लगभग 130 ऐथनिक समूह (मूल प्रजातियाँ) के लोगों को मिला कर बहुत बड़ा शक्तिशाली देश बन गया। जिसकी केंद्रीय कम्युनिस्ट सत्ता थी। यह बंदरगाह उस बड़े देश सोवियत संघ का हिस्सा था। पता नहीं क्यों इस शहर में क्या कहीं भी तेज़ी से विकास की धुन में उत्पादन के बड़े-बड़े लक्ष्यों को पूरा करने के लिए रात-दिन पिसते मज़दूरों की चिंता सरकार को नहीं होती, जबकि जनता के लिए ही विकास किया जाता है बस दुनिया में अपनी शक्ति का दबदबा कायम करना होता है। शक्ति और सत्ता के नशे में वे भूल जाते हैं कि देश केवल भौगोलिक सीमाएँ ही नहीं होती वहाँ रहने वाले लोग होते हैं। सत्ता का नशा बाक़ी किसी भी प्रकार के नशे से बहुत गहरा और ख़तरनाक होता है सत्ता से शक्ति और फिर दमन का चक्र चल पड़ता है। मैं सोचता हूँ कि क्या नित नए मारक हथियारों की ईजाद ही आदमी की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

यह कहानी तब की भी नहीं है जब दुनिया में दो बड़ी ताक़तें एक दूसरे की आँख की किरकिरी बन रही थीं और वैश्विक साज़िशों तथा हथकंडों के चलते दुनिया दो गुटों में बँट गई। यूक्रेन के इस शहर और आस-पास के इलाके में चर्च, स्कूल, मकान, अस्पताल, बन रहे थे बंदरगाह से अनाज और कोयले, स्टील, भारी मशीनरी का निर्यात हो रहा था, जहाज़ मरम्मत का काम, फिश कैनिंग, का

काम ज़रूर बढ़ा पर बढ़ती औद्योगिक गतिविधियों के चक्कर में बहुत से बाहरी लोग आकर बसने लगे और बहुत महत्त्वपूर्ण शहर बन गया। इतने बड़े देश को एकजुट रखने के लिए कम्युनिस्ट सरकार द्वारा कठोर नीतियाँ, नियम क़ानून बनाए गए। लेनिन के बाद स्टालिन के लंबे कठोर दमनकारी कम्युनिस्ट शासन में लोगों की आज़ादी बिल्कुल ख़त्म हो गई। आवाज़ उठाने पर करोड़ों लोगों को कठोर कारावास की सज़ा हुई और लाखों लोगों को साइबेरिया की भयंकर प्रतिकूल जलवायु में लेबर कैम्पों में हाड़तोड़ मेहनत करते जान से हाथ धोना पड़ा। ऐसे भविष्य की तो कल्पना किसी ने नहीं की थी और जनता में आक्रोश पनपने लगा।

यूक्रेन में पड़े 1932-33 के अकाल में सरकारी ज़ुल्म की वजह से अनगिनत लोग काल के मुँह में समा गए जबकि यूक्रेन सबसे बड़ा अनाज उत्पादक क्षेत्र था पर सारा अनाज सरकार ले लेती थी चाहे जनता एक-एक मुट्ठी दाने के लिए तरसती भूखों मरती रहे। लाखों लोग भूख से मर गए। यदि कोई खाता-पीता या थोड़ा स्वस्थ नज़र आ जाता तो उसे अनाज चोरी के जुर्म में मार दिया जाता। इसलिए यह भी कहा जाता है कि सोच-समझ कर उन्हें भूख से मरने दिया गया और यहाँ रूसी नागरिक बसाए गए। इससे जनता में भयंकर रोष भरने लगा। स्टालिन के कुछ समय बाद निकिता ख्रुश्चेव ने जनता के रोष को पहचान कर इन कठिन नियम-क़ायदों में थोड़े सुधार लाने की कोशिश की उसके बावजूद लोगों का सरकार विरोधी स्वर कम नहीं हो रहा था। जनता बहुत तंग आ चुकी थी, जिसे दबाने की कोशिश भी भरसक जारी रही। ख्रुश्चेव के बाद 1979 में लियोनिड ब्रेजनेव ने विद्रोह को बढ़ता देखकर सारे सुधार वापस ले लिए और एक बार फिर कठोरता से विद्रोह को दबाने की कोशिश शुरू कर दी गई परन्तु दुनिया बदल रही थी, आस-पास के दूसरे देशों में उठते विद्रोह का असर यहाँ भी दिखने लगा और लोग मुखरता से आज़ादी के लिए आवाज़ें उठाने लगे ख़ासतौर से यूक्रेन और जार्जिया में।

यह कहानी तब की भी नहीं है जब सोवियत संघ नई कहानी लिख रहा था। ब्रेजनेव ने अफ़गानिस्तान में सोवियत संघ की ओर झुकाव वाली सरकार को सपोर्ट करने के लिए 1979 में अफ़गानिस्तान पर धावा बोल दिया जिसका मकसद अपने कम्युनिस्ट राज को बढ़ाना था, परन्तु ये लड़ाई अफ़गानिस्तान की मुश्किल भौगोलिक परिस्थितियों तथा विभिन्न लड़ाकू क़बीलों के विरोध के कारण पहाड़ी ग्रामीण क्षेत्रों से बाहर शहरों तक नहीं जा पाई। ये अलग-अलग क़बीलों के लड़ाकू लोग मुजाहिद्दीन कहे जाते थे। अमेरिका पूरी दुनिया में अपना वर्चस्व बढ़ाने के लिए इन मुजाहिद्दीनों को आर्थिक तथा सैन्य हथियारों से सहायता देकर अस्थिरता पैदा कर रहा था। जिसके कारण बहुत से आतंकी संगठन मुँह उठाने लगे। लगभग दस साल तक चली इस लड़ाई में लगभग एक करोड़ अफ़गानी सामान्य नागरिक, हज़ारों अफ़गानी और रूसी सैनिक और मुजाहिद्दीन मारे गए। प्रतिकूल कठोर परिस्थितियों में लड़ते रूसी सैनिकों का हौसला पस्त होने लगा इसके अलावा रूस को भारी आर्थिक नुकसान भी उठाना पड़ा जिसके कारण ब्रेजनेव के बाद मिखाइल गोर्वाचेव ने पार्टी की रज़ामंदी के बाद रूसी सेना को अफ़गानिस्तान से वापस बुला लिया।

इसके बाद अफ़गानिस्तान में सत्ता के अलग-अलग दावेदारों के कारण गृह युद्ध शुरू हो गया। 1989 में बर्लिन की दीवार गिरी और जर्मनी एक हो गया। पूर्वी यूरोप से कम्युनिस्ट शासन कमज़ोर होते ही दूसरे प्रदेशों में आज़ादी के लिए नारे लगने शुरू हो गए हालाँकि इसकी पटकथा काफी पहले लिखी जा चुकी थी। इधर सोवियत संघ में भी सेना की असफलता ने लोगों के असंतोष में आग में घी का काम किया इसके साथ ही दूसरे देशों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं और साज़िशों के कारण 1991 में सोवियत संघ जैसे बड़े देश के टुकड़े हो गए और पंद्रह छोटे–छोटे स्वतंत्र देश बन गए पर अब सबके सामने अपनी-अपनी हिफ़ाज़त के लिए सेनाएँ रखनी ज़रूरी हो गया। छोटे-छोटे देश अपने अस्तित्व की लड़ाई-लड़ते अपनी सुरक्षा के लिए अलग- अलग दिशाओं में अपने रहनुमाओं की ओर ताकने लगे। यह भी क्या विडंबना है कि जिस देश से छिटके ये देश अपनी साझी संस्कृति और विरासत वाले देश पर भरोसा न करके उन पर विश्वास कर रहे थे जो अपने निहित स्वार्थों के कारण दूसरे के कंधे पर बंदूक रख कर खूनी खेल खेल रहे थे।

यह कहानी तब की भी नहीं है जब षड्यंत्रकारी ताक़तों ने सुरक्षा के नाम पर इन छोटे देशों को नाटो का सब्ज़बाग दिखाकर इस महाद्वीप में अपने पाँव पसारने शुरू कर दिए और रशिया भी अपने घाव भूला नहीं था फिर भी सब ठीक चल रहा था या यूँ कहिए कि ठीक चलता हुआ दिख रहा था। दूर से सब ठीक ही दिखाई देता है सब कुछ अपने ढर्रे पर चलता हुआ। यह कहानी तब की भी नहीं है जब दूर किन्हीं देशों में माँएँ अपने बच्चों को स्ट्रोलर में लिए घूमती दिखाई देती थी और दुनिया भर के गुल्लू, ममता, हमीदा, अनवर, बंसी, रशीद, शाशा, मारिया, ईगोर, विक्टर, ली, चैंग, ज्योंग, एलैक्जैन्दरा, मिखाइल जैसे भोले-भाले बच्चों की किलकारियों से घर गूँजते रहते थे सब अपने काम-काज में व्यस्त और निश्चिंत दिखाई देते थे, सामान्य सा सब कुछ। हालाँकि दूर कहीं कुछ अनचाही आहटें सुनाई देती रहती थी ऐसा तो हो नहीं सकता कि दुनिया में सब जगह सब ठीक-ठाक हो, यह आदमी की फितरत में नहीं है कि वह शांति से रहे।

दुनिया के किसी न किसी कोने में आतंकी हमलों, बम धमाकों, दुर्घटनाओं, हत्याओं की ख़बरें आती रहती हैं जिन्हें हम अख़बारों में पढ़कर और खाना खाते समय टी. वी. पर देखकर थोड़ी हमदर्दी दिखा कर भूल जाते हैं। लेकिन जब वे ख़बरें केवल ख़बर न रह कर सच्चाई बन कर अपने निकट दस्तक देने लगती हैं तब वे ख़तरा बन जाती हैं। दरअसल यूक्रेन और रशिया के बीच संघर्ष की नींव 2014 में ही रख दी गई थी जब रशिया ने क्रीमिया पर कब्ज़ा कर लिया था क्रीमिया तीन तरफ से काला सागर से घिरा हुआ प्रायद्वीय है जो पश्चिमी देशों से व्यापार के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है तब से ही दोनों देशों के बीच

तनाव बढ़ गया और यूक्रेन के नाटो में शामिल होने के ऐलान ने रशिया को यूक्रेन पर हमला करने का बहाना दे दिया। दोनों के अपने-अपने पक्ष। मालूम नहीं कौन ग़लत कौन सही। जो भी हो नेताओं की हठधर्मी और आकांक्षाओं की बलि जनता ही तो चढ़ती है, उसकी चिंता किसे है।

पूर्वाग्रहों से ग्रस्त अपनी आकाक्षाओं की पूर्ति करने वाले चंद नेता देश की जनता के वर्तमान और भविष्य को बनाने बिगाड़ने का निर्णय लेते हैं। एक तरफ दो वक़्त की रोटी के लिए इंसान परेशान है तो दूसरी तरफ भुखमरी और कंगाली से जूझते देश भी हथियारों की ख़रीद-फ़रोख़्त में लगे हैं। मरने और मारने के नित नए उपाय ढूँढ़े जा रहे हैं। नए-नए आधुनिक मारक हथियार बन रहे हैं। मुँह को ढके, कमर पर कारतूसों की पट्टियाँ बाँधे, हाथों में बंदूकें लहराते लोगों के कलेजे पत्थर के और दिमाग़ कुंद हो गए हैं। आँखों पर पट्टी बाँधे, बाहरी ताक़तों के सहयोग से अलग-अलग देशों के अलग-अलग धड़े आपस में कटे-मरे जा रहे हैं। समझ नहीं आता कि लोग अपने-अपने हिस्से के आसमान से ख़ुश क्यों नहीं रह पाते। ऐसा सदियों से होता आया है और आगे भी होता रहेगा बस अब तीर तलवारों की जगह परमाणु हथियार बनाए जा रहे हैं।

यह कहानी तब की है जब रूस ने यूक्रेन पर धावा बोल दिया था। यूक्रेन के नाटो का सदस्य बनने की घोषणा करते ही यूरोपियन देशों के साथ अमेरिका के भी रूस की सीमा के निकट आने की संभावना युद्ध का एक कारण रहा। अपने देश के हथियारों के लिए बाज़ार और ज़मीन ढूँढ़ती बड़ी ताक़तों की शह पर तलवारें खिंच गईं और खूनी जंग की शुरूआत हो गई। जो भी हो कीव पर हमला होते ही दोनों तरफ से गोले बरसने लगे और पूरे देश में खलबली और अफरा-तफरी मच गई। जो बाहर जा सकते थे चले गए और बहुत से लोग दूसरे शहरों में विस्थापित हुए, मैं मारियूपोल यूक्रेन का दसवाँ बड़ा औद्योगिक शहर कैलिमस नदी के मुहाने पर अजोव सागर का मुख्य बंदरगाह रूस के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हूँ; क्योंकि मुझसे कुछ दूर दक्षिण में ही क्रीमिया है जिसे नौ साल पहले रूस ने हथिया लिया था। काला सागर से व्यापार के लिए क्रीमिया और डौनबास को यहीं से जोड़ा जा सकता है, वैसे तो पूरे देश पर युद्ध के बादल मँडराने शुरू हो गए और एक साल से ऊपर हो गया अब भी युद्ध जारी है कितने शहर बर्बाद हो गए। जीत का दावा कोई भी करे बर्बादी का ज़िम्मा कोई नहीं लेता।

फरवरी 2022 में जब रूसी सेना मुझ मारियूपोल से लगभग 25 किलोमीटर उत्तर-पूर्व नदी के बाएँ ओर स्थित छोटे से गाँव पॉवलोपिल तक पहुँच गई तब यूक्रेन की सेना ने जम कर मुकाबला किया और रूस को काफी नुकसान पहुँचाया। रशियन नेवी काला सागर में खड़े अपने जहाज़ों से लगातार मेरे समुद्री तट पर गोले दागती रही। पाँच लाख की आबादी वाला ये शहर रात-दिन की बमबारी से पूरी तरह तबाह हो गया। फरवरी की कड़कड़ाती ठंड में चार-पाँच दिन पूरे शहर में बिजली, पानी, इंटरनेट बंद हो गया ठंड और भूख-प्यास से कितने लोग मर गए, रूस ने घनी आबादी वाले इलाकों में भी बमबारी करके नागरिकों को बाहर निकलने नहीं दिया। रेडक्रॉस की मदद से मानवीय आधार पर कुछ लोग निकाले गए उस समय भी बमबारी होती रही। उसी दौरान गैस पाइप लाइन के क्षतिग्रस्त हो जाने से भयंकर ठंड में लोगों के मरने की नौबत आ गई थी। बहुत से लोग दूसरे शहरों में शरण लेने पर मजबूर हुए। यहाँ तक कि सिटी थियेटर पर भी रूसी सेना ने हमला किया जहाँ पर ज़्यादा महिलाओं और बच्चों ने शरण ली हुई थी। हज़ारों औरतें और बच्चे मारे गए सैंकड़ों घायल हुए। देखते-देखते पूरा शहर श्मशान में बदल गया। कितने बच्चे अनाथ हो गए उनके भविष्य के बारे में सोचकर मेरा कलेजा फटा जाता है। चंद दिनों में उनकी दुनिया बदल गई। आप कल्पना कीजिए कि इन हृदयविदारक दृश्यों को देखकर मेरी क्या हालत हुई होगी।

युद्ध का तो यही परिणाम होना है पर टैंक तो मेरी छाती पर दौड़ रहे थे। दो देशों की बदले की भावना और ज़िद्द के कारण पूरे देश में क्रोध की लहर दौड़ गई बस एक दूसरे को हराने और ख़त्म करने की होड़ लगी है। तीन महीने तक अजोवेस्टल स्टील वर्क्स की सुरंगों और बंकरों में छिपे मेरे वीर जवान समर्पण से पहले बहुत कम हथियारों से रूस की सेना का सामना करते रहे। जिसके कारण मुझे (Hero City Of Ukraine) का खिताब मिला पर मैं उस खिताब का क्या करूँ पता नहीं मेरे वे सैनिक रूस की कहाँ किस जेल में किस हाल में होंगे। दूर के देशों के लिए एक ख़बर हो सकती है पर आज कोई भी देश युद्ध के दुष्परिणामों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। चाहे दुनिया के किसी भी कोने में क्यों न हो इसीलिए मैं आपसे गुज़ारिश कर रहा हुँ कि मेरे दुख को समझें। आज भी कई बीमार बूढ़े लोग घर छोड़ कर नहीं गए है इन्हीं जर्जर इमारतों में रह कर लड़ाई थमते ही अपनों के लौट आने की बाट जोहते आँसू बहा रहे हैं।

आश्चर्य की बात तो ये है कि अब दोबारा इस शहर को वही लोग बसा रहे हैं जिन्होंने इसे उजाड़ा है। नई इमारतें, स्कूल, दुकानें, सड़कें, पार्क आदि। वे सबको रशियन पहचान-पत्र और पासपोर्ट दे रहे हैं, उसके बिना रहना कठिन है। स्कूलों में ज़बरदस्ती रशियन भाषा पढ़ाई जा रही है। सब कुछ थोपा हुआ। वे मेरा पूरा इतिहास बदल देना चाहते हैं। पता नहीं आगे क्या होगा लेकिन अभी तो मेरे भीतर बहुत आक्रोश है। मैं सब कुछ बदल देना चाहता हूँ पहले सा। जानता हूँ कि पहले-सा कुछ नहीं हो पाएगा। ये घाव बहुत समय तक रिसते रहेंगे, लेकिन कामना तो कर ही सकता हूँ। ये सोचने वाला मैं मात्र एक शहर नहीं हूँ हर शहर की यही इच्छा है। मेरी पहचान मेरी सीमा में रहने वाले लोगों से थी जब वे ही नहीं रहे हैं तो मेरी क्या पहचान। यह भी सही है कि किसी के लिए कुछ रुकता नहीं दुनिया अपनी रफ़्तार से चलती रहेगी मुझ पर क्या बीत रही है या आगे क्या होगा ये कुछ दिनों तक केवल अख़बार की सुर्ख़ियाँ बनती रहेंगी और फिर कहीं और यही सब हो रहा होगा और हम चाय पर चर्चा...

000

चाबी

स्वाति तिवारी

मुंबई आते ही पहला काम किया था सहज सुविधायुक्त एक फ़्लैट खरीदने का, तो तब जो मुझे पसंद आया था वह ख़रीद लिया था, ख़रीदने से मेरा अर्थ है बुकिंग कर दी थी, जानते थे हम यह मुंबई है, यहाँ एकमुश्त घर सपने में भी नहीं ख़रीदा जा सकता था, इसलिए ट्रांस्फ़र होते ही यह निश्चय कर लिया था कि एक घर अभी से ले लेना है, यह सोच कर। रहना हुआ तो ठीक, नहीं तो बेचने पर भी मुनाफ़ा ही देता है यह मुंबई। रिटायर होने तक के लिए सरकारी घर मिल ही गया था। पति और मैं एक ही विभाग में थे, पहले घर इन्हें अलाट हुआ जो इनके रिटायर होने के बाद मुझे अलॉट हो गया था। सरकारी नौकरी का और एक ही विभाग का यही तो फ़ायदा था। इसी सुविधा ने मुंबई में घर लेने का एक साहस और आर्थिक सहारा भी दिया। आसानी से किस्त जमा होती रही। और एक दिन रिटायरमेंट का भी आ ही गया। पहले ये और कुछ दिनों के बाद मैं भी रिटायरमेंट के आख़िरी पायदान पर पहुँच ही गई, लगा कितनी जल्दी समय और उम्र हाथ से फिसल गए। अब सब कुछ बदलना था घर, जगह, आस-पड़ोस, सेवक साथी से लेकर बँधे बँधाए दुकानदार, ऑटो टैक्सी वाले, सब्ज़ी-भाजी वाले, सभी कुछ। शुरुआत अपनी सरकारी मानसकिता बदलने से करनी थी। जो मुश्किल था तो सबसे पहले रिटायर होने के बाद हमने घर शिफ़्ट किया था। जिसमें रहते हुए अभी एक साल भी नहीं हुआ है।

यह सुपर प्रोज़ेक्ट ईस्टर्न एक्सप्रेस हाईवे के क़रीब है, स्थानीय रेलवे स्टेशन भी पास में है जिससे आवागमन भी आसानी से सुलभ है। इस संपत्ति का सबसे बड़ा आकर्षण अरब सागर का मनमोहक दृश्य है। यहाँ बहुत ज़्यादा फ़्लैट तो नहीं है, पर एक सुविधायुक्त सोसाइटी में जितने होना चाहिए उतने ही हैं। पाँचवी मंज़िल का मेरा फ़्लैट समुंदर के एकदम सामने पड़ता है, और इसकी ख़ास बात यह है की मेरा किचन जिस तरफ़ है उसकी खिड़की के सामने से सोसाइटी का मुख्य दरवाज़ा साफ़ दिखाई देता है। और बायीं तरफ की खिड़की से लिफ्ट भी दिखती है। मुझे यह फ्लैट सभी तरह से उपयुक्त लगा था। लेते हुए मैंने सोचा था सोसायटी के मुख्य दरवाज़े का दिखना एक सकारात्मक गतिशील ऊर्जा है, लोग आते हुए और अपने काम पर जाते हुए दिखते रहेंगे, जीवन गतिमान बना रहेगा। आते-जाते लोग जीवन को चलायमान रखने का एक तरह से सक्रियता का सन्देश देते हैं ऐसा मेरा मानना था। लिफ्ट देख कर लगा किसी का इंतज़ार करते हुए कुछ लम्हों पहले ही इंतज़ार समाप्त हो जाएगा। कुछ पल मुझे आने वाले के सामने आने के लिए तैयार रहने की मोहलत दे जाएँगे। सोसायटी में कब कौन आता-जाता है यह भी पता चलता रहेगा और समुद्र का अथाह जल देखना किसे बुरा लगता है ? ज़िंदगी भी तो लहरों सी मचलती है। और दुनिया भी तो समुद्र के जल सी गहरी है जिसके हाथ जितना जल लगे बस उसी तरह

स्वाति तिवारी
विला -46, फेस-2, श्री गोल्डन सिटी,
जाटखेडी, भोपाल -462047
मोबाइल- 7974534394
ईमेल- stswatitiwari@gmail.com

ज़िंदगी भी उतनी ही उसके साथ होती है। समुद्र की लहरों-सा ज़िंदगी का सफ़र, कभी निर्मल स्थिर, तो कभी बहता निरंतर। घर में जब दो ही प्राणी बचे रहते हैं ना, तब मन बहलाने के लिए घर में यह सब सामान शिफ़्ट करने का दायित्व पूरा करने आने वाले बच्चे समझा जाते हैं, क्या पता हमें समझाते हुए वे स्वयं ही इन बातों से अपने अन्दर का कोई अपराध बोध कम कर रहे होते है और स्वयं ही अपने अन्दर की कुंठा से बचाव के मार्ग खोज रहे होते है? जो भी हो उनकी अपनी मजबूरियाँ भी होती है पर उनका समझाना उस वक़्त उन्हें और हम जैसे उम्र दराज लोगों को भावनात्मक रूप से जोड़ता है "देखो माँ यहाँ से समुद्र कितना साफ़ दिखाई देता है, है न!"

"हाँ, वह तो है।"

"आपको पानी देखना बहुत पसंद है न, बालकनी मैं बैठ कर जब पापा अख़बार पढ़ेंगे, तब आप चाय के साथ अपनी पसंद का नॉवेल पढ़ सकती है।"

"नहीं रे, लेकिन अब..."।

बेटे ने हाथ पकड़ लिया "अब क्या ?"

"अब मुझे तेज़ आवाज़ों से डर लगने लगा है, और अब कहाँ रोज़ कोई नॉवेल पढ़ने की ताक़त है आँखें भी तो थक रही है न।"

बेटे ने मनोभाव पकड़ लिए थे, लेकिन हार नहीं माननी थी तो बोला "चाय का प्याला और पकोड़े और समुद्र की लहरें, रेत पर लोगों के पैरों के निशान देखना और रेहड़ीवाले, बच्चे, यंग कपल, मछुआरे कितनी आवाज़ें सुनाई देंगी आपको ?आप तो आवाज़ों से भी कहानियाँ बना लेती हैं ?सोचो ज़रा, आवाज़ें कितने किरदार दे सकती है। खेलते बच्चे चमकती धूप और सोने जैसे बालू के कण।"

मैं मुस्करा दी थी, तो उसने झट से कहा "किसी और के नहीं आपकी कहानी के हिस्से हैं ये सब।"

"तो तुमने मेरी कहानियाँ पढ़ ही लीं ?"

"आपकी बहू है न, वह पढ़ कर सुनाती है मुझे।"

"झूठे... पढ़ी हैं यह नहीं कहेगा?"

वह हँसने लगा, "जब याद आती है, तब एक कहानी पढ़ता हूँ।"

"सच्ची?"

उसने गले में बाहें डाल दी, "माँ बताओ न अपनी राय ? पापा को तो यह पसंद आ गया है मम्मी।"

"आप भी हाँ कर दो तो मैं बात फाइनल करूँ। बचा हुआ पैसा एक साथ देकर रजिस्ट्री करवा देता हूँ, ज़रूरी सभी फॉरमैलिटी भी कर दूँगा, और आपका टेलीफ़ोन, इंटरनेट, टीवी गैस सब भी तो करवाना होगा, पापा अकेले कहाँ यह सब करेंगे ? मैं ऑनलाइन जितना कर सकता हूँ कर दूँ। मुझे आपको शिफ़्ट करवाकर वापस भी जाना है, आपको तो पता है रेवती प्रेग्नेंट है उसे छोड़ कर सिर्फ इसलिए आया हूँ मम्मी। आप और पापा को यूँ अकेले छोड़ कर हम लोगों का उस देश में बसना मुझे भी अन्दर से परेशान करता है। पर अब बच्चे का जन्म वहाँ होगा, तो उसे नागरिकता मिल जाएगी बस फिर सब ठीक रहा तो हम बैंगलोर आ जाएँगे।"

"लिया तो यही सोचकर था एक दिन यहाँ रहने के लिए घर तो लगेगा, पर उस जगह से दूर बहुत है।"

"आपने कितनी व्यवस्थित प्लानिंग की नौकरी के साथ हमें भी सेट किया, शादी ब्याह सब, कितना अच्छा रहा पापा ने आठ साल पहले ही घर की बुकिंग भी कर दी थी नहीं तो आज ये हमारे बजट में नहीं आता।"

"ठीक ही है शिफ़्ट तो करना है, फिर नए सिरे से कहाँ लेंगे। सरकारी क्वार्टर तो तीन महीने में ही छोड़ना होगा। धीरे-धीरे हम बचा सामान भी शिफ़्ट कर लेंगे तुम बड़ा सामान सब शिफ़्ट कर दो।"

इस तरह इस फ़्लैट में आने के बाद एडजेस्ट होते तब तक शहर तो ठीक दुनिया की ही स्थिति बदल गई। सात-आठ महीने हुए थे हमें शिफ़्ट किये हुए। 15 साल उस वाढाला वाले सरकारी फ़्लैट में रहते हुए जैसे मोह-सा हो गया था, फिर सभी एक जैसे विभाग के ही लोग। सहेलियाँ भी बन ही गई थीं, बच्चे भी वहीं बड़े हुए थे उनकी स्मृतियाँ। रोज़-रोज़ घर से ऑफ़िस जाने की मशक्कत में जाने कितने ऑटो वाले, पड़ोसी एक-दूसरे को पहचानने लगे थे। मेरा तो मन ही नहीं था खाली करने का तभी तो आख़िरी सामान लाते-लाते पूरे तीन महीने वहीं निकाल दिए। आते-जाते रहे। यहाँ सामान ज़माने के बहाने आते पर शाम को फिर पहुँच जाते वहीं। दरअसल वहाँ एक सुरक्षा का भाव था और इस अपरिचित माहौल में मन जाने क्यों थोड़ा भयभीत-सा ही था। पर एक दिन उस सरकारी फ़्लैट की चाबी देनी ही थी, दे दी। पति ने समझाया देखो सरकारी व्यवस्थाओं में अपना पैसा समय से ले लो, यह बहुत ज़रूरी है, जब तक इस घर को वेकेंट नहीं करोगी ग्रेज्युटी का बड़ा अमाउंट रुका रहेगा। बात सही लगी और तीन महीने की मोहलत का आवेदन फाड़ फेंक दिया और घर छोड़ दिया।

उम्र के इस पड़ाव पर, नया घर बसाने जैसा यह अनुभव आसान नहीं था। मन मार-मार कर थोड़ा-थोड़ा सामन खोलती और जमाती रही, लेकिन यह तब आसान लगा जब पड़ोस के फ़्लैट का एक दिन दरवाज़ा खुला देखा, देखा कि हमसे भी उम्र दराज दंपत्ति अपना सामान उतरवा कर घर जमा रहे हैं। देख कर उस दिन हँसी आ गई, मुंबई बुढ़ापे में यह सब करवाती है, जवानी में तो कमाने की दौड़ में ही खप जाती है ज़िंदगी। बाहर निकली तो नज़रें मिलते ही एक झेंप उनके चहरे पर भी फ़ैल गई जैसी सरकारी घर से निकलते हुए गेट पर गार्ड को देखकर मेरे मन में फ़ैली थी बेचारगी भरी। मैंने सहज करने के लिहाज से पूछ लिया- "वयनी आप दोनों चाय शक्कर वाली लोगे या फीकी ?"

"अरे, परेशान मत होइए, बस अभी थोड़ा सामान उतर जाए, तो बनाती हूँ न मैं ?"

"नहीं आप आराम से काम करो, मैं चाय -पोहा ले कर आती हूँ।" वह हमारी पहली मुलाक़ात थी उनसे। चाय पोहे लेकर मैं उनके फ़्लैट में चली गई थी, दरअसल महानगरों में इस तरह की औपचारिकता कोई नहीं करता, किसके पास समय है इन सब के लिए। यह महानगर है, पर मुझे अपना समय याद आया जब एक दिन मुझे यह ख़याल आया था की कोई पड़ोसी चाय पिला दे तो कुछ राहत मिले। उस दिन जाने क्यों मुझे लगा था, यही समय

नहीं होने के बहाने हम कितने अच्छे कामों से बचते रहते है और ज़िंदगी की उन छोटी- छोटी ख़ुशियों को देखते ही नहीं जो मन को सुकून देती है। अब करना क्या है यही सब करूँगी, जहाँ लगेगा ज़रूरत है वहाँ खर्च भी कर दूँगी।

उस दिन के बाद धीरे-धीरे आते-जाते हम लोगों में बात होने लगी। वे भी दो ही प्राणी थे घर में और हम भी दो। कभी-कभी कोई बाज़ार जाता तो पूछ लेना, कुछ लाना तो नहीं? बस एक-दूसरे को देख कर एक सकारात्मक ऊर्जा का वितरण होने लगा। घर वीराने नहीं हैं, कभी उनके घर से तेज़ आवाज़ में टीवी चलता तो कभी कोई मराठी भजन ..कभी बर्तनों की खनखनाहट आती तो कभी उबलती कढ़ी की या पातळ भाजी की ख़ुशबू। मैं इडली डोसा बनाती, तो दो प्लेट ज़्यादा बना कर उन्हें बुलाती। और एक दिन वे भी पूरनपोली की प्लेट दे गई थीं। अभी सोसाइटी में ज़्यादातर फ़्लैट खाली ही थे बस इतना ही उनका हमारा संपर्क कहें या दोस्ती हुई थी कि एक दिन टीवी पर समाचार था "22 मार्च को सुबह से ही पूरे देश में जनता कर्फ्यू लगाया जाएगा। प्रधान मंत्री ने शाम 5 बजे लोगों से घर की छत पर, बालकनी में और घर के दरवाज़े पर आकर ताली, थाली, शंख, बजाने की अपील की है.."

पति ने टीवी की आवाज़ कम करते हुए कहा-"हमारे मोदी जी भी न ताली-थाली से वायरस भगाने की कोशिश कर रहे हैं .."

"हो सकता है सामूहिक ध्वनि से वायरस का प्रकोप कम हो जाए।" मेरे तर्क पर पति सदा की तरह व्यंग्य से हँसे "पढ़ी-लिखी अधिकारी रही हो... पर तुम भी थाली बजाओगी ?"

किचन की खिड़की से वयनी ने झाँक कर कहा सामान मँगवा लो यह कर्फ्यू जाने कब तक रहे, उनकी बात ने मेरे अन्दर की रिटायर्ड स्त्री को एक दम जागरूक कामकाजी में बदला। मैंने किरानेवाले को फ़ोन करके ज़रूरत का भी और ज़रूरत पड़ सकने वाला भी सारा सामान लिस्ट बनाकर वट्सएप किया, फल सब्ज़ी लेने इन्हें भेजा। सभी मँगवा ली, वयनी को भी किरानेवाले का नंबर दे दिया। यही सोचकर की पास-पड़ोस में भी सभी को अलर्ट करना चाहिए। उस दिन पति के मज़ाक बनाने के बावजूद वयनी और मैं शाम को छत पर गए, थाली चम्मच और पूजा का शंख लेकर और दोनों ने ही प्रधान मंत्री की बात का मान रखा। लगा जैसे भगा दिया कोरोना वायरस। बस गया कोरोना, जैसे मच्छर हो कछुआ अगरबत्ती से भाग जाएगा। सड़कों पर, समुद्र किनारे फिर भीड़ दिखने लगी। और बेफ़िक्र मुंबई में कोरोना का ग्राफ तेज़ी से बढ़ने लगा। अब समाचार डराने लगे नए साल के अप्रैल आते-आते मुंबई में धारा 144 को एक माह तक बढ़ा दिया गया है। साथ ही समुद्र तट, खुले मैदानों, समुद्र के किनारे वाले क्षेत्र, गार्डन, पार्क और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर लोगों के जाने पर शाम 5 बजे से सुबह 5 बजे तक पाबंदी रहेगी।

सोसाइटी में प्रवेश पर रोक लग गई। अब घर में भी मास्क लगा लिए हम लोगों ने। एक दूसरे के घर जाना बंद कर दिया। समाचार ही एकमात्र बाहर की दुनिया की ख़बरें देता और डरा ज़्यादा रहा था। सोसाइटी में अब हेल्पर्स के आने पर भी प्रतिबंध लग गया था। भयभीत से हम और वे धीरे-धीरे अपने काम निपटाते खिड़की से बात करते या मोबाइल से। ख़बरें जो सिर्फ मनहूसियत फैला रही थी एक दूसरे से शेयर करते "मुंबई में कोरोना के मामले लगातार बढ़ रहे हैं। आज नए मरीज़ों की संख्या 15166 तक पहुँच गई है। इसमें से 1218 लोगों को अस्पतालों में भर्ती कराया गया, जबकि 80 मरीज़ों को ऑक्सीजन की ज़रूरत पड़ती है।"

वे भी समझती "एक समय प्लेग भी फैला था, तब भी लोग बहुत मरे थे। देखो खाना सादा ही बनाया करो। बस काली मिर्च और अदरक ज़रूर इस्तेमाल करना।"

"जी..."

पति ने टीवी का चैनल बदला वहाँ भी बस वही "मुंबई में आज दूसरी लहर के पीक से भी ज़्यादा केस, पन्द्रह हज़ार से अधिक मरीज कोरोना संक्रमित।"

बेटे का फ़ोन "माँ बिलकुल बाहर मत जाना गेट पर ताला लगा दो जो चाहिए मुझे बताना, मैं ऑनलाइन भिजवा सकता हूँ। फ्लाइट बंद कर दी गई है, पापा आ नहीं सकते; इसलिए आप अपना ध्यान ख़ुद ही रखियेगा, लेकिन हम ठीक है आप चिंता मत करिए।"

"लेकिन अब रेवती की डिलीवरी कौन करेगा ? पहली डिलीवरी है उसे कुछ पता भी नहीं होगा।" रोकते-रोकते भी रुलाई ने बाँध तोड़ ही दिया। वीडियो पर रेवती थी, "देखिए मैं ठीक हूँ, यहाँ मैंने दाई से बात करके उस बुक कर लिया है वह डिलेवरी में मेरी मदद करेगी। बच्चे के लिए ऑनलाइन क्लास लेती है, सब बता रही है, समझाती है। सामान सब ले आए है हम, सब ठीक हो जाएगा, आप दोनों आराम से रहिए, बाबा का ख्याल रखिए।" फ़ोन कट गया।

शाम होते-होते इन्हें खाँसी की शुरूआत दिखने लगी। बेटे को बताऊँ न बताऊँ ? पति ने कहा मेरी डॉक्टर से बात हुई है सारा सामान मेरे कमरे के बाहर रख दो। और दवाइयाँ जो लिखी हैं, वे मँगवाकर रख लो, अभी सिर्फ खाँसी है, बुखार नहीं इसलिए चिंता की कोई बात नहीं। पति एक अलग कमरे में बंद हो गए। रह गई मैं अकेली। हाथ पैर आतंकित मन से जैसे ठंडे पड़ गए थे। अस्थमा की मरीज़ हूँ किडनी भी एक ही है, एक से ही बीस साल गुज़र गए है। पर अब इस बीमारी में कहते हैं अस्थमा वालों को और किडनी पेशेंट को ज़्यादा ख़तरा है, क्या करूँ क्या न करूँ ? मैं तो दोनों की ही पेशेंट हूँ। अब अगर घर में आ ही गया है तो लपेटना ही। पर अगर ख़ुद भी एक कमरे में बंद हो गई तो कमरे में बंद पति को कौन मदद करेगा। ख़ुद ही ख़ुद को समझाया, अभी कुछ नहीं बिगड़ा अभी से मास्क को ही अनिवार्य कर लेती हूँ। काढ़ा तो पिछले कई दिनों से बन ही रहा है अब दो की जगह तीन बार काढ़ा लेना शुरू कर दूँगी। कपूर तो जैसे घर के दरवाज़े के पास हर कोने में पानी के तसले में डालकर रख दिया है, इनके कमरे के पास जो टेबल है, वहाँ तो चोबीस घंटे कपूर, अजवाइन की धूप जलती रखने लगी थी। आठ दिन गुज़र गए इन्हें एक कमरे में बंद किताबें पढ़ते और मुझे बाहर

चाय, काढ़ा, खाना, दवाई सफाई सब करते, लेकिन अच्छा यह रहा कि इनकी रिपोर्ट भी नेगेटिव आई थी और बुखार भी नहीं आया। एलर्जी वाली खाँसी मान कर भय थोड़ा कम हुआ था। लेकिन एक दिन पास वाली वयनी का फ़ोन था, एक दम रुआँसी आवाज़ "विजू ताई इनको तीन दिन से तेज़ बुखार है।"

"अरे ! आपने बताया नहीं ?" मुझे चिंता के साथ असहाय होने की ग्लानी थी।

"क्या बताती रे ! तुम ख़ुद परेशान हो।'

"ब्लड टेस्ट या RTPS CRR के लिए सैंपल दे दिया उसको ?"मैंने जानना चाहा।

"नहीं दिया, कहाँ फ़ोन करूँ कैसे करूँ?"

मैंने उनकी स्थिति समझी, इस उम्र में ये सब मैनेज करना कहाँ संभव है, मैंने ही डायरी से नंबर निकाल कर उन्हें भी लिखवाया और ख़ुद ही फ़ोन भी कर दिया। साथ ही उन्हें भी हिदायत दी की अलग कमरे में बंद रहने दीजिए, आप अन्दर मत जाना और हमेशा मास्क लगा कर रखें उनको डिस्पोज़ेबल बर्तनों में खाना दीजिए। दरवाज़े के पास स्टूल रख दीजिए, कपड़े के लिए सर्फ़ का पानी बना कर उसमें भिगोने का बोल दीजिए। हाँ ऐसा कर रही हूँ उन्हें आश्वस्त किया। दादा की रिपोर्ट को पॉजिटिव आना ही था सारे लक्षण वही थे। तबियत बिगड़ने लगी तो एक दिन फिर उनका फ़ोन था "विजू ताई इनको साँस लेने में दिक्कत है।"

"वयनी दादा को अस्पताल से मेडिकल हेल्प की ज़रूरत होगी अब उन्हें हॉस्पिटल भेजते हैं यही ठीक रहेगा।" मैंने दबे स्वर में समझाया। मैंने सोसायटी के दफ्तर में भी बताया।

कुछ देर बाद एम्बुलेंस आई और कुछ कोरोना वारियर्स अपनी उस डरावनी सी प्लास्टिक जैसी ड्रेस में मुझे लिफ्ट के पास दिखे। हाथ-पैर फूलने लगे, बेचारे बुज़ुर्ग। अब क्या करूँ फ़ोन करूँ, हिम्मत दूँ ? मास्क लगा कर जाऊँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। जाने का तो सवाल ही नहीं था, उन्हें फ़ोन करके हाल-चाल पूछे। वे निस्तेज सी आवाज़ में हेलो ही बोल सकी थी। अब जो बोलना था वह मुझे ही बोलना था। "वयनी हिम्मत से सभी ज़रूरी चीज़ें एक बैग में डाल दीजिए, जैसे दादा की दवा, पिछला मेडिकल रिकार्ड। कपड़े, स्लीपर, फ़ोन, थर्मस और कुछ पैसे भी। जब जाएँ तो आप हिम्मत रखना और दूर ही खड़े रहना। बस थोड़े दिन की बात है। इलाज शुरू होते ही सब ठीक हो जाएगा। आप भी उनसे आपके लिए दवाई का एक डोज़ लिखवा लेना। आपके लिए खाना मैंने बना लिया है अभी। दादा को कुछ देना हो तो मैं डिब्बा रख देती हूँ।" वे कुछ बोलने की मन स्थिति में नहीं थी। "हो" बोल कर फ़ोन रख दिया था।

हालात दिन पर दिन बिगड़ रहे थे। बंद घरों में टीवी, फेसबुक, फ़ोन सभी तो भयावह ख़बरें दे रहे थे। कहाँ जाएँ ? स्थितियों को देखकर लगता है कि न जाने यह समय इतना कठिन, इतना बेरहम और इतना निर्दयी क्यों हो गया है। कैसे एक छोटे से वायरस के सामने आसमान छूते मेडिकल साइंस ने घुटने टेक दिए हैं, कैसे विकास का पैमाना मानी जाने वाली कंक्रीट से बनी इमारतें एक बीमारी के सामने खोखली नज़र आ रही हैं, कैसे विकास के नाम पर काटे गए वृक्षों ने ऑक्सीजन के लिए मानव को उसकी औकात दिखा दी है। ऐसे कितने की सवाल हैं जिनके उत्तर हम ख़ुद नहीं दे पा रहे थे। किससे पूछे ये प्रश्न? किसको उत्तर दें ? इतनी आपदाएँ आईं, गईं पर ऐसा नकारात्मक वातावरण तो इतिहास में भी कहीं दर्ज नहीं था। सिर्फ भय, उदासी, निराशा और जीवन की नश्वरता ऐसी कि क्या राजा क्या रंक ? फ़िल्मी दुनिया के लोगों से लेकर तो ब्रिटेन के प्रिंस चार्ल्स तक सब इसकी चपेट में। मज़दूर सड़कों पर मर रहे थे। तो मध्यमवर्गीय घरों में। मई माह के प्रथम सप्ताह में तो कोरोना पॉज़िटिव आने वाले लोगों की संख्या प्रतिदिन चार लाख से भी अधिक पहुँच गई थी। देश के प्राय: सभी राज्यों में लॉकडाउन चल रहा था। घरों में राशन और मार्केट में दवाइयाँ ख़त्म हो रही थी। ख़बरें सुनूँ तो मुश्किल, न सुनूँ तो दुनिया से जोड़े रखने का यह अंतिम साधन भी छूट जाए। क्या पता कोई ज़रूरी जानकारी से वंचित न रह जाएँ। इसी बात के लिए टीवी चलता रहता। दूर अमेरिका में बैठे अपने बच्चों की चिंता में टीवी का चलना एक राहत भी देता, हालाँकि ख़बरें तो हार्ट अटैक लाने जैसी नेगेटिव ही थीं, ख़बरों के मुताबिक़ कोरोना से अब तक दुनिया में करीबन 35 लाख से अधिक लोगों की मृत्यु हो चुकी है। अमेरिका में सबसे अधिक 6 लाख लोगों की, दूसरे स्थान पर ब्राज़ील में चार लाख 52 हज़ार लोगों की मौत हो चुकी है। वहीं भारत का दुनिया में तीसरा स्थान है जहाँ 3 लाख 21 हज़ार से अधिक लोगों की मौत हो चुकी है।

भारत में अब तक कुल दो करोड़ 77 लाख लोग पॉज़िटिव हो चुके हैं, जिनमें से 2 करोड़ 51 लाख यानी 99 प्रतिशत लोग रिकवर हो चुके हैं। भारत में अभी भी 22 लाख कोरोना के एक्टिव केस है.. मैंने इन मनहूस ख़बरों से विचलित मन को शांत करने के लिए टीवी बंद किया ही था कि फ़ोन की घंटी बजी। पास से वयनी का फ़ोन था "विजू ताई मुझे भी साँस लेने में परेशानी हो रही है, क्या करूँ ?" घबराहट के मारे मेरे को पसीने छूटने लगे। कितना क्रूर समय। निर्बल असहाय की भी हम मदद नहीं कर सकते, जाकर छू कर सांत्वना भी नहीं ? हे ईश्वर थोड़ा तो रहम कर दोनों ही जिस उम्र में है उनकी उम्र का तो लिहाज कर। मैंने हिम्मत दिखाते हुए उन्हें भी अस्पताल की सहायता लेने की सलाह दी। फ़ोन कर दीजिए आप। कोई सहायता ज़रूर मिल जाएगी। कुछ देर बाद अपनी खिड़की से दिखने वाले जिस मेनगेट को देख कर मैं जीवन की गति की सकारात्मक ऊर्जा कहती थी, अब वहाँ सबसे ज़्यादा नेगेटिविटी लगती। जब भी एम्बुलेंस दरवाज़े पर रुकती और सोसायटी से कोई उसमें जाता दिखता। फिर तो हर दो घंटे बाद एम्बुलेंस की आवाज़ सुनाई देती।

उनके फ़ोन के एक घंटे बाद सायरन की आवाज़ सुन कर, मैंने खिड़की का पल्ला थोड़ा खोला। तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई वयनी थीं किट पहना दी गई थी, घर में सेनिटाइज़र भी डाला गया था। गंध फ़ैल रही थी। उन्होंने वहीं से कहा-"विजू घर की चाबी है कहाँ सँभालती रहूँगी, तुम्हारी बालकनी का दरवाज़ा खुला था तो आगे के बरामदे की

दीवार पर लगी कील पर टाँग दी है। अभी छूना मत चाबी। हो सकता है ये शायद पहले आ जाएँ, इन्हें बताया नहीं है मैंने अपने बारे में। तुम भी बताना मत। कभी फ़ोन आए तो?"

"जा रही हूँ।"

"जी जल्दी आना मैं इंतज़ार कर रही हूँ।" मैंने रोते हुए ही कहा था, जिस खिड़की से लिफ्ट दिखती थी... मैंने दूर से ही उसमें से झाँका, मुझे उनकी जाती हुई पीठ दिखी। मन हुआ दौड़ कर उन्हें एक बार गले लगा लूँ। सिसकियाँ जैसे बाँध तोड़ देना चाहती थीं, मैं तेज़ी से बालकनी के दरवाज़े तक गई उन्हें वॉरियर्स एम्बुलेंस में चढ़ने में मदद कर रहा था। फिर सायरन बजाती वह चली गई। कुछ देर मैं सुबक-सुबक कर रो ली। कैसा समय दिखाया भगवान्, कैसे हम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए है। कुछ भी नहीं कर सकते? सोशल डिस्टेंसिंग का पालन करने की सलाह दी जा रही है। सरकार सामाजिक दूरी बनाए रखने पर ज़ोर दे रही है ताकि इस वायरस से बचा जा सके। लोग कितने अकेले होते जा रहे हैं। मजबूर, भूखे, असहाय। कोई किसी की मदद नहीं कर सकता? छूने से, पास जाने से परिवार ही डराने लगे थे। कैसा विकट समय? कितनी ग़लतियाँ गिनवाई जा रही हैं? पर्यावरण को लेकर हमारी भूलें, लेकिन क्या विकास की अंधी दौड़ में सभी शामिल नहीं हैं? वे भी जो बस ग़लतियाँ गिनवाने में लगे है? उन्हें जाते हुए देखना मन को भारी कर गया था। कितनी लाचार थीं वे जो अकेले जा रही थीं और कितनी लाचार थी मैं उन्हें ठीक से सांत्वना भी नहीं दे सकी। शाम को मास्क लगा कर एक पल को दरवाज़ा खोल कर तुलसी का दिया बाहर रखा, देखा उनकी तुलसी अँधेरे में है, हिम्मत करके चुपचाप एक दीपक उनकी तरफ भी खिसका दिया। अगली सुबह फ़ोन करके हालचाल पूछे तो फ़ोन पर किसी हॉस्पिटल के स्टाफ ने बताया उन्हें ऑक्सीजन दें रहे हैं, फिर फ़ोन लगाने की हिम्मत नहीं हुई। फिर एक दिन फ़ोन लगाया तो घंटी जाती रही और फिर स्विच ऑफ बताने लगा। अब क्या करूँ ? पति से बताया तो उन्होंने समझाने की कोशिश की अस्पतालों से सामान, मोबाइल चोरी की ख़बरें भी आ रही हैं, हो सकता है मोबाइल चोरी हो गया हो... मेरा दिल बैठा जा रहा था। बार-बार मैं दीवार पर टँगी उनकी चाबी देख रही थी। जैसे वह चाबी नहीं वयनी स्वयं ही बैठी हों। फिर धीरे-धीरे चाबी को देखते हुए मन घबराने लगता, आशंकाएँ घेरने लगतीं, जाने क्यों मुझे बुरे ख़याल आते। न घर में किसी काम में मन लगता। न भूख प्यास का पता। अन्दर ही अन्दर शायद पति भी किसी आशंका को महसूस कर रहे थे। वे कोशिश करते की उनकी बात न निकले लेकिन एक दिन सोसायटी के ऑफिस में फ़ोन लगाया मैंने उनका कोई भी संपर्क सूत्र मिले। कोई रिश्तेदार का पता या फ़ोन नम्बर मिल जाय तो वहाँ से पता लगा कि मेरे श्रीमानजी चार बार उनसे यह सब पूछ चुके हैं। लेकिन उनके पास नहीं है कोई इन्फार्मेशन।

पूरी दुनिया के बदतर हालात हैं। इलाज व दवाओं की भारी कमी है, ऑक्सीजन के लिए इंडस्ट्री के सिलेंडर लेने पड़ रहे हैं। लोग अब कोरोना से डरने के बजाय लंबी-लंबी लाइन में घंटों खड़े हैं, ऑक्सीजन के लिए खड़े हैं। रेमडेसिवीर इंजेक्शन की ही कमी को लेकर हाहाकार मचा हुआ था लेकिन अब दुकानों से ऐसी अन्य दवाइयाँ भी ग़ायब हो रही हैं जो कोरोना पॉज़िटिव और संदिग्ध कोरोना मरीज़ को दी जा रही थीं। मुझे तो उनका अस्पताल पूछना चाहिए था लेकिन मति तो उस समय काम ही नहीं कर रही थी। उम्र के इस पड़ाव पर पति को खोज ख़बर के लिए भेज भी नहीं सकती। सबेरे उठते ही चाबी देखती हूँ ! हाँ जगह पर टँगी है!, मतलब वे रात में नहीं आए। ख़बरें कह रही थी स्थिति को सँभालते सँभालते भी जाने कितने डॉक्टर, नर्स, वॉरियर्स बेमौत मर रहे थे। इस बीच बेटे ने पोता होने की ख़बर दी, पर सच बताऊँ ज़िंदगी की यह सबसे बड़ी ख़ुशी मुझे कोई बड़ी ख़ुशी नहीं लगी। एक नन्हें का आगमन जीवन का अनमोल वरदान लगता सामान्य स्थिति में, लेकिन मैं तो दो लोगों के यूँ लौट कर न आने से अन्दर ही अन्दर घुट रही थी। बेटे को यह बात बताऊँ या नहीं ? सोचती ही रही फिर लगा एक बेहद कठिन सिचुऐशन में हैं वे दोनों। पहला बच्चा और घर में सँभालने वाला, बनाकर खिलाने वाला कोई नहीं। उनका तनाव बढ़ने से कोई नया संकट न आ जाए। कुछ नहीं बताया उन्हें।

देखते-देखते पूरा महीना गुज़र गया, चाबी को देखते हुए अब मन में फ़िल्म सी चलने लगती। जैसे वही एक उम्मीद की किरण है कि इसे लेने दोनों में से कोई तो आएगा। एक दिन घर खुलेगा और सुबह के भजन फिर सुनाई देंगे। लेकिन तीन माह गुज़र गए है। बाहर अब स्थिति थोड़ी सँभल रही है। लोग थोड़ा निकलने लगे हैं पर मैं कहीं नहीं जाना चाहती क्या पता शायद मैं जाऊँ और वे चाबी लेने आ जाएँ? उन्हें हम खोजें भी तो कहाँ केवल नाम भर पता था। गेट को देखना अब भी जारी है, वे जो जाते हुए पीठ से दिखी थीं शायद आते हुए चहरे से दिखाई दे जाएँ। लिफ्ट की हर आहट जैसे मेरे कान खड़े कर देती है, बस कोई बोले- विजू ताई चाबी सँभाल कर रखी है लाओ दे दो ? मैं मति भ्रम में जाने लगी हूँ, डिप्रेशन का असर दिख रहा है खाने में कभी नमक भूल जाती हूँ, कभी दो बार डाल देती हूँ। कहीं मन नहीं लगता। भ्रम होता है कोई भजन गा रहा है पड़ोस में। भाग कर खिड़की खोल देख आती हूँ, अब दरवाज़ा धूल से बेरौनक लगाने लगा है। एक दिन तो झाड़ आई थी धूल। पर वहम से बाहर आती हूँ कुंठा जैसे गले में फंदा बन रही है, चाबी अब चाबी नहीं दिखती मुझे दीवार पर टँगी पिस्तौल लगती है। डरावनी और मनहूस चाबी जो मेरे कंठ को दबाने लगती है। मैं जीना चाहती हूँ, अपने पोते की ख़ुशी में हुलस कर बेटे बहू को आशीष देना चाहती हूँ पर यह चाबी दिमाग़ के ताले बंद कर चुकी है, खुली हवा में साँस लेने की इच्छा होती है पर जैसे इस चाबी ने मुझे अँधेरी गुफा में बंद कर दिया है, भगवान् कुछ ऐसा करो कोई आए इस चाबी के लिए। इसे कोई ले जाए। मैं ज़िम्मेदारी के भार और आत्मा के भय से मुक्त हो जाऊँ; लेकिन चाबी अभी टँगी है। आज भी टँगी है।

000

क्रूज़ पर उपजा प्रेम

ममता त्यागी

अचानक एक हिचकोले से पूरा पलंग हिल गया, वह गिरते-गिरते बची। करेबियन क्रूज़ के अपने केबिन में मानसी इत्मीनान से मीठी नींद में सोयी थी, शायद समंदर की कोई ऊँची लहर आई होगी तभी यह झटका-सा लगा। अब समंदर के बीच में ऐसी घटनाएँ होना स्वाभाविक सा था, कल से कई बार ऐसा हो चुका था। आँख खोल कर देखा माँ पास में नहीं थी, शायद बाथरूम में होंगी। उसने सोचा और करवट बदल ली, सामने बालकनी में निगाह पड़ी तो देखा माँ बाहर कुर्सी पर बैठी सुदूर क्षितिज को निहार रही थी। उगते सूर्य की लालिमा आसमान में छिटकने लगी थी, प्राची में फैला नारंगी गुलाबी रंग सूरज के आगमन का संदेश लेकर आया था। ऐसा लग रहा था मानों प्रकृति ने सूर्य के रथ के रास्ते में हज़ारों रंग के फूल बिखरा दिये हों। नीला समंदर अब अपेक्षाकृत शांत था, मानों सूर्य के पाँव पखारने को स्तब्ध-सा हो कर प्रतीक्षा कर रहा हो। इस अद्‌भुत दृश्य में माँ को इस तरह तल्लीनता में डूबे देख मानसी को एक अनजानी सी ख़ुशी हुई। कितने दिनों बाद उसने आज माँ को ऐसे देखा, उनके चेहरे पर एक सुकून सा फैला था। कुछ पल वह उन्हें निहारती रही। क्या सोच रही होगी माँ, उसने ख़ुद से सवाल किया। वह चुपचाप बिस्तर पर लेटी माँ को देखती रही, वह नहीं चाहती थी कि माँ को पता चले कि वह जाग गई है और इतने सुकून से बैठी हुई माँ अंदर आ जाए।

मानसी फिर सोच में डूब गई, क्या माँ पापा के साथ बिताए अपनी युवावस्था के समय को याद कर रही होगी या फिर आज इस समय पापा को मिस कर रही होगी। पापा को तो वह भी आज बहुत ज़्यादा मिस कर रही है, काश पापा भी आज हमारे साथ होते तो कितना अच्छा लगता। पापा आज होते तो अपनी बेटी और उसके परिवार को इतना ख़ुशहाल देखकर कितना ख़ुश होते।

पाँच साल पहले वह जब अमेरिका आए थे तब बिटिया इतनी छोटी थी कि उन्हें लेकर कहीं घूमने जाना ही नहीं हुआ और फिर नियति का ऐसा चक्र चला कि पापा सबको बिलखता छोड़ कर अचानक ही महाप्रस्थान कर गए। कितनी मुश्किल से माँ ने ख़ुद को सँभाला और अपने बच्चों के लिये हमेशा की तरह दृढ़ चट्टान बनकर खड़ी हो गईं। उनके जाने के बाद अब कितनी मुश्किल से उसने माँ को इंडिया से यहाँ आने के लिए मनाया। वह तो बस अपनी ज़िम्मेदारियों की चादर ओढ़े बैठी रहती हैं। जब भी यहाँ आने की बात करो तो हर बार कुछ नया बहाना होता था। कभी भाई के बच्चों की समस्या, कभी भाभी की नौकरी का बहाना, कि अगर वह आ गईं तो घर में मुश्किल होगी। ऐसा नहीं था कि भाई-भाभी मना करते, पर पापा के जाने के बाद उन्हें लगने लगा था कि भाई उनका ख़याल रखता है तो उसका घर सँभालना भी उनकी ही ज़िम्मेदारी है। जब उसने बहुत ज़िद की और बच्चों ने, शिरीष ने भी बार-बार कहा, तब जाकर आने के लिए तैयार हुईं। मानसी का बहुत मन था कि माँ एक बार आकर अपनी बेटी का सुख, वैभव अपनी आँखों से देख लें।

मानसी सोच में डूबी माँ को देख रही थी, आधा घंटा ऐसे ही गुज़र गया। उसका मन एक अनजाने आत्मिक संतोष से भर गया। तभी उसका हाथ साइड टेबल पर रखे ग्लास में लगा,

ममता त्यागी
411 ब्रायरली ड्राइव, एपेक्स, नॉर्थ कैरोलाइना, यूएसए
मोबाइल- 984-218-6178
ईमेल- mamtatyagi80@gmail.com

ग्लास गिर पड़ा। टन्न की आवाज़ सुनकर माँ की तल्लीनता टूटी और उनकी नज़र मानसी पर पड़ी तो बोली, अरे मेरी गुड़िया जाग गई ? उनका स्नेहसिक्त संबोधन उसे ममता से सराबोर कर गया। वह माँ को देखकर मुस्करा दी। एक पल को उसे लगा वह छोटी-सी बच्ची बनकर अभी माँ से लिपट जाए पर चाह कर भी वह ऐसा नहीं कर पायी, न जाने क्यों संकोच की दीवार एक बार फिर आड़े आ गई। उसे याद है माँ ने एक बार कहा भी था, गुड़िया, मन करता है एक बार तू फिर छोटी सी बच्ची बन मेरे पास लिपट कर सो जा जैसे तू बचपन में करती थी।

कई दिनों से मानसी आत्म-विश्लेषण सा कर रही थी और सोच रही थी कि आख़िर क्यों माँ और उसके बीच इतनी दूरियाँ आ गईं ? क्या वह अपने परिवार, नौकरी और बच्चों में इतना उलझ गई कि अपनी ही माँ को समय नहीं दे पाती। अब इस दूरी को मिटाने के लिए कुछ तो करना होगा। यही सोचकर उसने क्रूज़ पर छुट्टियाँ बिताने का निर्णय लिया। शिरीष और दोनों बच्चियाँ बग़ल वाले केबिन में थीं। उसने जान-बूझकर क्रूज़ पर माँ के साथ सोने का निर्णय लिया था ताकि अधिकाधिक समय वह दोनों साथ हों। क्रूज़ पर आने का यही तो फ़ायदा था, न ख़ाना बनाने की फ़िक्र, न कहीं बाहर होटल में जाकर ख़ाना, बस जिसका जब मन करे जाओ और जाकर खा लो। न बच्चों की चिंता कि क्या करेंगे, क्योंकि उनके लिए भी बहुत कुछ था। कुल मिलाकर आनंददायक समय निकल रहा था। मानसी को लग रहा था कि वह माँ के और क़रीब आ रही थी, उन्हें और अधिक समझ पा रही थी। यहाँ आने के लिए जब तैयारी करने लगे थे तो उसने कहा, "माँ, आपके लिये कुछ वेस्टर्न कपड़े लेते हैं। यहाँ तो आपने पहने नहीं वहाँ पहन लेना, अच्छा लगेगा।" बड़ी मुश्किल से माँ तैयार हुई, बस एक ही उत्तर था, "अरे बेटा! सारी उमर हमने साड़ी पहनी है अब क्या यह सब पहनना हमें शोभा देगा ?"

"क्या माँ, आप भी कैसी बातें करती हैं ? अच्छा बताओ, तुम्हारा मन नहीं करता यहाँ आकर कुछ अलग-सा करने का ?"

"अरे बेटा, अब उमर नहीं रही यह सब करने की।"

"रहने दो माँ, कोई उम्र नहीं होती। जब मन करे, जिस बात का मन करे करना चाहिए।" और जब वह माँ के लिए जीन्स और कुरती लायी तो वह एक नन्हीं बच्ची सी आह्लादित हो गईं, एक शर्मीली सी मुस्कान उनके चेहरे पर थी। "तेरे पापा को हम साड़ी में ही अच्छे लगते थे।" हल्की सी हँसी के साथ उन्होंने कहा। मानसी ने मुस्करा कर कहा, "अभी अगर पापा होते तो तुम्हें इन कपड़ों में देख पहचान भी न पाते। अच्छा अब चलो ज़रा बाहर जाना है।"

"कहाँ जाना है अब बेटा ? सब कुछ तो ले लिया।"

"तुम्हारी हेयर कट की अपॉइंटमेंट ली है वहीं जाना है।"

माँ के चेहरे पर आश्चर्य फैल गया, "नहीं नहीं ! हम सारी उम्र से जूड़ा बनाते आए हैं, अब बाल नहीं कटवा सकते।"

"अरे चलो तो माँ, देखना क्या ग़ज़ब लगोगी छोटे बालों में, जल्दी करो अब।"

"परंतु बेटा !" माँ की हिचकिचाहट कम नहीं हो रही थी, पर मानसी के सामने उनकी एक न चली।

हेयर कट के बाद वह स्वयं को आईने में निहार कर अपने को ही नहीं पहचान रही थीं, लगा उम्र जैसे दस साल कम लगने लगी। कहाँ साड़ी, बड़ी सी बिंदी और जूड़ा और कहाँ जीन्स-कुर्ती में सिमटी काया और कर्ल किए हुए कंधों तक झूलते बाल चेहरे की गरिमा और भी बढ़ाते हुए। मानसी माँ को देख मुग्ध हो रही थी, बच्चे भी अपनी नानी को इस रूप में देख कर ख़ुश थे। शाम को भाई ने फेसटाइम किया तो न जाने क्यों माँ बहुत संकोच में पड़ गई थी।

"माँ, यह अपने बालों का क्या कर किया आपने ? आप जूड़े में ही अच्छी लगती हो।" भाई ने उन्हें देखते ही सवाल दागा।

वह सकुचा गईं पर इससे पहले वह कुछ बोलती मानसी ने फ़ोन ले लिया, "भैया, मेरा मन था इसलिए मैंने माँ का हेयर कट करवाया है।"

"अरे ठीक है गुड़िया, पर हम तो यह कह रहे थे कि लौट कर उन्हें आना तो यहीं है तो कैसा अजीब लगेगा।" मानसी के क्रोध का पारावार नहीं रहा, किसी तरह ख़ुद को सँभाला। "कुछ नहीं है भैया, सब कटवाते हैं, माँ ने कोई अनोखा काम नहीं किया।"

फ़ोन रखकर मानसी माँ पर बरस पड़ी, "भैया आपको ऐसे कैसे बोल सकते हैं ? आपकी अपनी मर्ज़ी कोई नहीं है क्या माँ ? आपने क्यों नहीं कहा कि मेरा भी मन था इसलिए कटवाए हैं।" मानसी का गला भर आया, माँ, कभी तो अपने मन की भी सुन लो। मुझे पता है आपको अच्छा लगा है पर स्वीकारोगी नहीं। माँ भावुक हो गईं, उन्होंने मानसी को गले से लगा लिया परंतु बोली कुछ नहीं। अब वह क्या कहें कि सारी उम्र कभी सोचा भी नहीं कि उन्हें स्वयं को क्या पसंद है। शादी से पहले घर में पापा का निर्णय चलता था और विवाह होते ही वह नितिन जी की छाया बन गईं। जैसा उन्होंने चाहा, जो उन्होंने कहा ऐसा ही किया। अपनी पसंद, नापसंद सब जैसे उठाकर रखा दी। वैसे नितिन जी बहुत ख़याल रखते थे, बाज़ार जाते तो न जाने कितनी तरह की साड़ियाँ ले आते। सब अपनी पसंद से ख़ूब शोख़ रंगों की। आते ही कहते, ज़रा पहन कर दिखाइए तो, ख़ूब फबेगी आप पर। माँ संकोच में गड़ जातीं, अभी काम निपटा लें तो पहनते हैं। पर वह भला कहाँ सुनते, अपनी बात मनवा कर ही छोड़ते थे। न जाने कितने गहने, कितने कपड़े, सारी ज़िंदगी कोई कमी नहीं होने दी। शायद इसलिए वह स्वयं भूल गईं कि उनकी पसंद क्या है ?

एक दिन उनकी सहेली रीमा आई तो ख़ूबसूरत कढ़ाई किया हुआ आसमानी रंग का कुर्ता पहने थी, उसे देख कर लगा कि आसमानी रंग तो उन्हें कितना भाता था। पर उसके जाने के बाद नितिन जी का कमेंट सुना कि क्या रंग पहना था फीका सा, चटक पहनती तो और भी अच्छी लगती। उन्होंने फिर कभी कहा ही नहीं कि हल्के रंगों की अपनी एक अलग आभा होती है, जो उन्हें बहुत पसंद है। जीवन भर छाया बनी रहीं नितिन जी की, बच्चों से भी खुल ही नहीं पायीं। अपने तीनों

बच्चों को बहुत प्यार दिया, उनकी हर ज़रूरत का ख़याल रखा। कभी-कभी उनका मन करता था कि उन्हें गले से लगाकर ख़ूब प्यार प्रदर्शित करे पर ना जाने क्यों कर नहीं पाती थीं। बच्चे अपने पापा के बहुत क़रीब थे, आपस में ख़ूब लाड़ भी लड़ाते थे पर वह केवल उनकी फ़रमाइश पूरी करने को ही लाड़ मान कर सब्र कर जाती थीं।

अब जब नितिन भी नहीं रहे कई बार मन होता बच्चों से उनकी तरह खुल कर बात करें, अपना स्नेह प्रदर्शित करें परंतु कर ही नहीं पाती थीं। नितिन बच्चों के दोस्त बन गए परंतु वह कभी सहेली नहीं बन पायीं, बस माँ बन कर ही रह गईं।

जब मानसी और शिरीष ने इतनी ज़िद की तो वह आ गईं और अब तो लग रहा था जैसे ज़िंदगी कुछ अलग सी हो रही थी। उन्हें लगने लगा जैसे अब तक एक आवरण उन्होंने ओढ़ा था, धीरे-धीरे वह उस आवरण से बाहर आ रही थीं और बड़ा सहज-सा महसूस कर रही थीं। मानसी उठाकर वॉशरूम गई थी और वह फिर अपने विचारों में खो गई। तभी मानसी की आवाज़ आई, माँ, लो फटाफट यह चेंज करो, स्विमिंग के लिए चलना है। सुबह-सुबह बहुत मज़ा आएगा, ब्रेक फ़ास्ट उसके बाद ही करेंगे। "पर मुझे तैरना कहाँ आता है और यह क्या है ?" माँ ने हैरानी से पूछा।

"स्विमिंग कॉस्ट्यूम है माँ, और क्या ?" प्रतिमा के चेहरे पर अलग ही शर्मीले से भाव आए, पागल हो गई हो क्या? हमने यह सब कभी नहीं पहना। अब हम नहीं पहनेंगे, दामाद जी क्या सोचेंगे ?"

मानसी ज़ोर से हँस पड़ी, "कोई कुछ नहीं सोचता माँ, चलो तैयार हो जाओ। दोनों मिलकर ज़रा पानी में छपछप करेंगे, बहुत मज़ा आएगा।" मानसी ने एक न सुनी और माँ को चेंज करवा कर साथ लेकर चल दी। क्रूज़ पर बच्चे अपने पापा के साथ अपनी अलग-अलग एक्टिविटी में व्यस्त हो जाते। उन्हें भी पापा बेटी टाइम मिल रहा था और इधर मानसी और माँ और भी क़रीब आ रही थीं। मानसी अपने बहन और भाई में सबसे छोटी थी तो छोटी लाड़ली ही बनी रही, उसके लिए माँ उसकी हर ज़िद पूरा करने का माध्यम थी। न तो जैसे उसने कभी सुना ही नहीं था। नए से नए कपड़े, जूते, टिफ़िन में रोज़ कुछ अलग-सा नया-सा मिलता था। घर में अगर पसंद का ख़ाना ना हो या मानसी का उस दिन सब्ज़ी खाने का मन न हो तो तुरंत माँ खड़ी हो जातीं कुछ नया बनाने के लिए। तब मानसी को कभी ख़याल नहीं आया कि माँ ने इतना कुछ बनाया है, थक भी गई होंगी और फिर से नया बना रही है। परंतु तब तो सबके लिए माँ एक सरल सुलभ साधन थी जिसको जो चाहिए माँ तो कर देगी ही। पर माँ क्या चाहती है, उसके क्या खाने का, क्या पहनने का मन है किसी को ख़याल ही नहीं आता था।

एक दिन की बात है पड़ोस वाले चाचा जी के बेटे की शादी थी, माँ ने सिल्क की भारी बनारसी साड़ी तभी धोबी से प्रेस करवा कर पहनी, ख़ूबसूरत ज़ेवर और मेकअप में कितनी प्यारी लग रही थी। तैयार होकर वह बाहर आईं तो पापा और हम सब देखते रह गए। तभी सहसा पापा बोले, "प्रतिमा, हमारा आज यह सूट पहनने का मन नहीं हो रहा है, आप ऐसा कीजिये हमारा वह नीला कुर्ता पजामा निकाल दीजिए। आज शादी में वही पहनेंगे।" माँ के चेहरे के भाव एक पल को परिवर्तित हुए पर उसी क्षण स्वयं को सँभाल कर बोलीं, "हाँ जी अभी निकालते हैं, वह बॉक्स में रखा हुआ है।" बस, तुरंत उन्होंने पहनी साड़ी उतारी, नीचे बैठ कर पलंग के नीचे से बॉक्स खींचा, कुर्ता-पजामा निकाल कर प्रेस किया और पापा को दिया। उसके बाद उन्होंने दोबारा साड़ी पहनी, अस्त-व्यस्त हो गए बाल सँवारे और बिना चेहरे पर शिकन तक लाए, बिना किसी प्रतिरोध के साथ जाने को तैयार हो गईं। आज मानसी ने जब उस घटना को अलग दृष्टिकोण से परखा तो लगा उस समय माँ ने एक बार भी पापा को यह क्यों नहीं कहा कि अब जो पहन लिया है वही रहने दें, वह स्वयं तैयार हो चुकी हैं। परंतु माँ ने न कहना कभी सीखा ही नहीं था और पापा को तो कभी ख़याल आता ही नहीं था कि माँ को कोई परेशानी भी हो सकती है।

आज जब मानसी स्वयं दो किशोर लड़कियों की माँ है तब उसके सोचने का नज़रिया बदल गया है। उम्र के उस मोड़ पर कभी ख़याल नहीं आया कि कभी माँ के अंतर्मन को भी परखे, कुछ पापा को भी कहे या माँ से कभी पूछे कि उन्हें क्या सही लगता है।

अथाह फैला सागर आज उसे माँ के मन जैसा लग रहा था जिसकी थाह पाना मुश्किल था। यह सागर ऊपर से शांत दिखता है पर भीतर कितनी हलचल समाये हुए था यह भला कौन जानता है! जितना वह सोचती, जितना वह विगत पर दृष्टि डालती, माँ के प्रति प्रेम और भी अधिक उमड़ने लगता। उसे लग रहा था इतने समय में वह माँ को वह सब सुख दे दे जिसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की होगी। दस साल पहले की बात होती तो शायद वह इतने हक़ से माँ के लिए इतना कुछ नहीं सोच सकती थी। हमारे समाज में लड़कियों को विवाह होते ही घुट्टी पिला दी जाती है कि अब ससुराल ही तुम्हारा घर है। माता-पिता तो कन्यादान करते ही जैसे पराए हो जाते हैं, लड़कियाँ चाह कर भी उनके बारे में कुछ करने की हिम्मत नहीं कर पाती और माता-पिता तो बेटी दामाद से कुछ अपने लिए करवाने की कल्पना भी नहीं कर सकते।

अमेरिका आने के बाद मानसी ने जब काम करना शुरू किया और वह आत्मनिर्भर हुई तो धीरे-धीरे उसकी सोच में परिवर्तन आना शुरू हुआ। उसे लगा कि वह जब शिरीष के माता-पिता के लिए इतना कुछ करती है तो अपने माता-पिता के लिए क्यों नहीं कर सकती। ऐसा नहीं था कि शिरीष को कोई आपत्ति होती पर उसने भी कभी इस दिशा में सोचा ही नहीं। जब सारा का जन्म हुआ तो मानसी ने सोचा था कि वह अपनी बिटिया को किसी डे केयर में नहीं जाने देगी स्वयं ही देखभाल करेगी, इसलिए उसने एम बी ए होते हुए भी नौकरी नहीं की। सारा के बाद सना भी जब तक स्कूल जाने लायक़ नहीं हुई उसने नौकरी नहीं की और उसे इस बात का कभी बुरा भी नहीं लगा। वह संतुष्ट थी कि अपनी बच्चियों को वह समय दे सकी। शिरीष भी अच्छा कमाते थे तो कभी आवश्यकता भी

नहीं पड़ी; परंतु कुछ भी खर्च करने से पहले मानसी हज़ार बार सोचती, इस पर अपने माता-पिता के लिये कभी कुछ करने कि नहीं सोच पायी। उसे लगता था अगर वह सोचेगी तो शिरीष पर बोझ होगा और माँ-पापा भी यह नहीं स्वीकार करेंगे।

अब जब पाँच सालों से उसने ख़ुद भी काम करना आरंभ किया तो उसका आत्मविश्वास सौ गुना बढ़ गया। स्वयं बेटियों की माँ बनकर इस रिश्ते की गहराई को और भी अधिक समझा तभी ज़िद करके माँ को अपने पास बुलाया।

उसे लग रहा था जितनी भी कमी रह गई, जो कुछ भी आज तक वह नहीं कर सकी बस वह सारी तमन्ना पूरी कर ले। अपने और माँ के रिश्ते को एक बार पुन: उसी मोड़ पर ले आए जब वह केवल माँ-पापा की नन्ही परी थी। और अब क्रूज़ पर संबंधों की नई व्याख्या के साथ एक अलग ही तरह का प्रेम उपज रहा था। आज उन दोनों का रिश्ता केवल माँ-बेटी का नहीं रह गया था अब तो जैसे वह दोनों अंतरंग सहेलियाँ थी। उनके मन के द्वार धीरे-धीरे खुल रहे था; जहाँ अब तक एक ज़ंग लगा ताला लटक रहा था। जिस द्वार के भीतर जाने की उन्होंने शायद किसी को इजाज़त नहीं थी, यहाँ तक कि स्वयं को भी नहीं। मानसी के प्रयत्नों से वह द्वार अब खुल चुका था और अब एक नई प्रतिमा दिखायी दे रही थी। वह केवल एक स्नेहिल त्याग की प्रतिमूर्ति माँ ही नहीं थी अब एक औरत भी थी जिसके भीतर एक किशोरी छिपी थी, जो बहुत कुछ चाहती थी। अब मानसी माध्यम बन रही थी इस किशोरी के संकोच के आवरण को उतार कर, उस मुखौटे को जो उसने न जाने कब से पहन रखा था, उतार कर स्वच्छंदता के पथ पर अग्रसर करने के लिए।

क्रूज़ का यह सफ़र उन दोनों को और भी पास ला रहा था, मानसी माँ के दमकते चेहरे को देख संतुष्टि से भर रही थी। सब तो केवल पितृ ऋण चुकाने की बात करते रहते थे परंतु आज वह मातृ ऋण चुका कर स्वयं को धन्य समझ रही थी।

000

लघुकथा

मॉर्निंग टी

मृत्युंजय कुमार मनोज

'अजी, उठिए न। आज आपके हाथ की बनी चाय पीनी है। बहुत दिनों से आपके हाथ से बनी चाय नहीं पी है' -रूपा ने कंबल के अंदर से विकास को हिलाते हुए कहा।

'ओह! अरे यार! संडे है। सोने दो। तुम ख़ुद बना लो'-विकास ने अधजगी अवस्था में जवाब दिया।

'ओ माय डार्लिंग, प्लीज़'- रूपा ने प्यार से कहा। 'ओह हो! तुम भी न। चलो बनाता हूँ'- विकास ने बिस्तर से उठते हुए कहा।

फ़रवरी का महीना। गुलाबी सर्दी वाली सुबह। नोएडा के पैराडाइज सोसायटी में विकास का 'प्रेम निवास'। शादी को दस बरस बीत चुके हैं।

बालकनी में सुबह की खिली-खिली धूप। 'धूप कितनी अच्छी लग रही है न' -चाय की चुस्की लेते हुए रूपा ने कहा।

'क्या बात है? कुछ डिमांड तो नहीं? आज मुझ पर बड़ा प्यार आ रहा है। ऐसे तो इतने बरसों में कभी ढंग से मेरी तारीफ भी नहीं की' -विकास ने कहा।

'ओह हो! इतनी शिकायतें। तुम नहीं समझोगे। स्त्रियाँ खुलेआम पति का तारीफ़ नहीं कर सकती। लोग नज़र लगा देंगे। मैं दिखावा नहीं करती। इस मॉर्निंग टी को ही ले लो। यह महज़ चाय नहीं है, तुम्हारे साथ होने का, तुम्हारे प्यार का, केयरिंग होने का एहसास है। आज के भाग-दौड़ वाले समय में तुम्हारे साथ मॉर्निंग टी एक अलग सुकून एवं आनंद देता है। यही छोटे-छोटे पल ज़िंदगी में रिश्तों को जीवंत बनाते हैं, उसकी गरमाहट को बनाए रखते हैं' -चाय की चुस्की लेते हुए रूपा ने जवाब दिया।

सूरज की रोशनी में रूपा की अलग छवि को विकास निहारे जा रहा था। मॉर्निंग टी की चुस्की और मिठास के साथ न जाने कितनी ग़लतफहमियाँ और कड़वाहटें घुलती जा रही थीं।

000

मृत्युंजय कुमार मनोज
निराला एस्टेट, टेकजोन -4,
ग्रेटर नोएडा (पश्चिम), उप्र -201306
ईमेल- jaijaiho2024@gmail.com

मृत्यु धुन

हरभगवान चावला

जेठा राम जयपुर रेलवे स्टेशन पर अपने आठ वर्षीय बेटे के साथ एक बेंच पर बैठा था। सर्दियों के दिन थे। शाम के लगभग छः बजे थे। अँधेरा उतरने लगा था, गाड़ी अब किसी भी वक्त प्लेटफॉर्म पर लग सकती थी। उसने बेटे को देखा - एक छोटे कंबल में लिपटा कंकाल। उसके खुले होठों में से लंबे दाँत बाहर झाँक रहे थे, चेहरे का रंग नीला था। घुटनों के बल बैठा बेटा किसी बंदर के बच्चे की तरह दिख रहा था। "कीं खावैगो के बेटा?" जेठा राम ने पूछा तो बेटे ने इंकार में सिर हिला दिया। "पाणी?" उसने फिर पूछा। इस बार भी उसका सिर इंकार में हिला। जेठा राम का मन भर आया। अकेला बेटा और इस क़दर बीमार! वह बेटे को दिखाने ही सवाई मानसिंह अस्पताल में आया था। ग़रीब आदमी दिल्ली, गुड़गाँव तो जा नहीं सकता, दक्षिणी और पश्चिमी हरियाणा के ग़रीबों का सहारा यही अस्पताल है। डॉक्टर ने दवाई ज़रूर दे दी थी, पर उसके ठीक होने का आश्वासन नहीं दिया था, बस दवाई देते रहो और गेहूँ का जवारा पिलाते रहो। जेठा राम को अपना मामा याद आ गया। चार दिन पहले वह अपने बीमार मामा को देखने गया था। मामा एक खाट पर पड़े थे। उनके दोनों हाथ उनकी छाती पर जुड़े हुए थे। उनके मुँह से लगातार आँ...ई, आँ...ई की हूक एक सुर में निकल रही थी - जैसे कोई मृत्यु धुन हो। "मामा राम राम! के हाल है?" उसने जब मामा से यह कहा तो मृत्यु धुन और तेज़ हो गई। खाट पर पड़े-पड़े मामा के सारे शरीर में ज़ख्म हो गए थे, वह बिल्कुल भी हिल-डुल नहीं सकते थे। मामी ने बताया कि इनके मुँह में रुई से निचोड़कर दूध डाला जाता है। वह फिर से राम-राम बोला तो मामा ने आँखें खोलीं, पत्थर जैसी सख़्त और सूनी आँखें। जेठा राम को वे आँखें अंधे कुएँ जैसी लगीं और वह दहल गया। मृत्यु धुन अब और तेज़ हो गई थी। 'इतने कमज़ोर मामा में इतनी ऊर्जा कहाँ बची हुई है' उसने सोचा और वहाँ से निकल भागने की तैयारी करने लगा। इस बीच मामी चाय और बिस्कुट ले आई। उसके लिए एक-एक पल असह्य हो रहा था, पर चाय तो अब पीनी ही थी। उसने मामी से बाटी माँगी। बाटी में चाय डालकर ठंडी की और एक घूँट में गटक गया। उठकर चलने के लिए खड़ा हुआ तो मामी ने पूछा, "राजू कियाँ है?"

"बीहसो ही है, अब जयपुर दिखा गे आऊँगा। चंगा तो अब मैं चालूँ, राम भली करै।" चलते-चलते उसके दिल की गहराई से मामा की मौत की दुआ निकली। यह सचमुच दुआ थी, बद्दुआ नहीं। उसका मन अजीब बेचारगी और वितृष्णा से भरा हुआ था। बाहर आकर उसने एक गहरी साँस ली और उसे उल्टी आ गई। उल्टी आने के बाद उसने थोड़ा सहज महसूस किया।

पर आज अचानक मामा को देखने की वह घटना किसी दृश्य की तरह क्यों सामने आती जा रही है? उसने पूरे दृश्य को बेरहमी से झटक देना चाहा। उसने अपने हाथ ज़ोर से चेहरे पर रगड़े जैसे कि वह दृश्य जाले की तरह चेहरे पर चिपका हो और वह उसके हर तंतु को छिन्न-भिन्न कर देना चाहता हो। नहीं... नहीं, उसके बेटे की हालत कभी मामा जैसी नहीं हो सकती, पता नहीं क्यों वह दृश्य जबरदस्ती उसके बेटे के चेहरे पर मुखौटे की तरह चिपक जाना चाहता है? उसने बेटे को देखा, वह पहले की तरह बिना हिले-डुले बैठा था। उसने एक गहरी साँस ली और गाड़ी का इन्तज़ार करने लगा।

गाड़ी जयपुर से ही बनकर चलती थी। सवारियाँ काफ़ी थीं, लेकिन बहुत भीड़ नहीं थी। जेठा राम को खिड़की वाली सीट मिल गई थी। बेटे का सिर उसकी जाँघों पर था, टाँगें घुटनों से मुड़ी थीं, बेटे के पैर खिड़की के पास सीट पर टिके हुए थे। गाड़ी चली। कुछ देर बाद शहर की रोशनियाँ पीछे छूटने लगीं, फिर एकदम अँधेरा हो गया। जेठा राम के सामने वाली सीट पर पाँच पुरुष थे और उसकी सीट पर भी उसके बेटे समेत पाँच। जैसा कि होता है, यात्रियों के बीच बातचीत शुरू हो गई थी। जेठा राम ने कंबल हटाकर बेटे के सिर और गालों पर हाथ फिराया और पूछा, "पाणी पीवैगो के बेटा?" बेटे ने इंकार में सिर हिला दिया। उसने फिर से उसे कंबल ओढ़ा दिया। गाड़ी चली जा रही थी, पहियों से आँ... ई, आँ... ई जैसा स्वर निकल रहा था।

हरभगवान चावला
406, सेक्टर - 20, हुडा, सिरसा - 125056 (हरियाणा)
ईमेल- hbchawla1958@gmail.com

...मृत्यु धुन... जेठा राम को पहियों की आवाज़ मृत्यु शैया पर पड़े मामा की अनवरत जारी मृत्यु धुन जैसी लगी। वह पसीने से नहा गया। "ओ तेरो छोरो है के?" किसी यात्री ने पूछा। मृत्यु धुन उस पर इतनी हावी थी कि उसने शायद सहयात्री की बात को सुना नहीं। उस यात्री ने उसके घुटने को हिलाते हुए फिर से पूछा, "मैं पूछ्यो, ओ छोरो तेरो है के?"

"हाँ, मेरो ई है, पैलाँ थारी बात सुणी कोनी माइत।"

"के होयो है इनै?"

"खून गो पाणी बणै।"

"के कह्यो है डाक्टर?"

"बस दवाई दे दी।"

"किसो गाम है थारो?"

"ऐलनाबाद कनै है।"

"चिंता ना करो, बाला जी भली करैगो।"

"बिंगो ही भरोसो है।"

"आ माखी होवै नी माखी, जकी आपणै घराँ मैं फिरती रै, इनै पकड़ गे, गुड़ तातो करगे बिंगै मा मिला गे गोळी बणा ल्यो। एक गोळी रोज़ खुवाओ। खून बणन लाग जैगो।" इस बार एक और आदमी ने बीमारी का इलाज बताया।

"जींवती माखी खाई जै के? आच्छो इलाज बतायो है!"

"मरीज नै बताणो के ज़रूरी है तो, ईं बीमारी गो जमा पक्को इलाज है ओ।"

काफ़ी देर तक उसके बेटे की बीमारी और संभावित इलाज की चर्चा होती रही। उन दोनों सीटों पर बैठे लगभग सभी लोगों ने उससे सहानुभूति जताई, पर एक आदमी मूँछों को ताव देता चुपचाप बैठा रहा। बड़ी-बड़ी मूँछों वाला यह आदमी किसी राजनीतिक दल का कोई नेता लग रहा था। अब सब लोग मौसम की बेरुख़ी के बारे में बातें कर रहे थे, लेकिन उस आदमी को जैसे किसी बात में कोई रुचि नहीं थी। वह आदमी जेठा राम को डरावना लगा। अब गाड़ी उस इलाक़े से गुज़र रही थी, जहाँ रेत के टीले थे। खिड़कियों के शीशे बंद थे, सो रेत अंदर नहीं आ रही थी, पर ठंडक बढ़ गई थी। "सादुलपुर आण आळो है।" एक आदमी ने कहा तो ज़्यादातर लोगों ने अपना सामान सँभालना शुरू कर दिया। तभी जेठा राम की जाँघों ने एक हिचकी सुनी। उसने बेटे को कंबल के भीतर हाथ डालकर छुआ। बेटा निश्चेष्ट पड़ा था। उसने पानी की बोतल उसके मुँह से लगाई, पानी लौटकर उसकी जाँघों पर आ गिरा। एक चीख़ सनसनी की तरह उसके पूरे बदन में पसर गई। सादुलपुर आ गया था, लोग उतर रहे थे और वह बेटे की नाड़ी पर हाथ रख उसकी धड़कन को महसूस करने की व्यर्थ चेष्टा कर रहा था। बेटे की धड़कन बंद थी। वह ज़ोर से चीखा, पर चीख़ हलक़ के बीच फँस गई। उसे रोना नहीं है। अगर लोगों को पता चल गया कि उसकी जाँघों पर एक लाश है तो लोग उसे यहीं उतार देंगे। वह मूँछों वाला अब भी यहीं मौजूद है। उसकी जेब में सिर्फ़ सौ रुपये हैं। यहीं उतार दिया गया तो वह क्या करेगा? किसी ने उसे गाड़ी से नीचे नहीं भी उतारा तो भी लोग यह जानकर कि उसकी जाँघों पर एक लाश है, इस जगह को छोड़कर कहीं और चले जाएँगे। क्या वह अपने मृत बेटे के प्रति इस हिकारत को बर्दाश्त कर पाएगा? नहीं, वह अपने प्यारे बेटे की मौत का अपमान नहीं होने देगा। वह बार-बार होंठ चबा रहा था और बेटे के शरीर पर हाथ फिरा रहा था। गाड़ी चल दी। उसने जैसे लोगों को सुनाते हुए कहा, "भूख लागै तो बता देई बेटा, थैले में सारो कीं है।" वह लोगों से सामान्य तरीक़े से बात करता रहा, जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। बीच-बीच में वह टाँगों को थोड़ा ऐसे हिलाता जैसे बेटा कुनमुनाया हो। वह बेटे को थपथपा कर कहता -सोयो रह बेटा, अबी टेसन कोनी आयो, आवैगो जद जगा द्यूँगा।"

गाड़ी जब ऐलनाबाद स्टेशन पर पहुँची, तब सुबह के साढ़े तीन बज रहे थे। सूरज निकलने में अभी बहुत देर थी। लोग उतर रहे थे, चढ़ रहे थे। जेठा राम ने कहा, "ले बेटा उठ जा, आपणो टेसन आ ग्यो।" उसने बेटे को कंधे से लगाया, एक हाथ में थैला उठाया और गाड़ी से उतरने लगा। गाड़ी में चढ़ता हुआ एक आदमी उससे टकराया तो उसने कहा, "भाई थोड़ो देख गे, छोरो बीमार है।" वह प्लेटफॉर्म पर उतरा, तब तक लगभग सभी सवारियाँ स्टेशन से बाहर जा चुकी थीं, कुछ ही लोग बचे रह गए थे। उसने बेटे को एक बेंच पर लिटाया, थैले को बेंच के पास रखा और बेटे की बग़ल में बैठ कर ज़ोर से रो पड़ा। कंठ में फँसी चीख़ कंठ से निकल प्लेटफॉर्म पर पूरी तरलता के साथ पसर गई। पत्थरों में फँसी कोई झील सारे पत्थरों को धकियाती हुई तेज़ी से बह निकली। वह अरड़ा रहा था, जैसे मरती हुई भैंस अरड़ाती है। रात उसके करुण रुदन से सिहर उठी। स्टेशन का स्टाफ़ और दो चार यात्री उसके इर्द-गिर्द आ खड़े हुए। माज़रा सबकी समझ में आ गया था और सब लोग एकदम ख़ामोश खड़े थे। रोते-रोते मामा की मृत्यु धुन का दृश्य फिर से उसके सामने हिलता हुआ आ खड़ा हुआ। उसे लगा, जैसे वही मृत्यु धुन उसके बेटे के मुँह से निकल रही है। वह सूखी घास सा काँपा और झट से उसने बेटे के मुँह से कंबल उतार दिया। देखा, बेटा आराम से सो रहा था, एकदम शांत। होठों से बाहर निकले दोनों दाँत अपेक्षाकृत छोटे लग रहे थे। उसने अपने भीतर एक तसल्ली सी महसूस की कि बेटा उस मर्मांतक पीड़ा से नहीं गुज़र रहा। बेटे के चेहरे पर व्याप्त शांति जैसे शाइस्तगी से उसके भीतर उतरने लगी। उसका रुदन थम गया, जैसे कि झील का सारा पानी ख़त्म हो गया हो।

जेठा राम को आश्चर्य हुआ कि वह अब रो नहीं रहा था, इस तरह शांत हो जाने पर उसे शर्मिंदगी भी महसूस हुई। उसने स्वयं को याद दिलाया - जेठा राम तुम्हारा इकलौता बेटा मर गया है और उसकी लाश तुम्हारे सामने पड़ी है। तुम्हें रोना चाहिए, इतनी ज़ोर से रोना चाहिए कि आसमान काँप जाए, ईश्वर की छाती फट जाए... पर उसका चित्त विरक्त था। उसके भीतर शांति थी- मुर्दा शांति, जिसमें कोई जुंबिश नहीं थी। उसने बेटे को एक बार चूमा, अच्छी तरह कंबल में लपेटा, अपने आसपास खड़े लोगों को देखा, उनकी तरफ़ हाथ जोड़े जैसे कि अपनी रोने की गुस्ताख़ी के कारण उन्हें हुई असुविधा के लिए क्षमा माँग रहा हो और अपने बेटे को गोद में उठाये स्टेशन से बाहर निकल आया।

000

कार्ड

पूजा गुप्ता

वृद्धावस्था और मोतियाबिंद से धुँधलाई आँखों में जब निराशा उतर आई तो झिलमिलाते आँसुओं ने दृष्टि को और भी धुँधला बना दिया। जब दृष्टि धुँधला गई तो मस्तिष्क सक्रिय हो गया, क्योंकि हृदय का पलड़ा हल्का हो गया। "क्यों करती हो इंतज़ार? कब तक करती रहोगी? क्या मिल जाएगा तुम्हें एक बार पोस्ट कार्ड आने से? व्यर्थ ही परेशान होती हो। इस बुढ़ापे में भी मोह-माया त्यागने को तैयार नहीं... क्यों? आख़िर क्यों?"

"कैसे त्याग दूँ मोह-माया?"

गिरिजा बुदबुदाई। "इसी मोह माया ने तो ज़िंदगी के सत्तर वर्षों को सुंदर बनाया और पल-पल ख़ुशियों में गुज़रा। हर दिन एक नई आशा नई ख़ुशी लेकर आता था। पल-पल बढ़ती बच्चों की शरारतों, लड़ाई-झगड़ों, प्यार-ग़ुस्से मनुहार आदि को संजोया है मैंने, भविष्य के सुंदर सपने बुने हैं। जब इतनी उम्र हँसी-ख़ुशी से बिताई है तो क्या कुछ वर्ष और नहीं बिता सकती।"

"नहीं बिता सकती..बच्चों के बिना मेरा मन नहीं लगता। उनकी एक-एक किलकारी, उनकी एक-एक आवाज़ मेरा पीछा करती रहती है... और मैं थक-हार कर उन आवाज़ों से मोहित हो इंतज़ार करने लगती हूँ, उनके कार्ड का, कभी बर्थडे, कभी एनिवर्सरी, कभी न्यू ईयर, तो कभी दीपावली की चिट्ठी।

एक ज़माना था जब दिल के गुबार को काले अक्षरों में अभिव्यक्त कर चाहने वालों को भेजा जाता था। हर शब्द जैसे साकार हो उठता था। भेजने वालों का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष खड़ा हो जाता और पाने वाला धन्य हो जाता। वह जब चाहता, जितनी बार चाहता, उतनी बार उसे सामने पाता और स्वयं उस चिट्ठी को बार-बार चूम कर स्पर्श के आनंद से भर उठता। कितना सुखद लगता था चिट्ठी का मिलना और चिट्ठी को भेजना भी। प्रत्येक पंक्ति भावनाओं से ओत-प्रोत मन को छू जाती। बिना खोले ही समझ जाते कि किसकी है, कहाँ से आई है और वह निर्जीव चिट्ठी साकार हो उठती।

जीवन की आधुनिक शैली ने छीन लिए यह एहसास। इस मशीनी युग में भावों की अभिव्यक्ति भी मशीनी हो गई है। हो भी क्यों ना? क्या संवेदनाओं के अभाव में भावनाएँ उथल-पुथल मचा सकती है? जब भावनाएँ नहीं तो अभिव्यक्ति किसकी हो? बस इसलिए बचा लिया इस नए विकल्प ने यानी 'कार्ड' ने। यहाँ सब कुछ मिलता है, हर कुछ बिकता है। सुंदर शब्दों की सुंदर अभिव्यक्ति भी, प्रस्तुतीकरण भी। बस आवश्यकता है पैसों की यानी 'मनी' की। इस 'मनी' ने सबको 'मिनी' बना दिया है। रिश्तों को, एहसासों को, कर्त्तव्यों को, नज़दीकियों, अपनेपन को। अब हर संबंध, हर रिश्ता उतना ही है, जितना उसमें 'मनी' है।

कहावत है- 'कुछ नहीं से कुछ भला' और इसी तर्ज पर चिट्ठियों की जगह कार्डों ने ले ली। प्रारंभ में गिरिजा को बड़ी चिढ़ होती थी इन कार्डों से, "अरे भाई, ख़ुद क्यों नहीं कहते 'जन्मदिन की हार्दिक बधाई।' मंगलकामनाएँ देनी है या धन्यवाद देना है या क्षमा माँगनी है तो ख़ुद कहो, ताकि उस एहसास के साथ सामने वाला भी रोमाँचित हो उठे। उसका रोयाँ-रोयाँ कम्पित हो उठे। यह क्या कि कार्ड पकड़ाया और उसी मशीनी तरीके से बधाई दे दिया।"

"चलिए शिष्टाचार के नाते ही सही यह परंपराएँ चल तो रही है। यही क्या कम है इस आपाधापी की ज़िंदगी में।" याद आता है वह दिन जब बच्चों ने जन्मदिन पर अलग-अलग कार्ड दिए और माँ को बधाई दी तो न चाहते हुए भी गिरिजा ने बच्चों से कह ही दिया, "इस कार्ड पर

पूजा गुप्ता
भगवान दास की गली, आदर्श स्कूल के सामने, गणेश गंज, मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश)-231001
मोबाइल- 7007224126
ईमेल- guptaabhinandan57@gmail.com

फिज़ूल खर्च करने की क्या ज़रूरत थी? तुम्हारा प्यार ही बहुत है।" बच्चे कुछ उदास से हो गए। एक दिन तो हद ही हो गई। किसी बात पर दोनों बच्चों में झगड़ा हो रहा था। गिरिजा ने भी बीच-बचाव किया। दोनों को डाँटा तो लड़ाई का रुख ऐसा बदला कि वह लड़ाई आपस की न होकर माँ-बेटों की हो गई। अंत में माँ नाराज़ और बच्चे परेशान। बच्चों ने माफी माँगने का कार्ड लाकर माँ को दिया और चुपचाप खड़े हो गए।

माँ का पारा चढ़ गया, नालायकों, मुँह से नहीं बोल सकते? ऐसे माफी माँगी जाती है माफी... फिर कर आए पैसे खर्च!"

इतना कहना था कि हँसी छूट गई बच्चों की, माँ यह तो दुकानदार ने मुफ़्त दिया है।"

"क्यों?" गिरिजा ने आश्चर्य से पूछा।

"माफी का है न। यह मुफ़्त ही मिलता है।"

"अच्छा! कितना अच्छा है दुकानदार।"

बच्चे मुस्कुरा रहे थे की माँ को बुद्धू बना दिया और माँ बुद्धू बनकर ख़ुश थी कि बच्चे उसका कितना ख़याल रखते हैं। आज भी वह कार्ड अमानत की तरह सँभाल कर रखा हुआ है।

अँधेरा बढ़ने लगा तो गिरिजा के पति ने उनसे कहा,

"कब तक करोगी इंतज़ार? अब पोस्टमैन नहीं आएगा।"

"किसने कहा कि मैं इंतज़ार कर रही हूँ..? मैं तो ऐसे ही बाहर बैठी हूँ।"

"झूठ मत बोला करो इस उम्र में। मैं सब समझता हूँ। मुझसे कुछ मत छुपाया करो। हम एक-दूसरे को इतना समझ गए हैं कि तुम कब क्या चाहती हो, क्या छुपा रही हो, कब सच बोलती हो, कब झूठ। कब दिल से ख़ुश होती हो, कब बाहर से। कितना बता रही हो कितना छुपा रही हो। तुम्हारी हर बात से, हर चाहत से वाकिफ़ हूँ।"

"फिर पूछते क्यों हो?" रुआँसी हो कर गिरिजा ने कहा।

"अच्छा अब आगे से नहीं पूछूँगा। अब तो चलो।" सहारा देते हुए उन्होंने कहा।

"तुम भी हद करती हो। अभी कल ही तो तुमने टेलीफ़ोन पर बात की थी। अमेरिका क्या इतने पास है कि आज चिट्ठी लिखो और कल मिल जाए। तुम्हारा तो कभी दिल ही नहीं भरता।"

"अरे...बच्चों से बात करके...कभी किसी का दिल भरता है भला।"

"तुम्हारे दिल की ख़ातिर अपनी जेब खाली कर देता हूँ, इतना बिल बनवा देती हो टेलीफ़ोन का।"

"मैं क्या अकेली बात करती हूँ ? ख़ुद ही तो फ़ोन लगाते हो और नाम मेरा धरते हो।"

"अच्छा... अब तुम्हारा नाम भी न लूँगा... अब चलो भी।" उदास थकी हारी सी गिरिजा उठी। अंदर जाने के लिए कदम बढ़ाए, पर मुड़कर एक बार फिर बाहर नज़र दौड़ाई।"

"देखो तो... कोई आ रहा है?"

"कोई होगा?"

"नाथूराम ही लगता है।"

"तुम क्या इतनी दूर से पहचान सकती हो?"

"हाँ... वह इस प्रकार से ही साइकिल चलाता है।"

"अब तो तुम्हें साइकिल चलाने का ढंग भी दिखाई देने लगा है। अब डॉक्टर के पास जाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।"

"मज़ाक मत किया करो।"

"तुम्हीं ने तो कहा था मोतियाबिंद की वजह से दिखाई नहीं देता।"

"ओह!" गेट खुलने की आवाज़ आई तो दोनों ने मुड़ कर देखा, "माँजी..." नाथूराम ने पुकारा।

"नाथूराम... देखो मैं कहती थी नाथूराम होगा।"

"मैं ही हूँ... मैंने सोचा आप इंतज़ार कर रही होगी इसलिए इस समय ही चला आया।"

आता भी क्यों ना। उसे हर कार्ड के साथ बख़्शीश जो मिलती थी और मुँह मीठा भी होता था।

"क्या लाया है?" उतावली सी गिरिजा आगे बढ़ी।

"कार्ड!"

कार्ड को गिरिजा ने छाती से लगा लिया जैसे वह कार्ड नहीं, उसका बेटा ही हो।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 11 मार्च 2024

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

नहीं उतारूँगी पायड़ी

रजनी शर्मा बस्तरिया

पाँच-पाँच पैसे के सिक्कों को जोड़कर उसने "माड़िन" को दिखाया। माड़िन की आँखें ख़ुशी से चमक उठी। पलकें पंड़की चिरई की आँखों सी झपकने लगी। मोंगरी मछरी सी चिकनी देह, काँधे पर गठान। इसी गठान ने साड़ी की उँगली पकड़ कर पूरे बस्तरिया अनावृत सौंदर्य का भार उठा रखा था। टखने, साड़ी, बाँह, नाक ठुड्डी पर गोदने के टप्पे। मीलों नंगे पाँव चलने के कारण कभी न छूटे ऐसे मुरूम का आलता। और इनमें गिलेट को गला कर बनाई गई नाव आकार की "पायड़ी"।

खिंडिक जोय तो बार! (आग तेज़ करो!)

हव। (हाँ)

सरई पाना सूपा से माडिन जोय (आग) तेज़ करने लगी। गिलेट पिघलने से पहले लाल सुर्ख पलाश के फूलों सरीखा लपलप करता। जैसे चूल्हे में आग उग आया हो। और आँच से माडिन का चेहरा ललछौंवा हो गया। "धनोरा" कनखियों से उसके उतावलेपन को नाप रहा था। पर स्वाँग रच रहा था सूत से पैरों के नाप लेने का! इन्हीं पैरों के गोदने के टप्पे पर ही तो वह रीझ गया था। सूत से नाप लेकर उसने साँचा बनाया। पिघलता गिलेट गोरस की धारा सी साँचे के पोर-पोर में समाने लगी। अहा -! धरती जैसे गट-गट बारिश का पानी पी रही हो। आख़िर बस्तर बायले (महिला) माड़ि के पाँव में पायड़ी को सजाना है ! कोई हँसी-ठठ्ठा तो नहीं है ना?

माड़िन ने आज हुलकते हुए भात राँधा था। चिंगड़ी मछली की साग। कोठार पर ढ़ेकी (धान कूट यंत्र) पर धान कूटती जा रही थी। कुड़िया के छज्जे के पटाव में गमछा अरछा कर। उसके पाँव लकड़ी के हत्थे पर पड़ते ही उधर ढ़ेकी का मुँह धान के साथ पटर-पटर करने लगता। गूँज उठता था "राग-छरना", धान कूटना। पायड़ी बनाने के साँचे ठंडे हुए नहीं कि माटी की हाँडी में धनोरा ने उसे ठंडा करने डाल दिया।

आले भात देस! (खाना दो!)

पत्तल पर भात और चिंगड़ी मछरी परोस कर माड़िन पुन: चली ढ़ेकी पर।

ढ़क-ढ़क ....चाँवल नाचने लगे झक-झक.... बीच-बीच में वह कनखियों से धनोरा को देखते जा रही थी।

अठ्ठारह की थी जब ब्याह हुआ था। और वह मेटगुड़ा में आकर बसी थी। गढ़वा शिल्प (बेल मेटल) का शिल्पी धनोरा। झिटकी-मिटकी (बस्तर के अमर प्रेमी युगल) बनाता था। जाने क्या-क्या मूर्तियाँ गढ़ता था ? उसको मूर्ति गढ़ते देख माड़िन ख़ुद को झिटकी समझने लगती। भात ख़त्म होते ही वह बोल पड़ी।

आले हिटाऊन देस! (निकाल भी दो अब!)

धनोरा मन ही मन मुस्कुराया इतने बरस का साथ है। क्या वह नहीं जानता कि माड़िन क्यूँ

रजनी शर्मा बस्तरिया
116 सोनियाकुंज, देशबंधु प्रेस के पास
रायपुर (छग)
मोबाइल- 9301836811
ईमेल- rajnibastariya.153@gmail.com

अधीर हो रही है? पानी से मानों सफेद नाव निकली। अहा!!

पायड़ी।

इसकी देह पर बारिक छेद साक्षात झरोखे सरीखे। जिनसे श्रमतपा पाँव बाहर की दुनिया देखते होंगे। बस्तर की धूल-माटी चखते होंगें। माड़िन को कितने दिनों से प्रतीक्षा थी कि वह भी जगार में अपने मुनुख (मरद) की बनाई पायड़ी पहन कर जाए।

सोनारिन बार-बार हाथ मटका-मटका कर अपनी ककनी मड़ई में मंगली को दिखा रही थी।

कितरो चो आसे?

कितने का है?

माड़िन के पूछने बस की देर थी कि सोनारिन बखान करने लगी।

पिला घेनला। (बेटे ने खरीदा)।

बात कितने में खरीदा? की हो रही थी और वह जवाब कौन खरीदा ?का दे रही थी। मृतवत्सा (बाँझ) माड़िन अच्छे से समझ रही थी। बिहाव के इतने बरिस हो गए। आँगा देव के गुड़ी में कुकरी, सल्फी, महुआ के फूल चढ़ाये। पर गोद हरी नहीं हुई। मरही सागौन भी हरिया गई। गाछ पर भी मरकत हरापन छा गया। पर उसकी कोख ! और तो और पास के जंगलों की भी मसें भीग गई थीं। गबरू हो गया। पर वह?

सोनारपाल की मड़ई सज चुकी थी। मड़ई में शहरिया गहनों की झमा-झम आवक। सोनारिन-लकलक- दकदक। इधर माड़िन और धनोरा भी अपने जाख (सामान) के साथ आसन जमा चुके थे।

माड़िन का मन आज हुलक रहा था। मन सरई पाना (सरगी के पत्तों) सा डोल रहा था। तालाब पर पानी भरना रोज़ का काम। घुटनों के ऊपर बरकी (साड़ी) कर पाँव पानी की थाल पर। मानों तालाब भी मरा जाता हो उसके पैरों की छाँव के लिए। क्या पता इन पायड़ी वाले पाँवों की छाया एक लहर से होते दूसरे लहर तक पहुँचाने में क्या आनंद आता था? पानी की पहचान पनिहारिनों से और पनिहारिनों की पायड़ियों से। पानी भरने के बाद घंटो पानी से संवाद। ये पानी संवदिया ही तो थे। जो ऊबक-डूबक पाँवों की पायड़ियों की छवि एक गाँव से दूसरे गाँव बिना नागा पहुँचाते आ रहे हैं। इनके संवाद पानी में तैरते डोंगे की कुंडी भी खटखटाते थे। तो कभी जाल के बीच छलाँग कर भाग जाते! तो कभी महुए के फूलों से चुहल करते। दोनों में दीपक, नमन, अर्ध्य में पगे अपने पूर्वजों को प्रणाम भी पहुँचाते थे।

सच में यह देह भी एक रूख (वृक्ष) ही है। घाट पर बैठी माड़िन के पाँव जड़ होकर नदी का सत्व अवशोषित करते थे। तभी तो यह देह भरती है, और भाव झरते हैं। शांत नदी में ऊपर सूरज की आँच वाली कंबल, कभी गुनगुनी चादर। बीच में भुंई (धरती) अपनी दोहरी ज़िम्मेदारी निभाती। सूरज की आँच और पानी की शीत दोनों के बीच संतुलन सिर्फ और सिर्फ वसुधा ही कर सकती है। सफ्फाक़ पानी में माड़िन के पाँव। पानी में पड़ती धूप माड़िन के चेहरे से ठिठोली करती। माड़िन निश्चिंत। जब यह पूरा जंगल, प्रकृति अपनी शै के फनकार, उस्ताद हैं। किसी का दखल किसी दूसरे के फ़न पर कभी भी नही रहा। सभी अपनी-अपनी शै के मालिक अपनी हुनर के ख़ुद क़द्रदान। तो कैसी आशंका?

होंठों पर मचलते बस्तरिया गीत गाते उसके पावों की पनडुब्बी पानी के भीतर डगर-मगर, ऊबक-डुबक। पाँवों की ऐड़ियों के ऊपर मोरपंखिया गोदने के टप्पे.... ये लहरें भी तो नदियों के पाँव ही होती होंगी न? जिससे ये सदियों तक को नाप लेती हैं। पर्वत, सागर, गढ़ और माड़। ये बादलों की कुंडी भी खटखटा कर नन्हें बच्चों सी भाग आती हैं। जैसे शरारती बच्चे घर की घंटी बजाकर भाग जाए।

बिच्छू- बाना, माड़ी- बाना के गोदने बचपन में ही गुदवा दिया गया था। पर उनमें रंग तो कैशोर्य आने पर ही भरता है। पाँव की ऐड़ी में गुदवाया गया साँप-बाना इसकी मारक तासीर के कारण ही पड़ा होगा। मोरपंखिया गोदने के ऊपर दूधिया पायड़ी। मिट्टी में मीलों चलने के कारण एड़ियाँ चिकनी। आख़िर इस देह की कलई तो हवा, धूप, पानी मिट्टी ही किया करती होंगीं। तभी तो देहातीपन, निश्छलता, अल्हड़ता की मूल परत पर और कोई रंग अपना रंग नहीं जमा सकता! तालाब पर पैर डुबो कर बैठी ही थी। कि अचानक छपाक की आवाज़ आई। ध्यान भंग हुआ।

लेका (लड़का) पानी के भीतर से रेत वाली माटी निकाल रहा था। माटी से सनी काया और पानी में भीगे पाँवों का आपस में न चाहते हुए भी सामना हो ही गया।

खिंड़िक गुच्च लेकी! (ज़रा हट लड़की!)

काय काजे? (क्यूं)

यहाँ की मिट्टी अच्छी है।

क्या करेगा?

साँचा बनाऊँगा। ढोकरा शिल्प के लिए।

हाँय-

क्या-क्या बनाता है तू?

सब कुछ!

धनोरा की पुष्ट भुजाएँ। माटी से सनी शिल्पी ख़ुद अपने ही साँचों में जड़ा हुआ। माड़िन की उत्सुकता बढ़ने लगी।

क्या-क्या बनाता है जल्दी बता ना!

बोला न।

सब।

धानमाला, चिपनी माला, खिपड़ी माला, नाग मोहरी, खिलवा, बाँहटी, पायड़ी, तोड़ा। इतना सुनना था कि माड़िन का मन हुलकने लगा। वह भी झुकी और रेतीली माटी निकालने में मदद करने लगी।

नदी कान धरे सुन रही थी।

लहरें चुप्प..

जाने कौन सी कहानियाँ पानी में लिखी जाती हैं? कौन सा नाम? कौन सी पाती? जिसकी मियाद क्या पानी के बुलबालों की तरह होगी? या फिर नदी की तरह शाश्वत।

माड़िन के मन में छप सी गई धनोरा की छवि। मोंगरी मछरी सी फड़कती बाहें। त्वचा साँवल। पर इतनी चिकनी कि पानी उस पर ठहर ही नहीं रहा। देव पात्र में तुलसी दल मिश्रित छलकता पानी। कीचड़ से सनी उसकी देह। उधर जाल अरझा था कि धनोरा का मन? आँगा देव ही जाने जाने ! नियति कौन सा शिल्प रचने जा रही थी। गढ़वा शिल्पी धनोरा और माड़िन के मन के साँचों पर? उसकी देह पर गोदने के टप्पे के अलावा

कोई शृंगार नहीं था। धनोरा की शिल्पी नज़र माड़िन के पाँवों पर पड़ चुकी थी। झुके-झुके मन ही मन उसने पाँवों का नाप ले लिया था। शिल्पकार वह भी गढ़वा? सुपात्र मिलने पर ही सही साँचे में ढला गहना लकलक-दकदक करता है। धनोरा ने मन ही मन सोच लिया था कि इन पाँवों के लिए वह पायड़ी ज़रूर बनाएगा। नदी की थाल पर पतुरिया माड़िन के पाँव। अहा!! इन पाँवों की ओट से जब गोदने के टप्पे झाँकेंगे तब कितना फबेगा? उसका मन महुआ-महुआ होने लगा।

उसने कहा धर लेका! (पकड़ लड़के!)

माटी के लोदों के अदान-प्रदान में झुकी दो पीठों पर सूरज का तवा बीच में श्रमतपा काया, नीचे शीतल पानी। यही तो सालद्वीप का शृंगार था।

तू क्या करेगी माटी का?

बर्तन में पोता लगाऊँगी। (लीपूँगी)

चूल्हे में माटी के लेप लगे बरतन कम रचते हैं। उसके हाथों में आए माटी में उसे कुछ चीज़ दिखी। टटोला... मन पहले ही धड़-धड़ करने लगा। पीतल की मुंदरी! उसने सवालिया नज़र उठाई ही थी कि उत्तर तुरही बाजा-सा गूँजा।

अब यह तेरा!

इतना कहकर वह आगे बढ़ गया।

रात भर माटी का दिया बार माड़िन करवट बदलती रही। सोन मछरिया सी मुंदरी उसकी उँगली में दमकती रही। अगले दिन पाट जात्रा में सोनारिन की गिद्ध नज़र उसकी मुंदरी पर पड़ ही गई!

कोन दिला? (किसने दिया?)

माड़िन चुप रही। ओंठों को मींच लिया।

पाटजात्रा में दो दल नृत्य के लिए आ जुटे थे। एक दल लेकियों का दूसरा दल लेका (लड़कों) का। सोनारिन के शब्दों के घातक बाणों से तीखे गीत माड़िन के कानों तक आ पहुँचे थे।

नाक चो फुल्ली लेकी कोन लेका दिल्लो? (नाक की लौंग किस लड़के ने दी?) माड़िन दल की मंगली ने जवाब दिया।

माड़पारा जाऊन रेलो माड़िया लेका दिल्लो। (माड़िया लड़के ने दिया है।)

अब दल के दूसरे सदस्य की बारी थी। हाथ का कंगन किसने दिया?

जवाबी गीत। (सोनारपाल के लड़के ने दिया)

एक बार लेकियों का दल झुकता तो दूसरी ओर लेकों का। अचानक उस दल में वही माटी से सनी पहचानी भुजाओं वाला लेका धनोरा भी नर्तक दल में शामिल हो गया। माड़िन के मन में बोड़ा फूटला। (मन ख़ुशी से झूम उठा।) महिला दल गीतों से प्रश्न पूछ रहा था। पर सोनारिन की डाह-?

उसने दूसरे के प्रश्न पूछने की पारी ही झपट ली।

उसने पूछना शुरू किया चरम ईर्ष्या से।

हाथ चो मुंदरी लेकी कोन लेका दिल्लो? (अँगूठी किसने दी?) सोनारिन जानती थी। यह भरी भीड़ में माड़िन को अपमानित करने का सही समय है। वह तो यथा नाम तथा गुण (सोनारिन) सरीखी गहनों से लदी रहती थी। तब भी माड़िन की शृंगार विहीन काया के आगे वह फीकी पड़ जाती थी। धनोरा ने कभी भी उसकी मिन्नतों के बावजूद उसके लिए गहने नहीं गढ़े। माड़िन के आते ही पाटजात्रा में सन्नाटा छा जाता था। और हो भी क्यूँ न? बस्तर का देहाती, लापरवाह, निश्छल सौंदर्य सालद्वीप की रौनक जो है। आतुर होकर सोनारिन गीत के बोल दोहराने लगी।

कोन लेका दिल्लो? (किस लड़के ने दिया?)

माड़िन नृत्य करते पसीने से नहा गई। मन के भावों का भी इतना विद्रूप प्रदर्शन होता है क्या? उसका चेहरा पलाश सा लाल, आँखें अपमान की आशंका से पनीली। मन सरई पाना (पत्ते) सा डोल रहा था। धड़कन महुआ के फूल सा गदबद...गदबद....

क्यूँ बताए?

क्या करे?

अचानक सामने लेका दल के नर्तक धनोरा से आँखें मिलीं। भरोसे वाली आँखों में आजीवन साथ देने का भाव तैरने लगा। आत्मविश्वास की पलकें स्थिर हो गईं। स्पष्ट संदेश था! आँखों का आँखों के लिए।

बोल दे!

बता दे!

बस यही संवादहीन संप्रेषण धनोरा और माड़िन के मन के पुल पर चलकर पहुँचे।

सोनारिन चीखी!

किसने दिया?

कोन लेका दिल्लो?

आँखों की चमक लिए उत्तर में गीत गूँजा...

पनारा पारा जाऊन रेलो पनारा लेका दिल्लो! (पनारा लड़के ने दिया?)

सन्नाटा सा पसर गया। सोनारिन को धचका लगा। यह निपट देहाती, बस्तरिया माड़िन! उसमें इतने साहस कभी आ ही नही सकता कि वह भरे समाज में लड़के का नाम बता दे। क्या वह नहीं समझती कि ककवा (कंघा), मुंदरी (अँगूठी), रुमाल देने का अर्थ प्रणय निवेदन है। और ले-लेने का अर्थ सहमति! पर फुटु-फूट चुका था! घोषणा हो गई। यह नेह-राग, द्वेष राग पर भारी पड़ा। और कांडाबारा (विवाह) का भी शंखनाद था। माड़िन और धनोरा का। सोनारिन चरकली। (चिढ़ गई)। कहाँ उसे अपने गहनों से लदी काया पर इतना घमंड था कि धनोरा उसका ही होगा! वह जुरलो तोरई नार सी भुंई (ज़मीन) खाल्है बैठ गई।

तीर कमान से निकल चुका था। आदिवासी समाज में लेकी की इच्छा सर्वोपरि होती है।

रात ख़त्म ...बात ख़त्म!

अगले दो दिन बाद मड़ई में अपनी जाख (सामान के साथ) सभी पहुँचे थे। सोनारपाल की मड़ई सज चुकी थी। मड़ई में शहरिया गहनों की झमाझम आवक। इधर माड़िन-धनोरा ने भी अपनी दुकान सजा ली थी। मंगली भी पास में धूप, जंगली हल्दी का गप्पा (टोकनी) लिए बैठी थी।

दुकान क्या गमछे को बिछा कर चारों ओर पत्थरों की आँट (घेरा)। इस पर जुगजुगा रहे थे। खिपड़ी माला, धान माला चिपनी माला, बाँहटी, नागमोहरी, सुता, खिलवां, तोड़ा, करनफूल, कीलिप, बुल्ली, ककनी, मुंदरी।

सोनारिन सल्फी बाँगा (मद्ध की गंज) लेकर बैठी थी। माँदर बाजा, तुरही बजने

लगा। कुकड़ा लड़ाई (मुर्गा लड़ाई) भी आरंभ हो चुका था। सोनारिन की गंज पर गंज सल्फी बिकती जा रही थी।

माड़िन धनोरा के गढ़वा शिल्प के साथ बैठी थी। पर धनोरा ग़ायब! कहाँ गया होगा? उसको अंदाज़ा हो गया था। अपने दोस्तों के साथ सल्फी चखने गया होगा! जाने सोनारिन ने सल्फी में क्या मिलाया था? जो भी चख रहा था बिना चाखना के झूम रहा था, लहरा रहा था। वरना सल्फी का ऐसा लंपटिया तेवर कभी भी नहीं रहा सालद्वीप में। आयतू ने तो सीने में हाथ रख कर मसलते हुए कहा भी था।

रग-रगा लागे से। काय नुक्को। (जलन हो रही है।)

असली है।

धनोरा के बनाये शिल्प, सल्फी रुख, झिटकी-मिटकी, बैला, हाथी, मछरी, सूपा जाने क्या-क्या ? जादू था उसके हाथों में। दोनों की दुनिया अब एक-दूसरे के ईर्द-गिर्द ही घूमती थी। साँझ हो गई। धनोरा ने ख़बर भिजवाया कि वह वापस गाँव चली जाए मड़ई के बाद। वह ज़रा थेब (रुक) कर बाद में आएगा! गप्पा में सारे शिल्पों को गमछे, सरईपाना से ढंक कर वह लौट पड़ी गाँव की ओर। पग उठाते ही पायड़ी का दोलन। आज ये पायड़ी गजगामिनी हो गए थे। कच्ची पगडंडियों पर पाँवों के ऊपर झरोखे वाली पायड़ी। ये झरोखे पायड़ी का नदी, पहाड़, राह धूल से संवाद करवा रहीं थी। संवदिया जो हैं!

खिंडिक थेब री! (ज़रा रुक!)

सोमारी ने पुकारा।

कहाँ परायसीस? (कहाँ भाग रही है?)

साँझ हो गई है। गाँव वापस जाना होगा जल्दी।

गाँव में घर पहुँच कर संझा दीपक जलाकर, पटाव में पैसों को मोड़कर खोंचा। पैरों में पानी उड़ेला। पायड़ी की बुड़बुड़ होने लगी। आख़िर उसको भी तो दुलारना, साफ करना था। उसके मुँह में भी माटी भर गया था। पैरों को पोता (बोरे) में रंमजा (रगड़ा)। डेहरी पर बैठकर अपनी बरकी (साड़ी) के आँचल से बड़ी नरमाई से पायड़ी को पोछने लगी। बिल्कुल वैसे ही जैसे लाहुन-लाहुन पाना, नरम-नरम पत्तियों का मुँह हवा पोंछ जाती है। रात हुई धनोरा देर रात को लड़खड़ाते आया। उसने कभी इतनी ज़्यादा नहीं पी थी। न ही उसके ऐसे लच्छन रहे थे। पर यह क्या?

वह आते ही गिर पड़ा।

काय होली? (क्या हुआ?)

कलेजा रग- रगाये से ! (कलेजा जल रहा है!)

काय काजे? (क्यूँ ?)

कोन जाने?

कोन लगे खादलीस? (कहाँ पर, किसके पास पिया?)

सोनारिन लगे। (सोनारिन से)

जाने सोनारिन पिछले कई दिनों से गाँव के बाहर सल्फी बेचने जाया करती थी। यूरिया के पैकेट एक बार उसने उसके गप्पा में देखा भी था।

माड़िन चीख पड़ी!

हुन मिरायला! (उसने मिलाया है यूरिया!)

धनोरा की आँखे ऊबल रही थीं। कनपटी की नस सन्न- सन्न। माड़िन की आँखें अनहोनी आशंका से कातर हो गईं। आँखें भर गईं। पानी झरने लगा। वह उठ खड़ी हुई कि किसी को तो मदद के लिए बुला लाये। पर मूर्छित होते धनोरा की उँगलियाँ उसकी पायड़ी पे अरझ गईं।

उसकी आँखें कुछ बोल रही थीं। अंतिम समय जी भर कर निहार लेना चाह रहा था। जाने क्या पश्चाताप करना चाह रहा था। सारे भाव उसकी आँखों के कोरों से बहने लगे।

आख़िरी शब्द....

पायड़ी नी हिटाईबीस! (पायड़ी कभी भी नहीं उतारना!)

गर्दन एक ओर लुढ़क गई।

आया गो....

माँ रे...विलाप, आर्तनाद सुनकर पड़रू रंभाने लगे। गेले की गाछ थरथराने लगी। तोरई की नार अकबकाने लगी। कुकरी गदबदाने लगे। सब हैरान। उसकी आया (माँ) क्यूँ रो रही हैं? भले ही वह इस गाँव, सोनारिन की नज़रों में मृतवत्सा (बाँझ) थी। पर उन सबको तो माड़िन ने ही पाला था। औलाद की तरह।

पूरा घर भाँय-भाँय। लोग जुट रहे थे। सिरहा बोला।

बकरा-भात खिलाउके पड़े दे! (बकरा-भात का भोज देना होगा)

अकाले होला। (अकाल मृत्यु हुई है।)

माड़िन अकेली जान। कहाँ से जुटेगा पैसा? गढ़वा चिन्हों को बेचने में समय लगेगा। ओसार में बस दस काठा चाऊँर है और छत के पटाव में सुक्सी (सूखी मछलियों) की पोटली। अर्थी के चारों ओर सियान। दोनों में मंद (शराब) परोसा जा रहा था। सल्फी की कुछ बूँदें मृत शरीर पर रितोई गई। महुआ के फूल अर्पित करते समय माड़िन का आर्तनाद। गागना, बिलखना। गिद्ध सी सोनारिन आस-पास मँडरा रही थी। कुटिल मुस्कान, तिर्यक स्मित को दबाते हुए सोनारिन का प्रलाप।

आया गो। (माँ रे!)

कसन होला? (कैसे हुआ?)

अब माड़िन की सब्र टूट चुका था। वह चीखी।

तू चो काजे होला! (तेरे कारण हुआ।)

सोनारिन ढोंढ़िया साँप सी पलटी।

काय बोललीस ? (क्या बोली?)

हव, हाँ तूने ही यूरिया मिलाया था न सल्फी में।

सोनारिन ने ककनी वाले हाथ मटका-मटका कर तेज़ आवाज़ में गोहार पारना, प्रलाप करना शुरू कर दिया।

हुन वो मोचो माई असन रला। (वह तो मेरे भाई जैसा था।)

माड़िन दु:ख से बौरा गई है! सोनारिन बोली। आरोप से ध्यान हटाने का कुत्सित प्रयास करते बोली।

अरे जल्दी उठाओ अर्थी!

इतने में भी उसका जी नहीं भरा तो वह बोली।

राड़ी बायले के धरा री। (विधवा को सँभालो भई!)

माड़िन बेसुध हुई जा रही थी। आँखें मूँदी जा रही थीं। अर्द्धमूर्छित अवस्था में वह बार-बार बुदबुदाये जा रही थी कि सोनारिन ने ही धनोरा को जहरीली शराब पिलाई। एक जोड़ी हाथ उसके कानों से खिलवां निकालने लगे। उसकी गुहार से किसी के कानों में जूँ तक नहीं

रेंगी। गले का सुतवा खींचा जाने लगा। किसी ने उसके गले से निकली फ़रियाद नहीं सुनी।

कर्णफूल नोंचा गया।

उसकी अरजी किसी के कानों तक नहीं पहुँची। ककनी (कंगन) निकाले गए।

सोनारिन की करतूत कोई सुनने को तैयार नहीं। सोनारिन की तिर्यक स्मित। उसकी गिद्ध नज़र अब पाँवों की पायड़ी पर।

आले पायड़ी के बले हिटाहा! (पायड़ी निकालो!)

अर्द्धबेहोश माड़िन चीख पड़ी

नहीं... छूने नहीं दूँगी !

किसी को भी नहीं!

बही होलीस काय! (पगली हो गई है क्या?)

राड़ी बायले केब के पायड़ी पिंधूआय? (विधवा औरत कभी पायल पहनती हैं क्या?)

माड़िन रोने लगी। हिचकियाँ बँध गईं.. उसको सोनारिन ने ही मारा है!

सोनारिन भेड़िये सी झपट कर आगे आई। और बरकी से अर्द्धमूर्छित माड़िन का मुँह ढाँप दिया!

सियान कहने लगे। रहने दो! साल भर बाद जब बकरा-भात, जात-मिलानी तक उसका दु:ख कम हो जाएगा। तो वह ख़ुद ही निकाल देगी। किसके लिए आख़िर पहनेगी वो? मंगदई ने हामी भरी।

पर सोनारिन कब हार मानने वाली।

असन ने कसन होये दे? (ऐसे में कैसे काम चलेगा?)

पायड़ी तो निकालनी ही होगी!!

ढोढ़िया साँप सी सोनारिन की बाँहें, भुजाएँ उसकी ओर बढ़ने लगी। मूँदी आँखों से भी माड़िन उसकी कुटिल मुस्कान को महसूस कर रही थी।

सोनारिन मद में चूर....

आख़िर अब तो तूझे पायड़ी विहीन करके ही मुझे सुख मिलेगा! जीवन भर भट्टी में मैं तपती रही और गढ़ी जाती रही ये माड़िन। अब ना तो वह शिल्पी रहा तो फिर कैसा शिल्प? अब तो वह जीता-जागता साँचा तोड़ कर ही रहेगी। तोड़ ही दूँगी इसे!

उसके हाथ आगे बढ़े ही थे कि ज़ोरदार प्रहार उन्हीं पायड़ी वाले पैरों से उसके ऊपर हुआ।

घुच्च.... हट.... दूर हट..... माड़िन का लकलकाता चेहरा, आँसुओं से गीला। बाकटा खोसा (जूड़ा) खुल चुका था। साड़ी का आँचल ज़मीन में लोट रहा था।

थेब...!

रुक!!

तूके आँगा देव चो किरिया (कसम)।

सनसनाती सोनारिन कहाँ रुकने वाली?

वह फिर आगे बढ़ी। पस्त हौसलों और ध्वस्त मन ने एक पाँव से दूसरे पाँव को सहारा दिया। दोनों ने पाँवज़ोरी की। हाथों के सहारे पकड़ मज़बूत हुई। यह पायड़ी आज माड़िन की देह से चिपक गई थी। उसने बिफरते हुए सोनारिन को धक्का दे ही दिया।

वह चीखी।

हुन चो नेसानी नी हिटाऊँ आँय! (उसकी निशानी नहीं उतारूँगी!)

अरे...राड़ी बायले! (अरे विधवा औरत!)

पर माड़िन की आँखों में आज भय कहाँ ? वह तो धनोरा ने नेह अंजोर में बुकबुका रही थी।

सोनारिन ने आख़िरी दाँव फेंका। राड़ी तुचो ना तो ईचका ना तो पिचका? (विधवा औरत न तो तेरे बाल ना ही बच्चे हैं?)

अब मंगली को ग़ुस्सा आया। उसने सोनारिन को खींचा। सियान बोले। रहने भी दो।

साल भर बाद निकाल देगी ख़ुद। सोनारिन हाँफने लगी। कपट की परत उधड़ गई। आख़िर उसके ईर्ष्या वाले कलेजे में थोड़ी ठंडक तो पहुँच गई थी। जो उसकी देह से किश्तों में खिलवां, सूता, नागमोहरी, चिपनी माला सब उतरवा ही लिया था। पर ये पायड़ी...!

साल पर साल बीते। पर आज भी माड़िन पायड़ी वाले पाँवों से बस्तर के माड़, पहाड़, जंगल लाँघती है। अपनी ही शर्तों पर। धनोरा के शिल्पों की टोकनी के साथ आपको मड़ई, मेले में दिख ही जाएगी!

देखिएगा कभी! पायड़ी वाले पाँव....

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

सीढ़ियाँ

विजय कुमार तिवारी

पहले से लोग सुनते आए हैं कि उस गाँव में, उस जवार में फलाना दबंग व्यक्ति है, पूरे जवार में उसकी तूती बोलती है, वह जो चाहता है, वही करता है और सभी लोग उसके आतंक में जीते हैं।

हमारे देश में सिनेमा के रुपहले पर्दे पर ऐसे ही दृश्य दिखाए जाते रहे हैं और मान लिया गया है कि हमारे समाज का यही सच है। अनेक जातियों को इसी आवरण में रखकर महिमा-मंडित किया जाता रहा है और एक को दूसरी के सामने खड़ा कर दिया जाता है।

इतना मान लेना सम्भव है कि जिसके पास खेत-खलिहान है, खेती-बारी है उनकी आर्थिक स्थिति थोड़ी बेहतर रहती होगी उन सबके बजाए जो मज़दूरी करते होंगे, गाय-भैंसें पालकर जीविका चलाते होंगे। आर्थिक आधार पर शोषण और अत्याचार की भूमिका देखी या समझी जा सकती है।

रामदहिन भाई का कोई सौभाग्य जागा और वे सेना में भरती हो गए। उन्होंने देश की आबो-हवा को देखा, परखा और जल्दी ही गाँव के उत्तरी छोर पर अपना पक्का मकान बनवा लिया। देश की राजनीति ने भी कुछ ऐसी करवट ली कि उनका घर किसी राज-दरबार की तरह सज गया। उनकी पहुँच मुखिया, प्रधान, विधायक सहित सांसद तक हो गई। उन्होंने अनेक चेले-चपाटी पाल लिए, सामाजिकता का चोंगा ओढ़ लिया और देखते-देखते पूरे जवार के प्रतिष्ठित व्यक्ति बन बैठे। लोग हाथ जोड़ते, प्रणाम करते और उनका आशीर्वाद लेते। रामदहिन भाई कुछ दिनों तक रामदहिन बाबू के रूप में पूजे गए और अब आरडी बाबू के नाम से उनकी शोहरत है। राजनीतिक पार्टियाँ राजधानी में ही नहीं, गाँव-गाँव में फैल गई हैं और बहुत लोग इनसे जुड़कर झंडे ढो रहे हैं। आरडी बाबू की ज़रूरत सबको है और वे भी सबसे जुड़े हुए हैं।

नन्हकी और रघुवा उन्हीं की छत्र-छाया में पल रहे हैं, उन्हीं के घर और खेतों में काम करते है और अपनी नियति पर आँसू बहाते हैं।

नन्हकी ने चाँचर हटाकर देखा और मन ही मन बुदबुदायी-"लगता है, आज भी मौसम ठीक नहीं होगा।" तीन दिनों से लगातार बरसात हो रही है। आकाश में चारों ओर काले बादल छाये हुए हैं। बीच में कहीं-कहीं भूरे और कपासी मेघ हैं जिससे आसमान की भयावहता और बढ़ गई है। अभी मौसम के खुलने के आसार बिल्कुल नहीं हैं।

"तो, आ जाओ ना भीतर," रघुवा ने अपनी फटी चादर तानते हुए कहा, "तुम बेकार ही परेशान हो रही हो, आ जाओ।"

नन्हकी भीतर चली आई और रघुवा के संग खाट पर बैठ गई, बोली, "घर में कुछ भी नहीं है कि आँच जोरूँ। कल बरसात के चलते काम पर भी नहीं गई।"

"चिन्ता मत करो रानी, आज हम व्रत कर लेंगे। इतनी नई-नवेली बहू को काम पर क्या रोज़-रोज़ जाना चाहिए?" रघुवा ने किसी गहरी निगाह से नन्हकी को देखा और मुस्करा कर पूछा, "क्या आरडी बाबू की बहू कभी बाहर निकलती है?"

"छोड़ो-छोड़ो, बड़ा आया नई-नवेली वाला! मैंने कब जाना कि नई-नवेली क्या होती है?

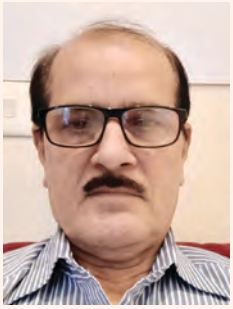

विजय कुमार तिवारी
टाटा अरियाना हाऊसिंग, टावर-4 फ्लैट-1002, पोस्ट-महालक्ष्मी विहार-751029
भुवनेश्वर, उड़ीसा
मोबाइल– 9102939190
ईमेल- vijsun.tiwari@gmail.com

जब से आई हूँ, काम करती हूँ, तब जाकर पेट भरता है और तन ढकता है।"

रघुवा को थोड़ा-थोड़ा ग़ुस्सा आने लगा। उसने कहा, "क्या मैं बैठा रहता हूँ? दिन भर मैं भी तो काम करता हूँ। पर, तेरे नखरे बढ़ते जा रहे हैं। आजकल तू ज़मीन पर नहीं चलती। लगता है, आसमान में उड़ रही है। इस तरह उड़ना अच्छा नहीं।"

नन्हकी प्यार से बोली, "हमारे रघु राजा, बुरा नहीं मानते। मैंने यह थोड़े ही कहा है कि मैं अकेले ही खटती हूँ। तुम भी साथ हो।"

रघुवा ने मुँह घुमा लिया और पुन: सोने का बहाना करने लगा। उसके दिल में जैसे कोई तूफ़ान उमड़ रहा था। नन्हकी सब समझती है। पर, क्या करे? वह जानती है कि उस पर उसी का हक है, चाहे जैसे रखे। "ग़रीबों की ख़ातिर भगवान का दिल में दया-माया नहीं है। नहीं तो क्या इस तरह पानी बरसता रहता? पलानी जगह-जगह से चूने लगी है। टाटी भी कमज़ोर हो गई है। कुत्ते-बिल्ली घुस आते हैं," उसने रघुवा की ओर देखकर कोई सूत्र जोड़ने की कोशिश की, पर वह नहीं मुड़ा। "बहुत नाराज़ हो?" उसने जैसे पुचकारा, "ज़रा मेरी ओर देख, मेरी लाचारी की ओर देख, झाँक मेरी आँखों में, झाँक..." और वह रोने लगी।

"अब रो मत नन्हकी, रोने से कुछ नहीं होगा।"

"क्यों नहीं रोऊँ? जब तू ही नहीं समझेगा तो और कौन समझेगा? क्या मैं तेरी पीड़ा नहीं समझती? क्या मैं ही चाहती हूँ? मैं तो भाग जाना चाहती हूँ, कहीं भी, ताकि उस राक्षस से बच सकूँ। पर, तू ही नहीं भागता। बाप-दादा का गाँव नहीं छोड़ना चाहता। क्या रखा है इस गाँव में?"

भाग जाना तो वह भी चाहता है। पर, क्या आसान काम है, यहाँ से भाग पाना? आरडी बाबू का हाथ बहुत लम्बा है। क्या उसने कोशिश नहीं की थी? आज भी आरडी बाबू का भयानक चेहरा याद आ जाता है और उनकी सब बातें भी- "रघुवा यह शादी तेरी मर्ज़ी से नहीं, मेरी मर्ज़ी से हुई है। मैंने करवाई है यह शादी और नन्हकी मेरे घर रहेगी। यदि कुछ भी गड़बड़ी हुई तो तेरी मौत समझो, भयानक मौत।"

रघुवा काँपने लगा।

"उठो-उठो, तुम तो काँपने लगे। लाख समझाती हूँ कि ज़्यादा मत सोचा करो। पर, तुम सुनते नहीं। उठो, लो मुँह धो लो," नन्हकी ने एक लोटा पानी खाट के पास रख दिया।

धीरे-धीरे रघुवा आश्वस्त हुआ और मुँह-हाथ धोने लगा।

"मन की पीड़ा आदमी को जीने नहीं देती और भीतर की आग मरने नहीं देती," उसने सोचा। "मैं कमज़ोर हूँ, तभी तो अत्याचार सहता हूँ। यदि शक्तिशाली होता तो क्या मेरे साथ ऐसा होता? क्या मेरी ओर देखने की हिम्मत किसी की पड़ती? मुझे अपने भीतर शक्ति पैदा करनी होगी। मुझे भी शक्तिशाली बनना होगा और गिन-गिन कर बदला लेना होगा।" यह सब सोचते-सोचते उसका चेहरा तमतमा आया।

"फिर सोचने लगे?" नन्हकी ने टोका। उसने रात की बासी रोटी लाकर सामने रख दी और बोली, "खा लो।" रघुवा रोटी खाने लगा और खाते-खाते बोला, "सब दुख हम ग़रीबों को ही है। आरडी बाबू को क्या कोई फ़र्क़ पड़ता होगा?"

"हमें जल्दी जाना चाहिए," नन्हकी ने कहा और चाँचर हटाकर तेज़ी से बाहर निकल गई। बरसात थोड़ी बंद हुई थी, पर, ज़मीन में चारों ओर, कीचड़, पानी भरा हुआ था। बचती-बचाती आगे बढ़ रही थी, फिर बूँदाबाँदी शुरू हो गई। लगभग भागते हुए उसने आरडी बाबू की ड्योढ़ी में कदम रखा, पर बच नहीं सकी, भीग ही गई।

"अब आ रही हो?" आरडी बाबू ने व्यंग्य से पूछा और खाट से उतर पड़े। बड़ी-बड़ी मूँछें, चौड़ा ललाट, गोरा और तगड़ा शरीर, वे यही कोई चालीस-बयालीस के होंगे।

वह मन ही मन जल-भुन गई। "तो कब आएँ?" उसने उनकी ओर तनिक क्रोध और किंचित परिहास की मुद्रा में देखा और अपने भीगे आँचल को सहेजती भीतर चली गई।

आरडी बाबू देखते रह गए। भीगा गोरा बदन, नन्हकी की अल्हड़ चाल, उनकी आँखें चमक उठीं। उन्होंने छाता उठाया और खेतों की ओर चल पड़े। दूर-दूर तक खेतों में पानी भरा था और मेढक टर्र-टाँय कर रहे थे। धीरे-धीरे वह नलकूप वाले खेत पर पहुँच गए। दूर से ही उन्होंने देखा कि धान का बीयड़ तैयार है। "भला इससे अच्छा अवसर और कब आएगा?" उन्होंने सोचा और चरना को पुकारा।

"जी मालिक," चरना ने पूछा।

"देखता नहीं है कि खेत में रोपनी अब शुरू हो जाना चाहिए? जा जल्दी से काम शुरू करवा और देख मज़दूर कम मत लगाना। सबके घर में कह आ। कोई मज़दूर का घर बाकी न रहे।"

चरना चला गया। थोड़ी देर में पचासों मज़दूर, बच्चे, जवान, वृद्ध, पुरुष, औरतें काम में लग गए। बीयड़ उखाड़ा जाने लगा। एक साथ चार हल बाँधे गए और देखते-देखते धान की रोपाई शुरू हो गई। खेत की डरांर पर छाता ताने आरडी बाबू मुआयना करते रहे। पानी तेज़ धार बरस रहा था और सभी मज़दूर भीग रहे थे। औरतों ने रोपनी का गीत गाना शुरू कर दिया। उन सब की लय और आवाज़ के साथ-साथ आरडी बाबू का मन-मयूर थिरकने लगा। रह-रह कर भोर की नन्हकी याद आ जाती और उनका मन बेचैन होने लगता। मीठी यादों ने उन्हें गुदगुदा दिया था। मन ही मन वे आनंदित होते रहे।

बलुअर मिट्टी वाले इस क्षेत्र की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं, अधिकांश आबादी को समय पर भोजन नहीं मिलता। गोएँड़ा के सारे खेत उपजाऊ हैं और लगभग आधा से अधिक खेत आरडी बाबू के ही हैं।

साथ ही बाहर से भी अच्छी आय है उनके घर में और ज़बरदस्त ठाट-बाट है उनकी ज़िंदगी में। पूरब ओर गाँव की सीमा पर जीऊत चाचा का बड़ा-सा बगीचा है। बगीचे के इस तरफ अच्छे व उपजाऊ खेत हैं और दूसरी तरफ बलुअर खेत शुरू हो जाते हैं। बगीचा गाँव का ही नही बल्कि मिट्टी की भी सीमा निर्धारित करता है। इस ओर धान, गेहूँ, चना आदि फसलों का उत्पादन होता है पर उस तरफ ज्वार-बाजरा के अलावा कुछ भी नहीं होता। गोएड़ा के खेतों की भी सिचाई

करनी पड़ती है। सिचाई के समय अक्सर गाँव वालों के बीच लाठियाँ तनती रहती हैं और सभी त्रस्त रहते हैं।

गाँव की इस दयनीय दशा की समझ आरडी बाबू को ख़ूब है और वे रोज़ नई-नई चालें चलते रहते हैं। पहले के राजे-रजवाड़े, ज़मींदार शिकार के लिए जंगलों में जाया करते थे, हिंस्र और भयानक जानवरों को मारने में रुचि रखते थे। बहादुरी और शौर्य का प्रदर्शन होता था, परन्तु आज के ये नए नेता, नए धनी-मानी लोग आदमखोर हो चुके हैं, इनके जबड़ों में आदमी का, ग़रीबों का ख़ून लगा हुआ है। आरडी बाबू उन्हीं लोगों में से एक हैं। गाँव की नब्ज़ बहुत पहले ही उन्होंने पहचान ली थी। लड़कों को ऊँची तालीम दी तथा गाँव के प्रभाव से दूर रखा। सभी पढ़-लिखकर शहरों में बस गए। गाँव में उनके साथ उनकी धर्मपत्नी रहती हैं और वह किसी बहू को साथ रखती हैं। भीतर का काम सँभालने के लिए नन्हकी है। दिन भर किसी न किसी काम में लगी रहती है। सास-बहू को कुछ करने नहीं देती। बहू को बस चार जन का खाना बनाना पड़ता है। उसमें भी बहुत सारी मदद नन्हकी करती रहती है।

जब से आरडी बाबू की आर्थिक स्थिति सुधरी है, गाँव की बागडोर स्वत: उनके हाथों में आ गई है और उन्होंने इसका भरपूर लाभ उठाया है। किसी भी झगड़े में उनकी राय अंतिम रूप से माननी पड़ती है।

मुखिया- मुख्तार, वकील- हाकिम, नायब-पटवारी, थानेदार सभी की सेवा आरडी बाबू दिल खोलकर करते हैं। इसीलिए उनकी तूती बोलती है। लोग समझ गए हैं कि उनके हाथों से बचना आसान नहीं है। सभी डरकर उनकी हाँ में हाँ करते हैं।

आरडी बाबू आनंदित होते रहे और मज़दूरों को उत्साहित करते रहे, ललकारते रहे। काम तेज़ी से हो रहा था। शाम तक धान की रोपाई होती रही और वह वहीं मँडराते रहे। इतने बड़े खेत में रोपे गए बीयड़ को देखकर उनका मन हुलसित होता रहा, रोपे गए बीयड़ से पूरे खेत में जैसे हरियाली आ गई थी। उनका मन उस हरियाली से आप्लावित था और भीतर-भीतर गुदगुदाती नशीली स्मृतियाँ कोई सुखद अहसास दे रही थी। वे घर की ओर लौट पड़े।

"आज तो आपको खाने-पीने की भी सुधि नहीं रही," उनकी धर्मपत्नी ने प्यार से उलाहनाएँ देते हुए कहा।

"क्या करें... लल्लो की माँ! तुम तो देख ही रही हो कि धान की रोपाई शुरू हो गई है। इससे अच्छा मौका कहाँ मिलता? सो देर काहें की? पानी नहीं बरसता तो खेतों की सिचाई करनी पड़ती। तब जाकर धीरे-धीरे कई दिनों में इतना काम हो पाता। ज़रा पास आओ लल्लो की माँ!" आरडी बाबू ने पलंग पर पाँव पसारते हुए कहा, "बहुत थक गया हूँ।"

लल्लो की माँ ने उनका पाँव दबाना शुरू कर दिया और उन्होंने आवाज़ देकर नन्हकी को पुकारा, "ज़रा सुन नन्हकी।"

"आती हूँ," कहीं दूर किसी दूसरे कमरे से उसने आवाज़ दी और धीरे-धीरे हाथ पोंछती उपस्थित हुई, "क्या है?"

"ज़रा बहू से कहो कि जल्दी से चाय बना दे।"

"अच्छा," नन्हकी वापस चली गई। ललाट पर बड़ी सी लाल टिकुली, पाउडर लिपा चेहरा, आँखों में काजल, होंठ पर लाल लिपिस्टिक, माथे के बीच चटख लाल सिन्दूर की लम्बी रेखा और नई-नई साड़ी।

"यह क्या लल्लो की माँ! आज तो नन्हकी के नाज-नखरे ही कुछ और हैं?" मन ही मन आरडी बाबू प्रसन्न हुए।

वह हँस पड़ीं। उनकी हँसी में परिहास अधिक था, बोलीं, "आज भोर से ही वह यहीं है, घर गई नहीं। रघुवा आया था, खा-पीकर चला गया। सवेरे से पानी में काम करते-करते बिल्कुल भीग गई थी, तो मैंने ही उसे यह नई साड़ी दे दी। साड़ी तो देनी ही थी। उसने नहा-धोकर पहन भी लिया। बहू को कोई मज़ाक सूझा तो उसने यह बनाव-शृंगार कर डाला। दरअसल उसको अच्छा लगता है दूसरों को सजाने-सँवारने में। देखिए ना, रंग-पोतकर क्या हाल बना दी है बेचारी की?"

"ठीक ही तो है, कभी-कभी तुम भी बहू से शृंगार करवा लिया करो," आरडी बाबू ने जैसे मनुहार किया।

"हटिए, बहू-बेटे के सामने अब यह सब...? और हाँ, अब आप दादा बनने वाले हैं," उन्होंने एक साथ शर्म, व्यंग्य और ख़ुशी के साथ कहा।

"अच्छा," आरडी बाबू उछल पड़े। पर, उनका ध्यान नन्हकी के रूप-रंग, साज-शृंगार पर अटका रह गया-"आज भोर से ही उसने जैसे जादू कर दिया है, क़ोई उपाय सोचना होगा, आज तो मौसम भी अनुकूल है," उन्होंने मन ही मन सोचा।

"चुप क्यों हो गए? क्या अच्छा नहीं लगा यह सुखद समाचार?"

"नहीं-नहीं, लल्लो की माँ! बहुत अच्छा समाचार है," उन्होंने उबरते हुए कहा, "दरअसल मैं सोच रहा था कि हमें नए मेहमान के लिए भी तो कुछ करना चाहिए।"

"बिल्कुल ग़लत, आप यह नहीं सोच रहे हैं," उनकी धर्मपत्नी ने उनकी ओर मुस्करा कर देखते हुए कहा। उनकी निगाहों में व्यंग्य के साथ-साथ विनोद के भाव थे। मौसम अनुकूल था और उन्होंने आरडी बाबू की आँखों की चमक पहचान ली थी।

"तो?" जैसे चोरी करते समय पकड़ाने पर जो हालत चोर की होती है, उस समय वही स्थिति आरडी बाबू की थी।

"तो क्या? क्या आपको मैं पहचानती नहीं?" वह हँस पड़ी। आरडी बाबू भी हँसने का प्रयास करते हुए बाहर की ओर निकल पड़े।

"चाय तो पीकर जाइये," उन्होंने आवाज़ देकर उन्हें रोकना चाहा।

"बाहर ही भेजवा देना," उन्होंने कहा और सीढ़ियाँ उतर गए। घर और दुआर के बीच यही सीढ़ियाँ हैं, भीतर औरतों का निवास और बाहर मर्दों का। वैसे उनके यहाँ ऐसी कोई विभाजन रेखा नहीं है। बड़ा सा दुआर है, बड़े-बड़े कमरे हैं। पश्चिम ओर जानवरों के रहने-खाने की व्यवस्था है और पूरब की ओर फूलों की लम्बी कतार। आरडी बाबू को गेंदा, गुलाब, चमेली और रात की रानी से विशेष लगाव है।

पानी का बरसना थम गया था और

मज़दूरों की जमात जा चुकी थी। चरना ने भी बैलों को खिला-पिलाकर अलग-अलग खूँटों पर बाँध दिया था। स्वयं शायद गाँजा की तलाश में अपनी टोली की ओर चला गया था। दुआर का सारा काम निबटा कर गया था, अत: उसके जल्दी वापस आने की उम्मीद नहीं थी। उन्होंने दुआर का मुख्य दरवाज़ा बंद कर दिया और चारपाई पर बैठकर चाय का इंतज़ार करने लगे।

"यह भी एक नशा ही है," वे मन ही मन बुदबुदाये, "भीतर कोई उम्मीद जाग रही हो, मन-मयूर नाच रहा हो और कोई मुराद पूरी होने वाली हो।"

बरसात का मौसम, सिहरन पैदा करती तेज़ ठंडी हवा, लल्लो की माँ का मन-शरीर आहत हो उठा। उन्हें यों उनका जाना अच्छा नहीं लगा। कोई तड़प और हूक सी उठी उनके भीतर परन्तु उन्होंने उसे जज़्ब कर लिया। नन्हकी तब तक चाय लेकर निकल रही थी। "जा बाहर दे आ," किसी बुझे अहसास या किसी डाह के साथ उन्होंने देखा और अपनी चाय लेकर बहू के कमरे में चली आईं।

"आइए माँ जी!" बहू ने उत्साह पूर्वक उनका स्वागत किया। वह बहू के साथ पलंग पर बैठकर चाय पीने लगीं। उन्होंने महसूस किया कि आज बहू कुछ विशेष प्रसन्न है। उन्हें बहुत अच्छा लगा और उन्होंने बहू से मधुर-मधुर बातें करनी शुरू कर दीं। पता नहीं क्यों। उनका मन थोड़ी ही देर में उचट गया। बहू ने कहा, "माँ जी, आपका मन ठीक नहीं लग रहा है। लाइये आपका पैर दबा दूँ।" पल भर के लिए उनके मन में शांति की रेखा उभरी, पर उन्होंने उसे स्वयं ही दबा दिया। बोली, "नहीं बहू, बाद में ख़ाने के बाद," और उठकर अपने कमरे में आ गईं।

उनका आत्मालाप जारी था, "जब से इस घर में कदम रखा है, तब से यहाँ यही सब देखना, सहना पड़ा है। न कोई लाज, न डर। जब जो चाहा, किया। कोई रोकने-टोकने वाला नहीं है।"

नन्हकी को चाय लेकर गए देर हो चुकी थी। वे उठीं और बाहर सीढ़ी तक आईं। वहाँ अंधेरा था, कुछ भी सूझ नहीं रहा था। वे वापस जाकर अपने पलंग पर निढाल पड़ गईं। आँखें भर आईं और उनका रुदन शुरू हो गया। भरसक उन्होंने भर आए गले को रोकना चाहा पर भीतर की पीड़ा ने रुकने नहीं दिया-"रोने के अलावा पूरी ज़िंदगी यहाँ मिला ही क्या है? पूरी ज़िंदगी रोते ही तो बीती है।" वे रोती रहीं, रोती रहीं और तब तक रोती रहीं जब तक उनका मन हल्का नहीं हो गया।

"क्या पहली बार रोई हूँ?" उन्होंने अपने-आप से पूछा, "इस तरह उन्हें सैकड़ों बार, हजारों बार रोना पड़ा है। पर कब तक... आख़िर कब तक यूँ ही रोना पड़ेगा?" उन्होंने पहली बार अपने-आप से प्रश्न किया। भीतर कोई बदलाव-सा महसूस हुआ और उनका रोना बंद हो गया। चेहरे पर बहते हुए आँसू सूख गए। आँखें लाल हो उठीं और उनका नस-नस तन गया। इस तनाव में एक आक्रोश था और भीतर जैसे प्रतिशोध की ज्वाला जल रही थी।

नन्हकी कब की लौट चुकी थी। आरडी बाबू ने दुआर पर ही खाना मँगवा कर खा लिया था, चरना भी खा-पीकर नलकूप पर सोने चला गया था।

"माँ जी," बहू ने पुकारा-"बहुत देर हो चुकी है, चलिए खा लिया जाए।"

"क्या सभी खा चुके हैं?"

"हाँ, माँ जी, और सभी सोने भी चले गए हैं।"

बड़े बे-मन से उन्होंने खाना खाया और वापस पलंग पर चली आईं। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। सीढ़ियों के पार घटा-टोप अँधेरा था। उन्हें लगा, यह अँधेरा यों ही उनकी पूरी ज़िंदगी में फैला हुआ है। उन्हें कहीं कोई प्रकाश की रेखा दिखाई नहीं दे रही थी। ऐसे में उनको अपना दम घुटता सा लगा। उन्हें अपना बचपन याद आया, वे भी क्या दिन थे, न कोई चिन्ता, न भय और ना कोई कमी। जो चाहे करो, जैसे चाहे रहो। सहेलियों के संग की मीठी-मीठी स्मृतियाँ भीतर तक गुदगुदा गईं। माँ-बाप, भाई-बहनों का असीम प्यार... सहसा उनकी आँखों में आँसू भर आए। वह रोती रहीं, तड़पती रहीं। कोई नहीं था वहाँ जो उनके दर्द में सम्मिलित होता। तब उन्हें अपनी शादी की याद आई। एक सजी-सँवरी दुल्हन के रूप में उन्होंने इस घर में कदम रखा था। तब यह घर ऐसा नहीं था।

परिवार को यहाँ तक पहुँचाने में उनकी त्याग-तपस्या और कड़ी मेहनत का असर है। फिर बच्चे हुए। उनका लालन-पालन, पढ़ाई-लिखाई, शादी-विवाह करते-करते उम्र का एक लंबा फ़ासला तय हो चुका है। क्या कभी भी मैंने अपने लिए कुछ सोचा? क्या कभी कुछ माँगा? इस घर के लिए खटती रही, मरती रही। इतना ही नहीं, कभी भी उन पर कोई अंकुश नहीं डाला। क्या मुझे जानकारी नहीं होती थी? क्या उनकी दिनचर्या से परिचित नहीं थी? लाचार ही तो थी। अभी भी लाचार हूँ। उन्हें नन्हकी पर पहले बहुत क्रोध आया परन्तु शीघ्र ही उसकी मजबूरी समझ में आ गई और उनके भीतर दया-करुणा की भावना जाग उठी।

'मगर अब नहीं, अब मुझे ही कुछ करना होगा,' वे सहसा दृढ़ हुईं, कोई संकल्प जागा मन में, झटके से पलंग से उतरीं और तेज़ी से सीढ़ियाँ उतर आईं। बाहर नीरव अंधकार था, कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। क्या मन में आया, वह ठिठक गईं और सोचने लगीं-"मैं, किसे देखने चली हूँ, जिसने कभी मुझे देखा ही नहीं, मैं किसे रोकने चली हूँ, जो कभी रुका ही नहीं, किसकी चोरी पकड़ने चली हूँ जो खुलेआम अत्याचार, व्यभिचार और बलात्कार करता रहा। नहीं, अब उसे क्या रोकना? उसे क्या देखना?" और उनके कदम पीछे मुड़ गए।

अगले दिन रघुवा की शिकायत पर गाँव में पुलिस आ धमकी और आरडी बाबू को पकड़ ले गई। गाँव के सभी लोग देखते रह गए। लल्लो की माँ ने थानेदार के सामने सारी इज़्ज़त-प्रतिष्ठा को दाँव पर लगाकर बयान दिया और उनके हज़ारों गड़े मुर्दों को उखाड़ फेंका। बयान देने के बाद मतवाली चाल से, साक्षात् दुर्गा बनी, सीढ़ियाँ चढ़ गईं।

आरडी बाबू हतप्रभ रह गए और पूरा गाँव सन्न रह गया। रघुवा और नन्हकी हाथ जोड़े खड़े थे।

000

पेइंग गेस्ट

दीपक गिरकर

आज मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति के शिवाजी सभागृह में भाटिया आंटी के कहानी संग्रह "पेइंग गेस्ट" का लोकार्पण समारोह है। हिन्दी साहित्य अकादमी के अध्यक्ष इस कार्यक्रम की अध्यक्षता करेंगे और मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहेंगे वरिष्ठ कथाकार दीनानाथ चौबे जी। मैं और मोहिनी पुस्तक पर चर्चा करेंगे। मोहिनी और मैं कल ही नीमच से भाटिया आंटी के घर पर आ गए थें। मेरी आँखों के सामने इंदौर में गुज़रे पिछले चार साल और भाटिया आंटी का अपनत्व, स्नेह एक सिनेमा की रील की तरह घूम जाता है।

दो वर्ष के प्रोबेशन पीरियड के बाद मेरी पहली पोस्टिंग बैंक की पत्रकार कॉलोनी शाखा, इंदौर में हुई थी। मैं अपने रहने के लिए शाखा के आसपास ही मकान देख रहा था। मुझे अभी तक कोई ढंग का मकान नहीं मिला था। एक दिन मैं शाखा प्रबंधक के केबिन में बैठा हुआ एक लोन की फ़ाइल पर डिसकस कर रहा था, तब एक महिला शाखा प्रबंधक के केबिन में आकर शाखा प्रबंधक को विश कर उनके केबिन में बैठ गई। शाखा प्रबंधक ने मेरा परिचय उस महिला से करवाया और बताया कि मिस्टर शुभम ने परसों ही यहाँ ज्वाइन किया है और इन्हें रहने के लिए मकान की तलाश है। ये बैचलर है और ये अकेले ही रहेंगे। अपने आसपास के एरिया में कोई खाली मकान हो तो बताएगा। वे भाटिया मैडम थी और बैंक की पुरानी ग्राहक थी। वे लॉकर ऑपरेट करने आई थी। वे मेरी ओर मुखातिब हुई और बोलीं "कहाँ के रहने वाले हो?"

मैंने कहा "मैडम, मैं नाशिक का रहने वाला हूँ।"

"महाराष्ट्रियन हो?"

"जी, महाराष्ट्रियन ब्राह्मण हूँ।"

"नॉन वेजीटेरियन हो क्या?"

"नहीं, मैं वेजेटेरियन हूँ।"

"मेरा मकान यहाँ पास में साकेत में है। मेरे यहाँ पेइंग गेस्ट के रूप में रह सकते हो? मैं अकेली रहती हूँ। हर माह तुम्हें बीस हज़ार रुपये किराया देना होगा जिसमें चाय, नाश्ता, दोनों समय का खाना-पीना और रहना शामिल है।"

"जी, मैं पेइंग गेस्ट के रूप में आपके यहाँ रहने को तैयार हूँ।" मेरे चेहरे पर कृतज्ञता भरी मुस्कान छा गई।

"मिस्टर शुभम बहुत मिलनसार और हँसमुख है। आपको शिकायत का मौक़ा नहीं मिलेगा। मैडम, शुभम के साथ आपकी केमिस्ट्री अच्छी बैठेगी क्योंकि शुभम की भी साहित्य में रुचि है।" शाखा प्रबंधक ने भाटिया मैडम को आश्वस्त करने की कोशिश की।

वे बैग से पानी की बोतल निकाल कर कुछ घूँट गले से नीचे उतारती हैं। पाँच मिनट के संक्षिप्त वार्त्तालाप में भाटिया मैडम की अनुभवी आँखों को मैं शालीन और शांत लगा। वे शीघ्र लॉकर ऑपरेट कर के आ गईं। मैं उनकी गाड़ी में उनके साथ उनके बंगले पर चला गया। बंगला बहुत बड़ा था। ग्राउंड फ्लोर पर वे रहती हैं। उनके पास तीन बेड रूम, एक ड्रॉइंगरूम, एक डाइनिंग रूम, एक किचन, बाहर की साइड एक पोर्च और एक बड़ा सा बग़ीचा और हरी-हरी घास। कोने में एक विशाल नीम का पेड़ है और बगीचे के बीचों-बीच हरसिंगार। ड्रॉइंगरूम बड़ा ख़ूबसूरत है। बढ़िया सोफ़े। दो तरफ़ स्टाइलिश दीवान पड़े हैं जिस पर मोटे मैट्रेस और गाव तकिए लगे हुए हैं। कोनों पर स्टाइलिश तिपायों पर कलाकृतियाँ, खिड़कियों पर भारी, महरून कलर का पर्दा है। छत के बीचों-बीच बड़ा सा झूमर लगा है। चारों दीवारें और छत अलग-अलग कलर से पेण्ट की गई हैं। सभी कलर एक ही फ़ैमिली के हैं। कलर कॉम्बिनेशन बहुत ही ख़ूबसूरत है। कई पेंटिंग भी हैं जो मैटफ़िनिश गोल्डन कलर के फ्रेम में मढ़ी हैं। ये सभी पेंटिंग

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल– 9425067036
ईमेल - deepakgirkar2016@gmail.com

भारतीय कलाकारों की हैं। इनमें मुख्यत: राजा रवि वर्मा, मंजीत बावा, अमृता शेरगिल, जतिन दास है। मैडम को पढ़ने लिखने का शौक़ है। उनके एक बेड रूम में पुस्तकों की लाइब्रेरी है। मेरे रहने के लिए फर्स्ट फ्लोर पर वन बेड रूम विथ अटैच लेट बाथ, वन डाइनिंग रूम और किचन है। मकान फुल फर्निश्ड है। भाटिया मैडम के पास बेशुमार दौलत है। मैडम के घर में विकराल अकेलापन व्याप्त था। बर्तन और झाड़ू-पोंछा के लिए एक बाई और खाना बनाने के लिए एक बाई आती थी। मुझे मैडम का बंगला बहुत पसंद आया। मैं बीस हज़ार रुपये भाटिया मैडम को देकर शाखा में आ गया। मैडम बोलीं मैं कल आपके ऊपर के कमरों की सफाई अपनी कामवाली से करवा लूँगी। ऐसा कीजिए आप कल शाम को अपना सामान लेकर आ जाइए। यहाँ रहने की कुछ शर्तें और अनुशासन है। मैं आपको कल बता दूँगी। मैंने शाखा प्रबंधक से कहा "मुझे मकान पसंद आ गया है और मैंने मैडम भाटिया को एडवांस भी दे दिया है।" शाखा प्रबंधक ने कहा "साकेत इंदौर का पॉश इलाका है और हमारी शाखा से नज़दीक है। तुम्हें आने-जाने में परेशानी नहीं होगी।"

वे होल्कर साइंस कॉलेज में केमिस्ट्री की प्रोफ़ेसर हैं। उन दिनों वे सख़्त और कठोर प्रोफ़ेसर के रूप में जानी जाती थीं। स्टूडेंट्स जिनसे बात करते डरते थे। अनुशासन को लेकर भी वे सख़्त ही थीं। एक रोबीली प्रोफ़ेसर के दायरे में उन्होंने ख़ुद को क़ैद कर लिया था। जिससे बाहर वे न स्वयं जाना चाहतीं। न ही कोई भीतर प्रवेश कर सकता था। किसी को आज्ञा नहीं थी। मजाल है कोई विद्यार्थी उनसे फ़ालतू प्रश्न कर ले। ज़रा-सी बात पर ग़ुस्से में पूरी कक्षा को खड़ा करना जैसे उनकी आदत बन गई थी। गब्बर सिंह उनके पीठ पीछे ऐसे ही थोड़ी कहते थे उन्हें। पर जैसे अपनी छवि उन्होंने कॉलेज में बनायी थी उसके ठीक उलट वे बाहर से गरम अंदर से नरम थीं। किसी नारियल की भाँति। वे हर काम योजना बनाकर करती रही हैं। उनकी सफलता का राज भी यही है। उनकी उम्र वैसे 63 के आसपास थी पर उनके चेहरे की कशिश और सुगठित काया देख कर ऐसा लगता कि उनकी उम्र 55 वर्ष होगी। उनकी 2 साल की और नौकरी बची थी।

मैं अगले दिन शाम को होटल सूर्या का रूम ख़ाली कर के अपना एक सूटकेस लेकर भाटिया मैडम के बंगले पर पहुँच गया। आज मैडम ने यहाँ रहने की सारी शर्तें बता दी। "यहाँ अनुशासन में रहना होगा। अपने दोस्त लोगों को लाकर हो-हल्ला नहीं करोगे। रात को दस बजे से पूर्व घर पर आ जाओगे, यदि किसी कारण से देर होती है तो फ़ोन से मुझे सूचित करोगे। आवारागर्दी नहीं करोगे। जब भी घर से बाहर जाओगे, मुझे बता कर जाओगे। सब्ज़ियाँ तुम्हारी पसंद की और मेरी पसंद की तुम लाओगे।" मैंने कहा "मैडम, आपकी सारी शर्तें मुझे मंज़ूर है। यदि मुझसे कोई भूल हो जाएगी तो आप मुझे डाँट सकती हैं," मैं बेधड़क होकर बोला। शुद्ध पंजाबी खाने की ख़ुशबू से महक रहा था डायनिंग हाल। खाना बनाने वाली बाई बोली, "बाबूजी, आज बहुत दिनों बाद मैडम का चेहरा खिला हुआ है।" भाटिया मैडम का बंगला मन को तसल्ली देने वाला और उल्लास भर देने वाला था। शाम होते ही हरसिंगार की भीनी-भीनी ख़ुश्बू से पूरा बंगला नहा उठता था और सुबह होते ही फूलों की चादर बिछ जाती थी बगीचे में।

धीरे-धीरे समय बीतता गया। भाटिया मैडम का व्यक्तित्व एक पुस्तक की तरह, हर रोज़ एक नए पन्ने की तरह खुलता गया। भाटिया मैडम के हरे-भरे परिवार पर भी एक दिन समय की ऐसी गाज़ गिरी कि उनके परिवार की नींव हिल कर रह गई थी। 5 साल पहले उनके पति मिस्टर भाटिया की मृत्यु एक एक्सीडेंट में हो गई। मैडम को एक बेटी और एक बेटा है। दोनों की शादी हो चुकी है। बेटी अपने परिवार के साथ ऑस्ट्रेलिया के सिडनी शहर में और बेटा कनाडा के टोरंटो शहर में है। मैडम दोनों के पास एक बार जा चुकी हैं लेकिन मैडम को अपना इंदौर शहर ही अच्छा लगता है। मैडम अपने नाती, पोते और बच्चों से स्काइप पर कुछ दिनों के अंतराल से बातचीत करती रहती हैं। एक दिन शाम को जब मैं बैंक से घर आया तो मैंने देखा आंटी पुरानी तस्वीरों को पलटने में लगी हुई थीं। कितना सुकून मिलता है इन क़ैद किये लम्हों को देख के। बुढ़ापे में इनसान के पास अतीत की स्मृतियाँ ही शेष रह जाती हैं। मैडम भाटिया के सामने से पिछला चालीस साल का जीवन फ़्लैशबैक की तरह गुज़र गया। न जाने वे कब सुदूर भूतकाल में भटक गईं, जहाँ रह-रहकर अनेक स्मृतियाँ उनके मानस पटल पर उभरतीं और उन्हें बैचेन कर जातीं। मैडम के जीवन में पति के न रहने के बाद बड़ी एकांगिता आ गई थी। वह अपने मन की पीड़ा सिर्फ़ अपनी बेटी से कहती थीं इससे उनके दिल का बोझ कुछ हल्का हो जाता था। एलबम के आख़िरी फ़ोटो तक पहुँचते-पहुँचते मैडम बिलख-बिलख कर रो पड़ी थीं। मैडम के धैर्य का बाँध जो वर्षों से उन्होंने किसी तरह सँभालकर रखा था वह भावावेग की नदी सा बह निकला और सारी सीमाएँ तोड़कर बह चला। उनकी आवाज़ पहली बार संजीदा होने लगी थी। मैडम मुझ से बोली "जब घर एकदम ख़ाली हो गया, कोई काम ही नहीं रह गया, तो घर का सन्नाटा मुझे तोड़ने, डराने लगा। इससे बचने के लिए मैं आए दिन, ड्यूटी के बाद कॉलेज की लायब्रेरी में बाक़ी समय भी बिताने लगी।" वृद्धावस्था में पति या पत्नी के नहीं रह जाने पर व्यक्ति कितना अकेला हो जाता है। लेकिन मेरे आने के बाद भाटिया मैडम का अकेलापन दूर हो गया था।

दिन पंख लगाकर उड़ रहे थे कि चीन के वुहान शहर से आए कोरोना वायरस ने मार्च 2020 में पूरे देश में तहलका मचा दिया था। कोविड-19 महामारी को रोकने के प्रयास में 25 मार्च से पूरे देश में 21 दिनों का लॉकडाउन लगा दिया था। सड़कों पर सन्नाटा पसरा था। सड़कों पर पुलिस थी। यदि कोई आदमी किसी काम के लिए घर से निकल भी जाता तो पुलिस की लाठियों से हाथ-पैर तुड़वाकर ही घर लौटता। मंदिर, स्कूल, कॉलेज और कोचिंग, दुकानें सब बंद हो चुके थें। खुले थे तो सिर्फ़ अस्पताल। सेठ, नाई, कारीगर, मज़दूर सब का काम ठप्प हो गया। ग़रीब तो परेशान थे ही, पैसे वाले भी सामान न मिलने से

परेशान थे। बैंक बंद नहीं हुए थे। मैं रोज़ बैंक जा रहा था। इस महामारी के फैलने के बाद उससे बचने के लिए, जो कुछ मैं जानता-समझता, सुनता वह सारी सावधानी पूरी सख़्ती से बरत रहा था। सेनिटाइज़र, मास्क के बिना मैं बाहर क़दम नहीं रखता था। कोरोना के मामले में हर एक का संक्रमण से बचा रहना, सबके बचे रहने के लिए ज़रूरी था। सब काम वाली बाइयों ने आना बंद कर दिया था। बर्तन और झाड़ू-पोंछा मैं कर लेता था। मुझे भोजन बनाना नहीं आता था। नाश्ता और भोजन बनाने का काम मैडम करती थीं। मैं चाय और कॉफ़ी बना लेता था। कपड़े धोने के लिए ऑटोमेटिक वाशिंग मशीन थी। मैं छुट्टी के दिन इकट्ठे कपड़े धो लेता था। लॉक डाउन के दिनों में मैं सुबह नाश्ता कर के बैंक चला जाता था। मेरे लिए लंच शाखा प्रबंधक जोशी जी लाते थे। शाम का डिनर मैडम मेरे लिए भी बना लेती थीं। लॉक डाउन के दिनों में बैंक में काम ज़्यादा नहीं था, अत: बैंक का पूरा स्टॉफ़ किराना सामान, सब्ज़ी, फल, खाने पीने की चीज़ों के जुगाड़ में लगा रहता था। बैंक में आने वाले व्यापारी लोग इन सारी चीज़ों की व्यवस्था कर देते थे। इसलिए लॉक डाउन में मुझे और मैडम को खाने-पीने की तकलीफ़ नहीं हुई। मैं लॉक डाउन के समय में बैंक से घर जल्दी आ जाता था। इस पहले लॉक डाउन में मैं थोड़ा बहुत भोजन बनाना सीख गया। लॉक डाउन में मुझे और मैडम को पढ़ने-लिखने के लिए पर्याप्त समय मिला। मैडम कहानियाँ लिखती थीं और मैं भी कहानियाँ लिखता था। छुट्टी के दिन मैं और मैडम कुछ समय के लिए साहित्यिक चर्चा करते थे।

जनवरी 2021 में आई तीसरी लहर में कोरोना ने विकराल रूप धारण कर लिया। पूरी मानवता ख़तरे में पड़ी हुई थी। लोग कीड़े-मकोड़ों की तरह मर रहे थें। रेलवे की बोगी, पानी के जहाज़, हवाई जहाज़, होटल सब हॉस्पिटल में बदले जा रहे थें। रोज़ाना हज़ारों लाशें अस्पतालों से जाने लगी। बढ़ता संक्रमण, बढ़ती मौतें, वेंटीलेटरों, पी. पी. किटों, ऑक्सीजन सिलेंडरों की कमी, भूख और भदहाली की डरावनी घटनाएँ फ़िज़ाओं में थी। वायरस पर किसी का वश नहीं चल रहा था। कोरोना की तीसरी लहर के दौरान अप्रैल 2021 में एक दिन भाटिया मैडम को खाँसी की शिकायत हुई थी। दूसरे दिन से उनको खाँसी के साथ तेज़ बुखार आने लगा था। फिर उन्हें साँस लेने में भी परेशानी होने लगी थी। मैडम कोरोना पॉजिटिव हो गई थीं। वे सहम-सी गई थीं।

"मैडम, आप घबराइए मत, आप जल्दी ठीक हो जाएगी।" मैंने मैडम को आश्वस्त करने की कोशिश की। मैंने तुरंत मैडम को दवा दे दी थी। मेरे नानाजी आयुर्वेदिक वैद्य हैं। मैं पिछली बार नाशिक गया था तो उन्होंने मुझे कोविड बीमारी की दवाइयाँ दे दी थीं। मैंने मैडम को आयुर्वेदिक दवाइयाँ भी देना शुरू कर दी थीं। दो दिन बाद ही मैडम का बुखार उतर गया था। मैडम की घबराहट, पसीना, आँखों में आँसू देख कर मैंने उन्हें समझाया, "ऐसे परेशान न हों। सकारात्मक सोच के साथ सब-कुछ करती रहें, सब अच्छा ही अच्छा होगा। यह भी एक स्थिति है, जैसे आई है, वैसे ही गुज़र भी जाएगी।" मैंने ताज़े फलों का इंतज़ाम कर दिया था और मैडम को मैं फलों का जूस प्रतिदिन देता था। मैं पूरी एतिहात बरत रहा था। मैंने बैंक से एक सप्ताह की छुट्टी ले ली थी। मैडम को अस्पताल में एडमिट नहीं करवाना पड़ा और मैडम घर पर ही पूरी तरह से ठीक हो गईं। उनके मुँह का स्वाद कसैला हो गया था। झाड़ू, पोंछा, बर्तन, कपड़े, चाय, नाश्ता, दोपहर और रात का भोजन जैसे-तैसे मैं कर रहा था। मैं पूरे घर को रोज़ सैनिटाइज़ करता था। मन से भाटिया मैडम इतनी बुझी हुई सी हो गई थीं कि किसी भी चीज़ के लिए उनके मन में जोश-उमंग, उल्लास कुछ रह ही नहीं गया था। कोविड की लंबी ताला बन्दी के बाद ज़िंदगी अपने पुराने ढर्रे पर आ रही थी। मेरी बातें उन्हें हमेशा मज़बूत बनाती थीं, मैं उनकी हताशा-निराशा को दूर कर उनमें नई एनर्जी भरता था।

भाटिया मैडम अब काफी बदल चुकी थीं। झल्लाहट, चिड़चिड़ापन, तुनक का नामोनिशान भी अब नज़र नहीं आता था उनके व्यवहार में। एक रविवार के दिन वे चेहरे पर मुस्कान लाने का प्रयास करती हुई बोलीं, आज हमारे यहाँ मेरे मित्र मिस्टर भार्गव, मिसेज भार्गव और उनकी पेइंग गेस्ट मिलने आ रहे हैं। मैं बाज़ार से फल और मिठाई ले आया था और हमारी भोजन बनाने वाली सावित्री बाई ने गरम-गरम समोसे और चटनी बना ली थीं। मिस्टर और मिसेज भार्गव आ गए थे और उनके साथ एक चोबीस-पच्चीस साल की किशोरी थी। लम्बा छरहरा बदन, गोरा रंग, आकर्षक चेहरा, सलीक़े से कढ़े बाल और हिरन जैसी बड़ी-बड़ी आँखें। जब वह हँस रही थी तो उसके गालों में डिम्पल पड़ रहे थे। गुलाबी सलवार सूट में वह बहुत सुन्दर लग रही थी। मैं सम्मोहित सा उसे देर तक देखता ही रहा। मैं उसकी नैसर्गिक सुंदरता में खो गया था। मैडम ने मेहमानों का बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया। मैडम ने मेरा परिचय इन मेहमानों से करवाया और दिल खोलकर मेरी प्रशंसा की। मिसेज भार्गव ने भी अपनी पेइंग गेस्ट मोहिनी का परिचय हमसे करवाया। मैडम ने मोहिनी को कनखियों से देखा। मानों मोहिनी का आना सार्थक हो गया। ड्राइंग रूम में हम सब गरमा-गरम समोसे खाते हुए गुफ़्तुगू में लग गए। मोहिनी के व्यक्तित्व के साथ एक सौम्यता जुड़ी हुई थी जो उसके आचरण से झलक रही थी। सादगी की उस प्रतिमा पर मैं दिल हार गया था। पहली ही नज़र में मेरा व्यक्तित्व और व्यवहार मोहिनी को भी प्रभावित कर गया था। इस पहली मुलाक़ात बाद से ही मैं और मोहिनी अच्छे मित्र बन गए। मोहिनी को भी पढ़ने-लिखने का शौक है। मैं अगले दिन बैंक पहुँचा तो मेरे दिमाग़ में मोहिनी का ख्याल रह रह कर आ रहा था। समय बीतता गया, मेरे और मोहिनी के बीच नज़दीकियाँ बढ़ती गई। बैंक की सारी बातें एक दूसरे से साझा करना, छोटी-बड़ी सभी बातों पर एक दूसरे की सलाह लेना, साहित्य पर चर्चा करना हमारा रोज़ का काम हो गया था। मोहिनी छोटी-छोटी बातों में आनंदित रहने वाली, ख़ुशमिज़ाज और मिलनसार लड़की थी। अपने मधुर व्यवहार और अपनी प्रतिभा से बहुत कम

समय में ही उसने सहकर्मियों के बीच अपनी अच्छी जगह बना ली। उसे इंदौर शहर अच्छा लगने लगा था। मैडम को मेरा चेहरा देखकर यह समझ में आ गया था कि मैं मोहिनी को पसंद करने लगा हूँ। मैडम ने मोहिनी से मेरे बारे में पूछकर हम दोनों की शादी फिक्स कर दी। अचानक हमारे घर में एक ख़ुशनुमा माहौल छा गया। एक छुट्टी के दिन मोहिनी के और मेरे पेरेंट्स को बुलाकर होटल श्रीमाया में हमारा रोका कर दिया। मैडम तो ख़ुशी से खिली पड़ रही थीं। उनके उत्साह का ज्वार पूर्णिमा की लहरों-सा ऊपर ही ऊपर उठता जा रहा था। मैडम ने मुझे मानस पुत्र मान लिया था और उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे मैडम के नाम से सम्बोधित मत किया करो, मुझे आंटी के नाम से बुलाया करो। मेरी शादी मोहिनी के साथ इंदौर में बड़ी धूमधाम से हुई और शादी का पूरा खर्चा मैडम ने उठाया। शादी की रात को आंटी का बंगला हरसिंगार की ख़ुश्बू से महक रहा था। हम आंटी के साथ नीचे ही रहने लगे थे। आंटी ने हमें उनका अपना एक बेड रूम दे दिया था। मोहिनी भोजन बहुत स्वादिष्ट बनाती है। अब कुक को कुछ समय के लिए छुट्टी दे दी गई है। भाटिया आंटी सरल स्वभाव की संस्कारी बहू को पाकर निहाल हो गई थी। समय कहाँ रुकता है। दिन महीने गुज़रते गए और मेरा प्रमोशन तथा मेरा स्थानांतरण नीमच हो गया। मोहिनी ने भी अपना स्थानांतरण नीमच करवाया। हम रिलीव होकर नीमच चले गए। घर से जाते समय भाटिया आंटी की आँखों से आँसुओं का सैलाब थमने का नाम नहीं ले रहा था। हम दोनों की आँखें भी भीगी हुई थीं। उनसे दूर जाते हुए मन भारी-सा हो रहा था। आंटी मुझे और मोहिनी को गले लगाते हुए बोली, "तुम्हारा ही घर है आते रहना।" फिर वे अपलक हमें निहारती रहीं। हमारे दोनों हाथ प्रणाम की मुद्रा में जुड़ गए थें। देर तक वे मेरी आँखों में बनी रही, ओझल होने के बावजूद भी। पूरे रास्ते भाटिया आंटी का चेहरा आँखों के सामने बार-बार आ रहा था। वक़्त के साथ-साथ बहुत कुछ छूट जाता है, कुछ रिश्ते, कुछ जगहें, कुछ वादे और कुछ सपने, बस कुछ नहीं छूटता तो वह है, कुछ पुरानी आदतें। बस, मुझे चाय पीने की आदत थी लेकिन भाटिया आंटी के साथ रहकर ब्लैक कॉफ़ी पीने की आदत हो गई थी। अब जब भी मैं ब्लैक कॉफ़ी पीता हूँ, मुझे भाटिया आंटी की याद आ जाती है। मुझे पिछले चार सालों में कहीं से नहीं लगा था कि मैं भाटिया आंटी के यहाँ पेइंग गेस्ट के रूप में रह रहा था।

करतल ध्वनि से पूरा सभागृह गूँज उठता है! कहानी संग्रह का विमोचन हो चुका है। मैंने और मोहिनी ने पुस्तक की प्रत्येक कहानी पर सारगर्भित चर्चा की। मुख्य अतिथि वरिष्ठ कथाकार दीनानाथ चौबे ने अपने वक्तव्य में कहा, "लेखिका अपने आसपास के परिवेश से चरित्र खोजती हैं। वे आम जीवन से अपने पात्र उठाती हैं। कहानियों के पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। डॉ. भाटिया एक ऐसी कथाकार हैं जो भारतीय जनमानस की पारिवारिक पारम्परिक स्थितियों, मानसिकता, पीढ़ीगत अंतराल के कई पक्षों को यथार्थ की कलम से उकेरती हैं और वे भावनाओं को गढ़ना जानती हैं। लेखिका के पास गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़ है।" इस कार्यक्रम के अध्यक्ष ने अपने उद्‌बोधन में कहा, "कथाकार ने जीवन के यथार्थ का सहज और सजीव चित्रण अपने कथा साहित्य में किया है। कहानियों के पात्र अपनी ज़िंदगी की अनुभूतियों को सरलता से व्यक्त करते हैं। कहानियों के चरित्र वास्तविक चरित्र लगते हैं, कृत्रिम या थोपे हुए नहीं। कथाकार कथानक के माध्यम से पात्रों के अतल मन की गहराइयों की थाह लेती हैं।"

मेरा और मोहिनी, दोनों का कहानी संग्रह अभी अधूरा है। दोनों के कहानी संग्रह का नाम भी "पेइंग गेस्ट" ही रहेगा। मोहिनी शादी के बाद भाटिया आंटी को मम्मीजी बोलने लगी थी। इसलिए मैं भी आंटी को मम्मीजी बोलने लगा हूँ।

आज मैं और मोहिनी नीमच जा रहे हैं। हमारे साथ कुछ दिनों के लिए मम्मीजी भी नीमच जा रही हैं।

000

लघुकथा

सॉरी

राजेश पाठक

अमर बाबू एक सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त हो स्थाई तौर पर रहने के लिए अपने पैतृक घर लौट आए थे। उनकी पेंशन से संबंधित कागज़ात अभी भी अधूरे ही थे जिसके कारण उन्हें समय-समय पर दरियाफ्त करने हेतु घर से 50 किलोमीटर दूर अवस्थित सरकारी कार्यालय जाना पड़ रहा था।

एक दिन की बात है वे पुन: पेंशन संबंधी कार्य को लेकर घर से दफ्तर जाने के लिए एक कोच बस में सवार हुए। सीट भी मिल गई। थोड़ी देर बाद एक स्थान पर उस कोच बस में एक युवती सवार हुई और उनसे सटी ख़ाली सीट पर बैठ गई।

आगे चलकर सड़क पर बड़े-बड़े गड्ढे होने के कारण बस हिचकोले खाने लगी और उनका शरीर ज़ोर से साथ बैठी उस अनजान युवती के शरीर से जा टकराया। टकराते ही अमर बाबू, अंदर ही अंदर शर्मिंदगी का भाव लिए उस युवती से कहा - सॉरी बेटी!

वे कुछ और बोलने जा रहे थे कि बीच में ही उन्हें टोकते हुए उस युवती ने कहा - जब बेटी कह दिया फिर आगे और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है...

000

राजेश पाठक,
जिला सांख्यिकी पदाधिकारी,
गोड्डा,
झारखंड - 814133
ईमेल- hellomrpathak@gmail.com

ममा ! मुझे भी डेट पर जाना है !

पंजाबी कहानी

मूल लेखक : अजमेर सिद्धु

अनुवाद : नीलम शर्मा 'अंशु'

अजमेर सिद्धु
द्वारा जंडे हेयर ड्रेसर्स, चंडीगढ़ रोड,
नवांशहर - 144514 (पंजाब)
मोबाइल- 94630 63990

नीलम शर्मा 'अंशु'
मोबाइल- 9830293585
ईमेल- rjneelamsharma@gmail.com

मैं ओ पी डी से बाहर निकलने ही जा रही थी कि दूर से आती एम्बुलेंस की आवाज़ से मेरे कदम वहीं रुक गए। ओह नो.... कह कर मैंने घड़ी देखी। बच्चे आधे घंटे तक स्कूल से लौट आएँगे। आज उनके पास घर की चाबी भी नहीं है। सुबह उन्हें चाबी देना मैं ही भूल गई थी। पहले तो जिस दिन मेरी कॉल होती थी, जगदीप उन्हें पिकअप कर लेते थे। दस दिनों से पति देव घर पर नहीं हैं। वे रेजिडेंसी की तैयारी के लिए डॉ. बाफन के पास हफ्ते भर के लिए गए हैं। सरदार साहब ने तीन दिनों का प्रोग्राम और बढ़ा लिया कि कैलेगरी में प्रगतिशील संघ का सेमिनार है। नई कार्यकारिणी का चयन होना है और अगले दिन नारी अधिकारों की रक्षा विषय पर एक वक्तव्य भी देना है। एम्बुलेंस की आवाज़ और तेज़ हो गई है। मरीज़ की हालत पता नहीं कितनी क्रिटिकल होगी। पता नहीं कितना समय लग जाए उसके पीछे। उतनी देर बच्चे घर के बाहर ही खड़े रहेंगे। यह तो मैं ही डरती जा रही हूँ। माँ हूँ न।

मन ही मन जगदीप को कॉल करती हूँ, उनका जवाब सुनाई देता प्रतीत होता है –"डॉ. साहिबा, यह कैनेडा है, इंडिया नहीं है।" अभी तो पिछले दिनों इंडिया गई थी मैं, भतीजे की लोहड़ी पर। यह देख कर चकित रह गई कि लोगों ने फूल से बच्चे टेलिविज़न के सामने बिठा रखे हैं। बच्चों के हाथों में बड़े-बड़े मोबाइल थमा रखे हैं। फिल्मों, गीतों और वीडियो गेमों में मशगूल कर रखा है। चचेरे भाई के शब्द अभी भी कानों में गूँज रहे हैं - "यहाँ छह महीने तक की बच्ची सुरक्षित नहीं है। लड़कों को पता नहीं कौन नशों की लत लगा दे।" लगता है इस डर से वे बच्चों को घरों से बाहर नहीं निकालते। वहाँ के अंग्रेज़ी दैनिक की रिपोर्ट मेरी आँखों के समक्ष घूम रही है–"घर, स्कूल और धार्मिक संस्थाओं में अपनों से ही बच्चियाँ ज़्यादा असुरक्षित हैं।"

ख़ैर ! यहाँ अभी बच्चे बचे हुए हैं। फिर भी सोच रही हूँ, मुझे क्या ज़रूरत थी कॉल लेने की ? मेरी बेटी स्वरीत तब 16 साल की थी परंतु दिखने में भरपूर युवा। गोरों के बच्चों की भाँति अच्छे डील-डौल वाली। जब कढ़ाईदार सूट पहनती है, ख़ूब जंचती है। अब स्कूल की ग्रैजुएशन कर रही है। उससे छोटा हर्ष तो मरियल-सा है। इसे भी बेटी की भाँति सँभाल-सँभाल कर रखती हूँ। अब बच्चे बस से उतर कर बाहर खड़े रहेंगे। अस्पताल से समय पर ही निकल जाती, अचानक एमरजेंसी आ गई। बच्चों को पिक-अप करने के लिए मैं अपनी कलीग डॉ. किरण को कई बार फ़ोन मिला चुकी हूँ परंतु नो रिप्लाई हो रहा है।

मेरे सामने बार-बार स्वरीत की ऊँची-लंबी डील-डौल घूम रही है। वैसे तो मैंने भी उसके पापा की भाँति उसे पूरी आज़ादी दे रखी है। वह अच्छा खाए, अच्छा पहने। घुट-घुट कर न जीये। मेरी बेटी उड़ती फिरे परंतु धरती पर ही रहे। अपनी संस्कृति सीखे। जगदीप मुझे और बच्चों को

वीकेंड पर गुरुद्वारा साहब भी ले जाते हैं। वे यहाँ की भाँति उन्मुक्त विचारों के ही हैं। वे चाहते हैं कि हमारे बच्चे बढ़िया जीवन गुज़ारें। डॉक्टर-इंजीनियर बन कर दिखाएँ। हमारी बिटिया है भी इंटेलीजेंट। हाँ, कक्षा में टॉप करती है। मेरी भाँति उसके दादा जी भी फ़िक्रमंद रहते हैं। इंडिया से उनका फ़ोन आता है -"बेटा जी, बिटिया जवान हो रही है। ऐसे ही न किसी गोरे-काले के चक्कर में फँस जाए। इसे अपने धर्म-जाति-बिरादरी के बारे में बताया करो।" जगदीप अपने डैडी की बात सुनकर हँसी में टाल देते हैं परंतु मैं गंभीर हो जाती हूँ। अभी भी मेरा ध्यान बच्चों की तरफ ही है। एम्बुलेंस की आवाज़ बंद हो गई है। मैं पाँच मिनट में नर्सिंग स्टेशन पहुँच गई हूँ। नर्स साशा ने मरीज़ की फाइल तैयार कर मेरे सामने रखी है....छह वर्षीया यह बच्ची अस्थमा के सीवियर अटैक से तड़प रही है। ठीक तरह से पफ़र न लेने के कारण यह फिर से बीमार हो गई है।

ये गोरे लोग बच्चों पर ध्यान ही नहीं देते। हम तो बच्चों की बहुत केयर करते हैं। मैंने मरीज़ को नेबुलाइज़ किया। ऑक्सीजन लगा कर मरीज़ की तरफ देखने लगी हूँ। ध्यान तो मेरा स्वरीत और हर्ष की तरफ है। वैसे तो ये बच्चे बहुत एडवांस हैं परंतु यहाँ क्राइम का कुछ पता नहीं चलता। मैंने बच्ची को चेक किया, यह पहले से ठीक है। बच्ची के स्वास्थ्य में सुधार देख तुरंत निकलने का निर्णय लिया। नर्स को हिदायत देकर कार की स्पीड बढ़ा दी है। ओह हो, मैं बेकार ही डरे जा रही हूँ। वे रॉक्सी के घर चले जाएँगे। आख़िर रॉक्सी स्वरीत की सीनियर रही है। उसकी सहेली भी है। रॉक्सी की मॉम सैंडरा उसकी टीचर है। वैसे भी ये गोरियाँ बहुत हेल्पफुल हैं परंतु इनका कान्टैक्ट नंबर घर पर होगा। इसी सोच-विचार में पता ही नहीं चला कब मेरी कार की ब्रेक घर के सामने आकर लगी। वाह जी, वाह यह तो वही बात हुई। सैंडरा और रॉक्सी इन्हें लेकर अपने घर की तरफ जा रही थीं। मेरी कार देख चारों रुक गए हैं। मैंने कार पार्क कर दोनों से हाथ मिलाया।

"थैंक्स सैंडरा...थैंक्स रॉक्सी।" उन्होंने मुस्करा कर मेरा हाथ दबाया। स्वरीत और हर्ष मुझसे आ लिपटे हैं। माँ बेटी दोनों हाथ हिलाते हुए चल दीं। इनके चेहरे खिले हुए हैं। मैं और जगदीप भी यही चाहते हैं कि हमारे बच्चे भी इनकी तरह चहकते रहें। बाहर तक सुनाई दे रही हमारे लैंड फ़ोन की आवाज़ कितनी तेज़ है। मंदीप का होगा। वह पहले भी मोबाइल पर लगा रही थी। भीतर प्रवेश करते ही बच्चे कोक, केक, चॉकलेट और कुकीज़ खाने-पीने में जुट गए हैं। मैंने अभी टेबल पर पर्स रखा ही था कि फ़ोन फिर से घन-घना उठा।

"शीरी दी, कहाँ बिजी हैं, मैं दो घंटों से फ़ोन किए जा रही हूँ।" मुझसे छोटी मंदीप की साँस फूल रही थी।

"बहना मुझे अस्पताल में ही देर हो गई थी। अभी घर में एंटर किया ही है। तुम क्यों घबराई हुई हो ? घर पर सब ठीक-ठाक है न?" मुझे फ़िक्र सी हो गई।

"आपकी सहेली हरबिंदर अटवाल का मर्डर हो गया है।"

"ओ माय गॉड ! किसने किया ?" मैंने दिल थाम लिया।

"उसके पति ने। उसके वर्क प्लेस में जाकर कहा, तेरा करैक्टर ठीक नहीं हैं। दीदी आपने समाचार नहीं सुने? दोपहर से सारा मीडिया यही ख़बरें रिपीट किए जा रहा है।" मैंने मंदीप का फ़ोन बीच में ही काट दिया। डॉ. किरण का भी फ़ोन आ रहा था। अब मुझमें फ़ोन सुनने की हिम्मत नहीं रही थी। मैं सोफे पर अधलेटी सी हो गई। आँसू ख़ुद-ब-ख़ुद बहने लगे..... मुझे याद आया, तब हम नए-नए बेंकुवर में आए थे। मुझे कैनेडा के मेडिकल सिस्टम के बारे में कुछ भी पता नहीं था। एक शादी में डॉ. किरण मिली थी। उसने ही मेरी मेडिकल परीक्षा देने और तैयारी करने में मदद की थी। उसके कहने पर ही मैंने सिक्योरिटी का कोर्स किया था। उसका कहना था, पढ़ने वालों के लिए यह जॉब बहुत फ़ायदेमंद है। नौकरी के पहले ही दिन जिस ख़ूबसूरत युवती ने मेरा स्वागत किया, वह हरबिंदर ही थी। हम दोनों की एक ही बिल्डिंग में ड्यूटी थी। हमारे पास बहुत बड़ी और लंबी बिल्डिंग थी जिसकी हम चौकीदारी करते। एक चक्कर मार कर जाने और आने में एक घंटा लग जाता था। जब उसे पता चला कि मैं कैनेडा में डॉक्टर की जॉब की तैयारी कर रही हूँ तो वह मुझे एक या दो चक्कर ही लगाने देती। मैं सुपरवाइज़र बराड़ अंकल को एक घंटे बाद रिपोर्ट कर देती। बाकी समय मैं बैठ कर कंप्यूटर पर पढ़ाई करती रहती या नोटस् तैयार करती। वह मेरा राउंड भी लगा लेती। घर पर आना- जाना भी बढ़ गया था। वह मेरे बच्चों की मौसी बन गई थी और मैं उसके बच्चों की।

अपने पति से उसकी नहीं बनती थी। एक बार मैंने उसके चेहरे पर नीले निशान देखे। आँखें सूजी हुई थीं। मेरे पूछने पर झूठ-मूठ हँसते हुए कहा - "डॉक्टर बहना, रात को बाथरूम में गिर गई थी।" मुझे लगा वह अनेक भारतीय महिलाओं की भाँति पति का अत्याचार सहती जा रही है। मेरे और जगदीप के कहने के बावजूद उसने कभी भी पुलिस को सूचित नहीं किया। उसके साथ काम करते-करते मैंने मेडिकल का टेस्ट पास कर लिया था। डॉ. किरण को मुझसे दो साल पहले मैनीटोबा की राजधानी विनिपेग के निकट एक शहर में रेसिडेंसी मिल गई थी। दो साल बाद मैं भी जगदीप और दोनों बच्चों के साथ यहाँ ही शिफ्ट हो गई थी। जब हम बेंकुवर से यहाँ शिफ्ट होने जा रहे थे, हरबिंदर मुझे आलिंगन से न छोड़े। ख़ुद भी रोती रही और मुझे भी रुलाती जाए। मरजाणी बहुत स्नेह ले रही थी। मुझे यहाँ आए आठ साल हो गए हैं। उसने अब तक दोस्ती कायम रखी थी। अब मंदीप के फ़ोन ने मुझे हिला कर रख दिया है। उसके बच्चों का क्या होगा?

मैं अपने बच्चों की तरफ निहारती हूँ। वे खेलने में मग्न हैं। उसके बिलख रहे बच्चों के बारे सोच कर आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली है। बेटी और बेटा दौड़े आए हैं।

"क्या हुआ मम्मा?" उन्होंने मेरे आँसू पोंछे। मैंने चेहरे पर मुस्कान बिखेर कर उन्हें फिर से खेलने भेज दिया। उनके डर से मैंने टी. वी. भी नहीं चलाया। अपनी मौसी का क़त्ल देख कर सहम जाएँगे। बेटी के दिल में तो उम्र भर के लिए ख़ौफ़ बैठ जाएगा। इस क़त्ल ने

कौम में दहशत और ख़ौफ तो भरना ही था साथ ही कैनेडियन हम भारतीयों से नफ़रत करना शुरू कर देंगे। कुछ स्थानीय लोग तो पहले ही हमसे ख़ार खाए बैठे थे।

मुझे याद आ रहा है जब मैं और जगदीप एक मार्केट में घूमते हुए एक गोरे की टिप्पणियों का शिकार हुए थे। फिर जब जगदीप वॉलमार्ट में नौकरी कर रहे थे, तब भी ऐसी ही घटना घटी थी। सहकर्मी गोरे ने जगदीप की पगड़ी को छू कर देखा और कहा - "मिस्टर सिंह एक तरफ तो आप लोग पगड़ी बाँधते हैं। धार्मिक कहलाते हैं। दूसरी तरफ अपनी बीवियों का क़त्ल कर देते हैं? अगर नहीं निभती तो तलाक क्यों नहीं ले लेते?" यह सुन कर एक बार तो जगदीप भौंचक्का रह गए थे। उनसे धर्म पर आघात सहा न गया। फिर उन्होंने हिम्मत करके कहा –"सभी सिक्ख ऐसे नहीं हैं। मैं कैनेडा के प्रगतिशील संघ का सक्रिय कार्यकर्ता हूँ। अब कैनेडा मेरा भी देश है। मैं यहाँ के क़ानून और रीति-रिवाज़ों के अनुसार जीवन-यापन करता हूँ।" गोरा संतुष्ट न हुआ। कंधे झटक कर आगे बढ़ गया। जगदीप जी का चेहरा उतर गया। एक भय और आतंक-सा दिल पर छा गया। ऐसा भय तब मेरे चेहरे पर भी फैल गया था, जब सेंट पॉल अस्पताल में असेस्मेंट के दौरान मुझे बुखार हो गया था। उस दिन कॉफी पीते हुए एक गोरी डॉक्टर एक टक मेरी तरफ देखे जा रही थी। मेरा उतरा हुआ चेहरा देख कर बोली -"डॉ. शीरी बड़ैच, आप घर में सुरक्षित हैं? आपकी जान को ख़तरा तो नहीं न? आप पुलिस सेवाओं से परिचित हैं न?"

"मेरे पति ऐसे नहीं हैं, वे प्रगतिशील विचारधारा के हैं। मुझे बहुत प्यार करते हैं।" मैंने बड़ी मुश्किल से ही उसे संतुष्ट किया था। डॉ. किरण का फिर फ़ोन आ गया है। वह भी हरबिंदर की बात लेकर बैठ गई है। मेरे आँसू फिर से बहने लगे। डॉ. किरण मुझे चुप करवाती है। उसके कहने पर मैंने हाथ-मुँह धोया। मैंने पोशाक बदल कर शाशा से मरीज़ के बारे पूछा। ओके रिपोर्ट मिलने पर मैं लैपटॉप पर मरीज़ों के विषय में नोट लिखने लगी। पता नहीं क्यों? लिखने के बजाय मुझे गाँव की एक घटना याद हो आई है।

तब मैं सातवीं या आठवीं में पढ़ती थी। हमारे गाँव में सबसे बड़ा घर और आँगन बिशन सिंह ताऊ का था। उनकी बड़ी बेटी इंद्रजीत कौर मुझसे दस-बारह साल बड़ी थी। कहते हैं रात को इंद्रजीत के पेट में दर्द उठा। तड़के वह चल बसी। मेरी ताई उनके यहाँ अफसोस करके लौट कर मेरी मम्मी के पास बैठ गई। मैं भीतर पढ़ रही थी।

"बहन, बड़े आँगन वालों के साथ बहुत बुरा हुआ। दूध-मक्खन से पाली-पोसी जवान बेटी चल बसी। कितनी कम उम्र लिखवा कर लाई थी। रब के रंगों को कौन टाल सकता है।"

"पेट दर्द से ही तड़के चल बसी।" मेरी मम्मी बहुत चिंतित थीं।

"अरी देवरानी, कम्बख्त पेट दर्द से भला कहाँ मरी? छठा-सातवाँ महीना चल रहा था। पाँव भारी होने का माँ को पता नहीं चला, नहीं तो कोई चारा कर लेती। पिता को पता लगने की देर भर थी, गला दबा कर मार डाली। सरपंच के साथ साँठ-गाँठ की और सुबह होते ही संस्कार कर दिया।" ताई मम्मी के कानों में फुसफुसा रही थी।

"दाता, अगर बेटियाँ देनी हैं तो इज़्ज़त रखने वाली देना। तुम्हारे ही हाथों में सबकी इज़्ज़त है।" मम्मी ने ऊपर की तरफ हाथ जोड़े थे।

तब मैं बच्ची थी। मम्मी और ताई की पूरी बात समझ नहीं पाई थी। यूँ मैं इंद्रजीत की मौत के बारे सुन कर डर ज़रूर गई थी। डरी हुई तो मैं अभी भी हूँ। पिछले दिनों मैं रोज़ रात को इंद्रजीत की चर्चा छेड़ लेती। रात को मुझे बुरे-बुरे सपने आते। इस डर से मुझे जगदीप जी ने निकाला था।

" मैडम जी, अब आप कैनेडा के मुताबिक जीओ। अतीत को भूल जाओ।" उसे तो मैं भूल गई। हरबिंदर को कैसे भूलूँ? उसका गोल-मटोल और हँसमुख चेहरा मेरी नज़रों के सामने घूमता रहता। मैंने स्वरीत और हर्ष को बेडरूम में लाकर ड्रेस बदलवाई है। सूप पिलाया है। पढ़ने के बजाय स्वरीत मूवी में और हर्ष गेम खेलने में व्यस्त हो गया है। मैंने बच्चों से चोरी बेडरूम वाला टीवी चलाया। टीवी पर कटी-फटी लाश देख कर मेरा जी घबराने लगा। कैसा ज़ालिम आदमी होगा। इतनी बेरहमी से काट डाला? मैं तो बच्चों के कारण रो भी नहीं सकती। जगदीप के फ़ोन की घंटी बजी है...हलो कहते ही मेरी रुलाई फूट पड़ी। इन्होंने मुझे दिलासा दिया। मेरी हिचिकयाँ कम हो गईं।

जगदीप हरबिंदर के पति को गाली-गलौज करने लगे-"साले बड़े दिलेर अणखी बने फिरते हैं। मामा-बुआ की बेटियों से शादी रचा कर यहाँ आए हैं। इन्होंने तो हमारा धर्म और धर्मग्रंथ नहीं बख्शे। हर जायज़-नाजायज़ तरीका इस्तेमताल कर यहाँ आकर डेरा डाला है। अब बड़े सच्चे सूरमा बनने चले हैं।" जगदीप ने हरबिंदर की कितनी ही बातें याद दिलाई हैं। इन्हें भारतीयों के ऐसे चरित्र से बहुत नफ़रत है। इस पक्ष से वे गोरों की तारीफ़ कर रहे थे। इनके चार शब्दों से मैं सँभल गई हूँ। मैंने लिविंग रूम में आकर बेटी को आलिंगन में लिया। लैंडलाइन की घंटी बजने लगी। मैंने आलिंगन से बेटी को अलग किया। फ़ोन मन्दीप का ही होगा। मैं नहीं उठाती, यह लड़की पागल कर देगी। फिर पूछेगी –"शीरी दीदी, हमारे इंडियन ही लड़कियों को क्यों मारते हैं?" अलग-अलग चैनलों पर यही सवाल इंडियन लोगों से पूछा जा रहा है। मैंने फिर से बेडरूम में आते ही टीवी चलाया है। लहू-लुहान लथपथ लाश पर बार-बार कैमरा दिखाया जा रहा है। लहू का छप्पड़ देख कर तो दिल ही डूबा जा रहा है। ऐंकर ज़ोर-ज़ोर से बोल कर लानतें दे रहे हैं। इनकी आवाज़ें माहौल को और भी डरावना बना रही हैं। लाश देख कर तो मेरा पहले ही बुरा हाल था। इन सूटेड-बूटेड ऐंकरों के शोर-गुल ने और भी भयभीत कर दिया है।

मैं टीवी बंद करके रसोई से रेडियो उठा लाई हूँ। एफ एम पर हरबिंदर के बारे में टॉक शो चल रहा है। कैनेडा में इंडियन्स की इल्लीगल एंट्री, झूठे इमीग्रेशन, ड्रग का धंधा औरतों के क़त्ल का मामला गर्माया हुआ है। एक गोरा कह रहा है – "एशियन कल्चर पिछड़ी हुई है।" सब लोग हरबिंदर के क़त्ल

की आलोचना कर रहे हैं। टांडी मंगते की कॉल आई है। यह कमीना लड़कियों के पाश्चात्य सभ्यता के अनुसरण के कारण बिगड़ने का दोषारोपण कर रहा है। कई उदाहरण देकर लड़कियों द्वारा की गई ठगी की बात कर रहा है। अप्रत्यक्ष रूप से यह क़त्ल को जायज़ ठहरा रहा है और पंजाबियों के स्वाभिमान और गैरत को ख़तरे में बता रहा है। होस्ट ने उसकी कॉल काट दी है। दूसरे कॉलर उसे गाली-गलौज कर रहे हैं। वह पंजाब के पुराने गाँवों के स्वाभिमान की बात कर रहा था।

मेरा ध्यान भी अपने गाँव से जा जुड़ा। जहाँ आठवीं तक स्कूल है। बहुत से माता-पिता लड़कियों को शहर नहीं भेजते थे। जो भेजते भी, वे दसवीं या बारहवीं के बाद छुड़वा देते। मैं और ताऊ जी की बेटी कमल एक साथ कॉलेज जाने लगीं तो उन्होंने कमल की पढ़ाई छुड़वा दी। ताऊ के बेटे मेरा भी कॉलेज छुड़ाना चाहते थे परंतु कैनेडा वासी डैडी का ख़्वाब था कि मैं डॉक्टर बनूँ। हमारे भारतीय लोग कौन सा डॉक्टर लड़कियों को नहीं मारते? समाज के अच्छे भले लोगों को डिस्टर्ब कर देते हैं। मेजी चाचा गाँव का सरपंच था। जब हम कैनेडा आए, उससे दो-चार साल पहले चाचा के साथ यह घटना घटित हुई थी। उनकी बेटी ज्योति ने नया-नया कॉलेज जाना शुरू किया था। एक दिन वह कॉलेज से वापस नहीं लौटी। उन्होंने ढूँढ़ने के लिए बहुत दौड़-भाग की परंतु न तो वह मिली और न ही घर वापस आई। कई दिनों के बाद पता चला कि उसने गाँव के समगोत्रीय लड़के से शादी कर ली थी। वे कहीं छुप कर रहने लगे थे। मेजी चाचा को बेटी के भागने का ग़म मार गया। उन्होंने ख़ुद को कमरे में कैद कर लिया था। पूरी तरह शौकीन चाचा के सिर के बाल बिखरे रहते। भिखमंगों जैसी दाढ़ी। वह न तो नहाते, न किसी से बात करते। सारा दिन बड़बड़ाते रहते। चाची उन्हें छोटे बच्चों का वास्ता देकर काम पर जाने को कहती। उन पर कोई असर न होता। गाँव के बुज़ुर्गों और रिश्तेदारों ने भी बहुत ज़ोर डाला पर वे ख़ुद को मारने लगे। लोग उन्हें मेजी पगलू कहने लगे। उनसे डर लगता।

उन दिनों मैं अमृतसर में एम बी बी एस कर रही थी। मुझसे छोटी मंदीप ने भी नया-नया कॉलेज जाना शुरू किया था। यह उलट-पलट कर बाल बनाती। वैसे भी इसे बनने-सँवरने का बहुत शौक है। यह हँसमुख और मज़ाकिया स्वभाव की है। मेरी मम्मी उसे टेढ़ी निगाहों से देखती और अक्सर कह देती - "दीप पुत्तर हमारी इज़्ज़त का ख़याल रखना, अपने मेजी चाचा की दुर्दशा देख लो। कहीं तुम्हारे डैडी का भी यही हाल न हो। वे बेचारे विगत बीस बरसों से तुम लोगों की ख़ातिर कैनेडा में बैठे हैं।"

"मम्मी कोई खा जाएगा क्या? और ये पाबंदिया लड़कियों पर ही क्यों?" क्रोध से जली-भुनी मन्दीप मम्मी को खाने को दौड़ती। यह पगली तो डैडी जी से भी पिल पड़ती थी। डैडी का मानना था कि ज़माना ख़राब है। लड़कियों को सँभल कर चलना चाहिए। जब हम युवा हो रही थीं, उनके माथे की त्योरियाँ बढ़ रही थीं। जैसे अब स्वरीत को देख कई बार मेरे माथे पर बल पड़ जाते हैं। ये त्योरियाँ मैंने कभी सैंडरा के माथे पर पड़ते नहीं देखी। सैंडरा की डोर बेल ने मेरा माथा ठनका दिया है। लगता है उसका ब्वॉयफ्रेंड जस्टिन आया है। सैंडरा ने दरवाज़ा खोला है। एक-दूसरे को आलिंगन में लेते हुए वे भीतर चले जाते हैं। मैं भी भीतर आ गई हूँ। लैप-टॉप ऑन करके मरीज़ों की हिस्ट्री लिखने लगती हूँ। शुक्र है मन्दीप का फ़ोन दुबारा नहीं आया। अब आए भी मत। मुझे जगदीप ने बड़ी मुश्किल से उदासी से निकाला था। मुझे रॉक्सी और सैंडरा जैसी लड़कियाँ और बूढ़ियाँ अच्छी लगने लगी हैं। लगभग चार साल पहले सैंडरा का अपने पहले प्रेमी और पति डैब से ब्रेक-अप हो गया था। वह दोनों बेटों को लेकर कहीं और रहने लगा था। सैंडरा के पास रॉक्सी थी। तब यह दस-बारह हफ्तों तक उदास रही थी। फिर इसकी ज़िंदगी में जस्टिन आ गया था। तब से मैं इसका मुस्कराता चेहरा देख रही हूँ। हमारे घर आमने-सामने हैं। यहाँ हमारा ही एकमात्र हिंदुस्तानियों का घर है। बाकी सभी गोरों के हैं। जगदीप उनके बीच रह कर ख़ुश रहता है। हमारे दाईं तरफ लीयम और उसके मम्मी-डैडी रहते हैं। मैं इन सबकी फ़ैमिली डॉक्टर हूँ। जब सैंडरा का ब्रेक-अप हुआ था, यह एकदम डिप्रेशन में चली गई। तब से दूसरे या चौथे दिन मेरे पास अस्पताल आती है। मैं अच्छी तरह इसका चेक-अप करती हूँ। इसकी कांउस्लिंग करके इसे तंदुरुस्त किया। यह रॉक्सी को लेकर घर भी आ जाती है। यह स्वरीत की टीचर भी है। स्वरीत को गिटार बजाना सिखाती है। इन माँ-बेटी को हमारे घर का पंजाबी खाना बहुत पसंद है। यह मेरे पति के हाथों का बना खाना ज़्यादा पसंद करती है। वह भी इन्हें पसंद करते हैं। उन्हें स्वरीत और रॉक्सी की दोस्ती भी अच्छी लगती है। मैं अभी डरती रहती हूँ कि कहीं इसका रंग हमारी बेटी पर न चढ़ जाए।

रात हो गई है। जब से पतिदेव कैलेगरी गए हैं, आज पहली बार मुझे डर लगा। खाना खिला कर मैंने बच्चों को सुला दिया। मुझसे तो एक निवाला भी न निगला गया, लहूलुहान-लथपथ हरबिंदर की लाश मेरे सामने घूमने लगती है। मैं आवाज़ किए बगैर वॉशरूम गई हूँ। पानी की बूँदों की आवाज़ से भी डर कर भाग आई हूँ। बत्ती नहीं बुझाई। फिर से पलंग पर गिर पड़ी परंतु नींद नहीं आ रही।

"देखो बेटा, तुम्हारी हँसी हमें न ले डूबे। अरी शीरी, तुम समझदार हो इसे भी समझाया करो।" मुझे और मंदीप से कहे गए मम्मी के ये शब्द दिमाग़ में घूम रहे हैं। मेरा सिर फटने को हो रहा है। अगर मैंने मरीज़ की कॉल न ली होती, मैं नींद की गोली लेकर सो जाती परंतु अस्पताल से कभी भी फ़ोन आ सकता है। आज अगर जगदीप घर पर होते, वह मुझे परेशानी से उबार लेते। वह अच्छा सोचते हैं। उनसे बात कर मैं सोने की कोशिश करती हूँ। अभी आँख लगी ही थी कि अलार्म ने जगा दिया। बड़ी मुश्किल से बिस्तर से उठी हूँ। मैंने बच्चों को नाश्ता करवा, उन्हें उनके दोस्त के घर बर्थडे पार्टी पर छोड़ा। ख़ुद अस्पताल आ गई हूँ। आज डॉक्टरों का राउंड है। बच्ची ठीक हो गई है। दुबारा अस्थमा का अटैक नहीं आया। राउंड लगा कर मैं ओ पी डी में आ गई हूँ। तौबा, तौबा आज तो मरीज़ों से कुर्सियाँ

भरी पड़ी हैं और मेरी तबीयत परंतु मरीज़ तो देखने ही पड़ेंगे। दो बार कॉफी पी चुकी हूँ। सिर दुखना बंद नहीं हुआ। जैसे-तैसे मरीज़ निपटाए।

स्वरीत और हर्ष को बर्थडे पार्टी से लेकर सीधे घर पहुँची। कार पार्क करके, मैंने सोचा आज की डाक भी निकाल लूँ। लेटर बॉक्स से डाक निकालने लगी। सैंडरा मेरे पास आ खड़ी हुई। मैंने हलो कह कर हाथ मिलाया। डाक भी देखती जा रही हूँ। उससे बातें भी करती जा रही हूँ।

"डॉ.शीरी वड़ैच,आय ऐम सो एक्साइटेड फॉर डॉटर्स प्रेग्नेंसी। आय होप एवरी थिंग विल वी ओ के।" वह ख़ुशी और उल्लास से रॉक्सी की प्रेग्नेंसी की बात कर रही है। प्रेग्नेंसी के बारे सुन मुझे झटका लगा है।

"यू नो डॉ., टू फैमिलीज़ आर वेटिंग फॉर दिस बेबी। वी विल प्लैन बेबी शावर। यू शुड शुअरली कम इन पार्टी। आई विल कॉल यू।" वह बातों के मूड में लग रही थी परंतु स्वरीत और हर्ष को जल्दी मचाते देख, मैंने बाय की। बच्चे दौड़ पड़े। वह भी मेरे आगे-आगे चल पड़ी। उसके कदमों में मानों नृत्य की थिरकन हो। धरती पर मानो पाँव न पड़ रहे हों। वह कबूतरी की भाँति मचलती हुई भीतर चली गई। मुझे बिस्तर पर लेटते ही नींद आ गई। वीकेंड के कारण मैं जी भर कर सोना चाहती थी परंतु जगदीप के फ़ोन ने उठा दिया। घंटा भर वे हरबिंदर के पति जैसे पुरुषों के विरुद्ध बातें करते रहे। मैंने पर्दे हटा कर बाहर का नज़ारा देखा। वाऊ! सैंडरा का घर कितना ख़ूबसूरत लग रहा है। रॉक्सी पूर्ण युवा हो गई है। पिछले साल से कॉलेज जाने लगी है। छरहरा सा बदन। नेकर टॉप पहने रहती है। खुले ब्लैंड बाल उसकी ख़ूबसूरती में चार चाँद लगाते हैं। कॉलेज जाते ही लीयम से इसकी दोस्ती हो गई। एक दिन मैं सैंडरा के घर पर थी। गिटार सीखने गई स्वरीत को लेना था और फीस भी देनी थी। उसी दिन मैंने पहली बार रॉक्सी और लीयम को एक साथ देखा था।

"डॉ. यह मेरा ब्वॉयफ्रेंड लीयम है।" रॉक्सी हमारे सामने ही उस पड़ोसी युवक को किस करने लगी। उस वक्त वे दोनों बाँहों में बाँहें डाले बाहर निकल गए थे। मैं तब तक उन्हें जाते देखती रही जब तक वे ओझल न हो गए। और ये रोज़ एक साथ घूमते। कॉलेज भी एक ही कार में जाते। रेस्ट्रो - सिनेमा...हर जगह।

अगले साल मैं वेकेशन पर डिज़नीलैंड गई। मुझे वहाँ रॉक्सी के साथ किसी दूसरे लड़के का भ्रम हुआ। जब मैं वापस आई, वह सचमुच किसी दूसरे लड़के के साथ घूमती दिखी। ये गोरा युवा लड़का उसके साथ जँचता ख़ूब था। उस दिन इसे फ्लू हुआ था। दवाएँ लिखवा कर जाने लगी तो मैंने सरसरी निगाह उस लड़के पर मारी। वह मुस्कराई।

"डॉ. वड़ैच यह मेरा नया ब्वॉय फ्रेंड है।"

"और लीयम ?" हँसते हुए मैंने पहले वाले के बारे में पूछा।

"डॉ. साहब वह मुझे चीट कर रहा था। वह ग्रेसी के साथ भी डेट कर रहा था और मेरे साथ भी। जब मुझे पता चला तो मैंने छोड़ दिया।"

इन्हें देख पतिदेव मुझसे मज़ाक करने लगते – "देख लो, डॉक्टर साहब ये तीसरे दिन ब्वॉय फ्रेंड बदल लेती हैं। सच ही कहते हैं कि यहाँ वर्क, वेदर और वुमैन का कोई भरोसा नहीं।"

"आपको कोई ऐतराज़ ?"

"नहीं जानेमन। मैं चाहता हूँ ऐसी आज़ादी सबको मिले।" मुँह टेढ़ा-सा कर जगदीप ने कहा था।

"इसी आज़ादी के सहारे ही तो यह देश प्रगति पर है। यहाँ आदमी को धर्म, जाति, नस्लों के बेकार रिवाज़ों में क़ैद नहीं रखा जाता। लड़के-लड़कियाँ सब बराबर। भारत में ऐसा कभी नहीं होगा। वहाँ तो लड़कियों की लोहड़ी बाँट कर अख़बारों में फ़ोटो छपवाई जाती है। यह मानसिकता भी लड़कियों के हक में नहीं बल्कि ख़ुद को प्रमोट करने की है।" जगदीप मज़ाक करते-करते गंभीर हो गए थे। सचमुच उनकी सोच को कैनेडा के सिस्टम ने और तराश दिया है, परंतु हम कभी भी उन गोरों जितना एडवांस नहीं हो सकते। फिर जब सैंडरा और पार्कर रॉक्सी के चेक-अप के लिए अस्पताल आए तो मैं उनकी माँग सुनकर चकित रह गई।

"डॉ. क्या यह पता लग सकता है कि बच्चे का पिता कौन होगा?" मैंने उनका सवाल हँसी में टाल दिया और स्कैन लिख दिया। वे अल्ट्रासांउड करवा कर इंतज़ार करने लगे। यह दूसरी बार अल्ट्रासाउंड हुआ था। जैसे ही ईमेल पर रिपोर्ट आई, मैंने उन्हें भीतर बुलाया।

"बेबी तंदुरुस्त है। रॉक्सी, बेबी की पैदाइश तक स्मोक और ड्रिंक मत करना।" तीनों एक-दूसरे को देख मुस्कराए। रॉक्सी ने बेबी कंसीव करने की तारीख जाननी चाही। मैंने अल्ट्रासाउंड से देख लिया कि दिसंबर के अंतिम दिन या जनवरी के शुरुआती दिन हो सकते हैं।

"क्या हुआ, रॉक्सी?" उसे सोच में डूबी देख मैंने सवाल किया।

"डॉक्टर, क्या यह पता चल सकता है कि बेबी कंसीव करने की असली तारीख क्या है?"

"यह क्यों जानना चाहती हो?" उसे कैलकुलेशन में उलझी देख मैं हैरान हो गई थी।

"डॉ. जिस हफ्ते की आप प्रेग्नेंसी बता रही हैं, उसी हफ्ते ग्रेसी को लेकर लीयम से मेरा झगड़ा हुआ था। उसने अपने और ग्रेसी के संबंधों को स्वीकार कर लिया था। मैंने उसी वक्त उससे ब्रेकअप कर लिया था परंतु भीतर से बुरी तरह टूट गई थी। चौथे या पाँचवें दिन हवा के झोंके की भाँति मेरे जीवन में पार्कर आ गया था.....फिर हमने एक साथ ही नए साल के जश्न मनाए। रातें भी साथ गुज़ारी थीं। तब से एक साथ रहते हैं।" रॉक्सी ने बड़ा लंबा सा वार्तालाप सुना दिया।

"रॉक्सी, अल्ट्रासाउंड से प्रेग्नेंसी के शुरुआती दिनों में तो असली तारीख का पता चल जाता है। बाद में मुश्किल होता है।" मैंने न में सिर हिलाया।

"डॉ. वड़ैच प्लीज़ बता दें।" मुझे देख पार्कर ने विनती की।

"सही डेट और सही टाइम के बारे में अल्ट्रासाउंड से पता नहीं चल सकता। पिता के बारे में डीएनए से संभव हो सकता है।"

मेरी यह बात सुन कर उन्होंने थैंक्स कहा और हाथों में हाथ थामे बाहर निकल गए। सैंडरा भी उनके पीछे चल दी। उसके बाद मेरे लिए मरीज़ देखना मुश्किल हो गया। हरबिंदर, इंद्रजीत, ज्योति के मासूम चेहरे मेरे सामने घूमने लगे परंतु रॉक्सी...

इन्हीं दिनों रॉक्सी का जन्मदिन आ गया था। यह उसका अठारहवाँ जन्मदिन था। घर को सजाया गया था। सैंडरा परिवार ने अपने फ्रेंड सर्किल और रिश्तेदारों को आमंत्रित किया था। अपने पूर्व पति और बेटों को भी बुलाया था। रॉक्सी के दोनों ब्वॉय फ्रेंड भी वहाँ टहल रहे थे। उनके माता-पिता और भाई-बहन भी साथ थे। हम चारों प्राणियों का भी स्वागत किया गया। घर में बहुत गहमा-गहमी थी। बड़े आकार का केक काटा जा रहा था। रॉक्सी के दोस्तों, पारिवारिक सदस्यों और स्वरीत ने बारी-बारी से उसके मुँह में केक डाला। जवाँ खून मस्ती के मूड में नज़र आ रहा था। पार्कर ने केक की क्रीम उसके मुँह पर मल दी है। जवानी के शोर-शराबे में सैंडरा उठ खड़ी हुई। उसने अपनी बेटी को चूमा। मेहमानों से ख़ुशी साझा करते हुए कहा –

"वाऊ... वेल डन।" मेहमानों की तालियों से कमरा गूँज उठा। स्वरीत और हर्ष ने भी ताली बजाई। मैं जगदीप के माथे पर त्योरियाँ उभरी देख हैरान और परेशाँ हो गई हूँ। यह सुन कर सैंडरा के मेहमान फूले न समाए। उन्होंने बीयर के कैन उठा लिए। वाइन के जाम टकराए हैं। 'चीयर्स..' की आवाज़ें एक दम ऊँची हो गईं। कभी हुलसित युवक-युवतियों को देखती हूँ तो ख़ुश हो जाती हूँ। जब अपने बच्चों की तरफ देखती हूँ तो घबरा जाती हूँ। बीच-बीच में मेरा ध्यान हरबिंदर, इंद्रजीत और मेजी चाचा की तरफ जा रहा है, वे मुझे पार्टी से अलग एक तरफ खड़े दिखाई देते हैं। मेरा ध्यान फिर से पार्टी पर लौट आया है।

"ओ रॉक्सी, इसका ख़ुशनसीब बाप कौन है ?" एक मनचला गोरा चिल्लाया। सभी मेहमानों ने इस मनचले की तरफ घूर कर देखा परंतु रॉक्सी मुस्करा उठी। उसने कंधे उचकाए। मेहमान भी हँस पड़े परंतु हमें हँसी नहीं आई। जब मैंने हरबिंदर को किसी युवक के साथ उसके संबंधों के बारे में पूछा था, वह बहुत शर्माई थी। उसने दूसरी तरफ मुँह घुमा कर इन्कार में सिर हिलाया था....इधर रॉक्सी आगे बढ़ी उसने लीयम के कंधे पर हाथ रखा है। कितनी चीखें बजी हैं। लीयम के माता-पिता ने क्लैपिंग की....रॉक्सी ने पार्कर को आलिंगन में ले चूमा। उसके माता-पिता और भाई खड़े होकर हाथ हिलाने लगे।

"शीरी, पता नहीं क्यों मेरी आँखों के समक्ष ऐसा लग रहा है मानों यह हरकत स्वरीत कर रही हो।" जगदीप ने धीरे से मेरे कान में कहा।

"लीयम पहले मेरा ब्वॉयफ्रेंड था, अब पार्कर है। इनमें से किसी एक का होगा।" रॉक्सी ने बड़ी बेबाकी से कहा। जगदीप ने ग़ुस्से में मुट्ठियाँ भींची....युवाओं ने हो हो हुर्रे–हो हुर्रे कहा। उसका पिता डैब उठा बेटी को किस किया। दोनों भाई भी बधाई दे रहे हैं। स्वरीत भी बधाई देने के लिए उठी है। जगदीप बड़बड़ाया परंतु स्वरीत 'कॉन्ग्रैटस्' बोल आई है। शकीरा के बीट वाले गीत पर युवाओं ने थिरकना शुरू कर दिया। सैंडरा भी अपने लवर की बाँहों में बाँहें डाले झूम रही है। पूरा लाउंज अल्कोहल की महक और सिगरेट के धुएँ से भर गया। पार्कर और रॉक्सी लीयम से ज़रा परे हट कर डांस में मशगूल हैं। अलग-अलग जोड़ों ने डांस शुरू कर दिया है। हमारे दोनों बच्चे गीत-संगीत में मग्न हो कर सिर हिला रहे हैं। कुछ जोड़े हमारी तरह बैठ कर खा-पी रहे हैं। पर हम दोनों प्राणी सहज नहीं हैं। मेरा तो बुरा हाल है। रॉक्सी के दोनों ब्वॉयफ्रेंडों पर नशा-सा छा गया है। पार्कर उसके साथ डांस करने लगा।

"यह मेरा बेबी होगा, डार्लिंग ?" लीयम ने पास आकर रॉक्सी का हाथ चूमा। पार्कर ने डांस तेज़ कर दिया है। लीयम भी लड़खड़ाते हुए उनके डांस में शामिल हो जाता है। दोनों लड़कों के माता-पिता भी ख़ुश हैं कि उनके बेटे का बेबी आने वाला है। वाइन के गिलास टेबल पर रख वे भी डांस में शामिल हो गए हैं। चारों तरफ नशा है। चेहरों पर लाली है। लोग नशे के सुरूर में हैं। ख़ुशी का इज़हार हो रहा है। स्वरीत का भी नाचने के लिए पाँव उठ रहा है....लीयम अकेला ही लड़खड़ा रहा था। वह हमारे पास आकर रुक गया। 'हाय... हाय' कह कर वह स्वरीत की तरफ बढ़ा है।

"लेटस् डांस बेबी। हैव ए फन.....कम ऑन।" लीयम के शब्दों के साथ शराब की महक भी बाहर आई है। यह सुनकर जगदीप का चेहरा और तप गया। मेरा जी चाहता है कि इस लंबूतरे को एक जड़ दूँ। वह थोड़ा और आगे बढ़ा है। उसने स्वरीत का हाथ पकड़ लिया है। वह भी थिरकती – थिरकती उसके साथ चल दी।

"बेटा....." मैंने स्वरीत को घूर कर बाँह से पकड़ कर बिठाया। मैं घबरा गई हूँ। जगदीप के चेहरे पर एक रंग आ रहा है, एक जा रहा है। इन्होंने दाँत पीसे हैं। उठ कर खड़े हो गए हैं। घर जाने का इशारा कर रहे हैं। बच्चों को समझ नहीं आ रहा कि पापा को क्या हो गया। वे घर जाना नहीं चाहते। पार्टी एन्जॉय करना चाहते हैं। जगदीप हम तीनों की तरफ घूर कर देख रहे हैं.... शीघ्रता से बाहर की तरफ चल दिए। मैंने न चाहते हुए भी, बच्चों को ज़बरदस्ती साथ लिया। मैं तेज़ कदमों से जगदीप के पास पहुँचना चाहती हूँ।

बच्चे पीछे की तरफ देखे जा रहे हैं। स्वरीत तो चिढ़ गई है। हम चारों अपने घर आ गए हैं। लिविंग रूम में ही सोफों पर बैठ गए हैं। जगदीप अभी भी सामान्य नहीं हैं। स्वरीत और हर्ष की तरफ एकटक देखे जा रहे हैं।

"पापा, मेरा भी एक ब्वॉय फ्रेंड है।" स्वरीत ने रॉक्सी की भाँति कंधे उचकाए हैं।

"क्या ?" यह सुनकर मैं तो गई काम से।

"ममा, मैं भी अपने ब्वॉयफ्रेंड के साथ डेट पर जाऊँगी। क्या आप मुझे इजाज़त देंगे?" स्वरीत की पहली बात सुनकर जगदीप बड़बड़ाने लगे हैं। डेट वाली बात सुनकर इनकी आँखों में लाली उतर आई है।

"स्वरीत, तुम्हारा दिमाग़ ठीक है ?" तमाचा मारने के लिए मेरा हाथ उठा है।

"मैं तो जाउँगी, ममा"। इतना कह कर स्वरीत अपने बेडरूम में जा घुसी। दरवाज़ा भीतर से बंद कर लिया। जगदीप का रंग एकदम पीला पड़ गया। सोफे पर ही लेट गए हैं। मैं इनकी हालत देख कर काँप उठी हूँ।

000

फेसबुक मोहल्ला

डॉ. वंदना मुकेश

हालाँकि तुलसी बाबा कह गए हैं, कि 'हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ' फिर भी मनुष्य के मन में स्वयं के नाम और ख्याति की बड़ी गहरी इच्छा रहती है। एक तथाकथित 'बड़े' सज्जन हर रोज़ फेसबुक पर अपने पन्ने पर कुछ न कुछ, सार्थक या निरर्थक, ज़रूर लिखते। उसकी कुछ बानगियाँ देखें –

1- "दो दिन से नहा नहीं सका, पानी ठंडा लगता है।"

2- "यह मेरी माँ की जवानी की तस्वीर है।"

3- "आज खाने में आलू की सब्ज़ी और रोटी बनाई।"

4- "आज दो बजे डॉ. का अपाइंटमेंट है।" इत्यादि

इतना ही नहीं उनके चाहनेवाले, संकोच में ही सही, हर पोस्ट पर कमेंट करते हैं।

याद आता है कि बचपन में विविध भारती पर फरमाइशी गानों के कार्यक्रमों से झुमरीतलैया नाम का शहर पूरे भारत में प्रसिद्ध हो गया था। वहाँ से फरमाइश करनेवाले दो-तीन नाम जैसे रामेश्वर वर्णवाल और नंदलाल सिन्हा रेडियो-श्रोताओं में भी ख़ूब प्रसिद्ध हो गए थे। एक बार रेडियो-उद्घोषिका कांता गुप्ता ने नब्बे के दशक के किसी कार्यक्रम में बताया कि किस प्रकार एक बार रामेश्वर वर्णवाल आकाशवाणी दिल्ली में गए और सारे उद्घोषक -उद्घोषिकाएँ उन्हें देखने इकट्ठा हो गए।

अब सूचना- संचार क्रांति के कारण माध्यम बदल गए हैं और हम बात फेसबुक की कर रहे हैं। तो एक तथाकथित 'बड़े' प्रबुद्ध व्यक्ति हैं। उनका नाम हम सुविधा के लिए श्री 'क' रख लेते हैं। श्री 'क' बुद्धिमत्ता के वर्तमान मापदण्डों पर दो सौ प्रतिशत खरे उतरते हैं। ज़ाहिर है, काफ़ी समझदार'बड़े' हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो उनका एन. आर. आई. होना है। वैसे भी देस में रहो या परदेस में, सुर्खी में रहने के लिए कुछ उठापटक तो करनी पड़ेगी। वरना, चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात। कौन पूछता है जी किसी को? बड़े-बड़े राजे–महाराजे आए और चले गए। आज कोई नाम भी नहीं लेता। लेकिन इसमें भी क्या बुराई है कि जीते–जी तो अपना डंका बजा लें, मरने के बाद कौन देखने आता है? हाँ, कुछ संस्थाओं द्वारा फूलों की माला चढ़ी मुस्कराती तस्वीर ज़रूर जयंती-पुण्यतिथि पर धूल हटाकर रख दी जाती हैं। कार्यक्रम करने की रस्म भी पूरी हो जाती है।

हाँ, तो मैं कह रही थी कि, ये एन. आर. आई. 'बड़े' साहब बहुत ही बड़े और समझदार हैं, सुर्खी में बने रहने के 'ट्रिक्स ऑफ द ट्रेड' के अच्छे जानकार हैं। रोज़ सुबह, यह जनाब फेसबुक पर कुछ न कुछ ज़रूर पोस्ट करते हैं। यह मुझे बहुत अच्छा लगता है कि कोई व्यक्ति स्वयं को व्यस्त रखने को कोई तो तरीक़ा खोज ले, यह एक अच्छी बात है कि फेसबुक जैसे माध्यमों ने बहुतों को उनके अकेलेपन से निजात दिला दी है। लोग अपने आप को व्यस्त रखते हैं। वैसे भी बढ़ती उम्र और ढलती जवानी में कुछ तो शिग़ूफ़े छोड़ने ही पड़ेंगे न। वरना सुर्खियों में कैसे रह सकेंगे ? चाटुकारों से घिरे रहने का खून मुँह लग जाए तो बुरा भी क्या है? हींग लगे न फिटकरी, रंग चोखा। अच्छा, बात यहाँ तक हो तो भी कोई बात नहीं। आप अपने फेसबुक पन्ने पर कुछ भी करें, कुछ भी लिखें, किसी को उससे क्या? लेकिन नहीं जनाब, उनकी समझदारी का किस्सा अभी ख़त्म थोड़े ही हुआ है। उसके बाद वे दुनिया भर के लोगों को उस 'पोस्ट' से 'टैग' कर देंगे।

डॉ. वंदना मुकेश
35 ब्रुकहाउस रोड, वॉलसॉल, इंग्लैंड, WS5 3AE
ईमेल- vandanamsharma@hotmail.co.uk

तुम्हें पढ़नी हो या नहीं, हम तो भई पढ़ाएँगे। भगवान् के लिए अन्य फेसबुकियों पर रहम करें, तरस खाएँ, हमारा दिमाग़ न खाएँ! आप अपने घर में आप खीर खाएँ या सूखी रोटी किसी को क्या मतलब? आप अपने घर में सूट-बूट पहनकर रहें या चड्डी-बनियान! लेकिन मोहल्ले के हर घर में जाकर ढिंडोरा तो नहीं पीटें कि भई आज तो हमने खीर खाई है, या हमने सूट-बूट पहना है। भाईसाहब! घर आपका है, आप कुछ भी करें बंद दरवाज़े के भीतर, हमें उससे क्या लेना देना, भला? और यदि आप ऐसा कर रहे हैं तो भला हमें समझाएँ कि ऐसा क्यों करते हैं? कमाल की बात यह है कि श्रीमान 'क' कभी मोहल्ले में अकेले टकरा जाएँ तो पहचान ही नहीं दिखाते। लेकिन पोस्ट चेंपने से बाज नहीं आते। अब यह तो शिष्टाचार न हुआ कि मिलने पर राम-राम भी नहीं और फेसबुक पर अमुक-तमुक की ख़बर ऐसे भेजी जाए जैसे हम ही सबसे ख़ास हों।

अब आज की ही बात लें, सुबह-सुबह फेसबुक पर मेरे पन्ने पर श्री 'क' के चार पाँच नए नोटिफिकेशन अर्थात् सूचनाएँ थीं। मैं अवाक! भाईसाहब, महीनों हो जाते हैं। ये नज़र आ भी जाएँ तो कोई दुआ सलाम नहीं होती। तो फिर ये ज़ुल्म हम पर क्यों?

अब सुनिए कि नोटिफिकेशन क्या है- तो श्रीमान 'क' ने अपनी पोस्ट में लिखा कि उन्होंने श्रीमान 'ख' और श्रीमान 'ग' से आज तीस साल बाद मुलाकात की। इसके लिए उन्हें अत्यधिक श्रम भी करना पड़ा, किंतु फिल्म नागिन (1954) में वैजयंती माला पर फिल्माए गीत 'ऊँची-ऊँची दुनिया की दीवारें सैंया तोड़ के जी तोड़ के मैं आई रे, तेरे लिए सारा जग छोड़कर' के अंदाज़ में अंतत: मिल ही लिए। उसके बाद उन्होंने फेसबुक पर लोगों के पन्ने पर वह पोस्ट चिपका दी। अब, जहाँ गुड़ होगा वहाँ मक्खियाँ तो आएँगी सो श्रीमान 'क' के तथाकथित क़द का लिहाज़ करते हुए अब श्री च, छ ज...सारी वर्णमाला ने तारीफों के पुल बाँधना शुरू कर दिया। गधा मरा कुम्हार का और धोबिन सती होय की तर्ज पर लोगों ने 'लाइक' की रस्म अदायगी की। उनमें से एक भी न 'ख' को जानता है न 'ग' को, बहुत से तो श्री 'क' को भी नहीं जानते थे, फेसबुकिए मित्र के मित्र के मित्र! 100 लाइक और 50 कमेंट फिर भी मिल गए। 'क' साहब की अहम् तुष्टि का लक्ष्य पूरा हुआ।

एक दिन अपनी जवानी की तस्वीर लगा दी कि 'कॉलेज के दिनों में .....' फिर चापलूसों की प्रतिक्रियाएँ, कि हेंडसम, वाह, लड़कियाँ आप पर मरती होंगी, ख़ूबसूरत तस्वीर आदि। आप ज़रूर लगाइए, लेकिन आपकी जवानी की तस्वीर दूसरों के पन्ने पर चिपका कर आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं? अपनी प्रसिद्धि का प्रचार या अपने अच्छे दिन जाने की असुरक्षा? कुछ भी नहीं, तो माता-पिता तो हर एक के पास सदाबहार तुरुप का पत्ता हैं। एक तस्वीर लगा दीजिए, फौरन सादर नमन, श्रद्धांजलि, स्वीट इत्यादि शुरू हो जाता है। कई बार भेड़-चाल और कमेंट करने की मजबूरीवश कुछ मूर्खतापूर्ण हास्यास्पद कमेंट भी हो जाते हैं। माताजी की उम्र अधिक देख फेसबुक का मँजा हुआ पाठक अंदाज़ से जीवित माँ को 'माताजी की आत्मा को शांति मिले' जैसे कमेंट कर देता है और अपने फेसबुकिया मित्र से जानी दुश्मन कर बैठता है।

ऐसे ही शादी की तस्वीर भी दूसरा तुरुप का पत्ता है, बस एक तस्वीर लगा दीजिए, फिर देखिए कि तारीफ़ भरे कमेंट्स की क्या झड़ी लगती है कि अक्सर महिलाओं को स्वयं में मधुबाला या वहीदा रहमान नज़र आने लगती है तो पुरुषों को भी सिर के गंजेपन और बालों की सफेदी के पीछे छुपे धर्मेंद्र या देवानंद दिखाई देने लगते हैं और फिर बेईमान मन धीरे से गुनगुनाने लगता है कि 'अभी तो मैं जवान हूँ.. '। ख़ैर प्रशंसा किसे नहीं अच्छी लगती?

आज का तो बस उदाहरण दिया था लेकिन समस्या यह है कि कई फेसबुकिये मित्र इस मानसिक शोषण का शिकार हैं। उन्हें बेवजह बेगानी शादी में दीवाना बनना पड़ता है। सामनेवाले की पोस्ट का आपसे कोई वास्ता हो अथवा नहीं। लेकिन जब चेरिटी के टिकिट की तरह लोग अपनी पोस्ट जबरदस्ती चेंप देते हैं, तो कुछ लोग तिलमिलाकर रह जाते हैं और कुछ तथाकथित मित्र और अन्य लोग किसी मजबूरी के मारे, बेचारे, चाहते या न चाहते हुए, शर्म और मजबूरी में कुछ तो लिख ही देते हैं। कहने का तात्पर्य है कि आप 'बड़े' तो बन चुके हैं लेकिन इंद्र की तरह सदा भयभीत रहते हैं। लेकिन इंद्र से ज़्यादा समझदार हैं इसलिए हर कदम फूँक फूँक कर रखते हैं। सिंहासन डोलने की स्थिति न आए इसलिए कभी पोस्ट करने को कुछ न भी हो, तो भी ये 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा' कर पोस्ट बना कर चेंप देते हैं। अब क्या कोई जबरदस्ती है कि हम उस पर स्माइली 'वाह' या तालियों का इमोजी भेजें?

एक दिन 'बड़े' साहब की पोस्ट थी कि 'आज आपके दोस्त ने घर में पोहे बना कर खाए' फिर वही स्माइली 'वाह', तालियों और न जाने क्या-क्या.....का दौर। भाई मेरे, पोहा इंदौरियों की 'स्टेशल डाइट' है। इंदौरी पोहा इंदौर के बाज़ार में ही मिलता है, बाकी तो आप जहाँ भी रहते हैं, आपको पोहा घर में ही बनाकर ही खाना पड़ता है। और परदेस यानी सात समंदर पार हैं तो बाज़ार का पोहा तो सपना ही समझिए। इन देशों में तो अपने मरे ही स्वर्ग मिलता है। लेकिन दूर बैठा भोला भाला ग़रीब हिन्दी का पाठक यह क्या जाने ? उसके मन में एन. आर. आई. फेसबुकिए मित्र के प्रति सम्मान का भाव चार गुना बढ़ जाता है। और उससे भी ज़्यादा सहानुभूति उस दिन मिलती है जब वे एक पंक्ति में यह लिखते हैं कि 'आज मन उदास है...' फिर तो जनाब पूछिए ही मत। कठोर दिलवाले भी नरम पड़कर सांत्वना देने लगते हैं और उन्हें बताने लगते हैं कि वे तो आदर्श पुरुष हैं वे उदास नहीं हो सकते और बस इसके साथ ही उनका उद्देश्य पूरा। आज आशा से अधिक लाईक्स मिलेंगी, इसका अंदाज़ उन्हें पहले ही था। वे बिल्कुल ताश के खिलाड़ी की तरह अपने पत्ते बस जीतने के लिए ही खोलते हैं।

किसी ताज़ातरीन घटना पर विवादास्पद बात कह कहकर भी अहम् की तुष्टि कर लेते हैं। क्योंकि भाई, बड़े साहब ने बिल्ली छोड़ी है तो गले में घंटी बाँधने वाले तो तत्पर रहेंगे ही

न। इस प्रकार फेसबुक मोहल्ले पर सुर्खियों में रहने के कई तरीकों से लैस इस तरह के बड़े साहब जबरदस्ती दूसरों को अपने किस्से बार-बार लिखकर याद करवाते है तो मुझे न जाने क्यों अजय देवगन की फिल्म 'दृश्यम' याद आ जाती है। मुझे याद है कि जब मैं आठ-नौ साल की थी तब स्कूल से आते-आते मोहल्ले की किसी आंटी के यहाँ चली गई और फिर उनके घर की कोई गोपनीय-सी बात बड़े उत्साह से घर आकर मम्मी को उस समय बता दी, जब वह पड़ोसवाली आंटी से घर के बाहर बात कर रही थीं। उस समय तो मम्मी ने चुपचाप सुन लिया, लेकिन बाद में घर के अंदर क्या डाँट पड़ी कि साहब उसके बाद सदा के लिए गाँठ बाँध ली इधर की बात उधर न करने की...और वे झन्नाटेदार अलग-अलग इंटेंसिटी यानी अलग-अलग ताकत वाले दो थप्पड़! आज भी अपना सिर सहला लेती हूँ और !!!! सन्नाटा छा गया था दिल और दिमाग़ पर!!

ये मेरी रिएक्शन अर्थात्, प्रतिक्रिया। मुझ बेचारी बच्ची को उस मासूम अपराध की डाँट कई दिनों तक रह-रह कर पड़ती रही।

मैं सोचती हूँ कि आज मेरी मम्मी होती तो क्या करतीं? आज वे 'बेचारी' हो जातीं। उन्हें मेरा लोगों के घर में ताक-झाँक करना नहीं पसंद था क्योंकि वह उनकी नैतिकता के विरुद्ध था। लेकिन फेसबुक मोहल्ला ने तो सारे समीकरण, सारे मानदण्ड बदल दिए और सारी नैतिकता ताक पर रख दी। आज सहज ही बड़े साहब की ज़बरदस्ती चेंपी गई पोस्ट पढ़कर मम्मी की बात याद आई तो मैंने आपसे इसलिए साझा कर ली कि इसे पढ़कर मुझसे कम से कम यह तो साझा करिए कि कहीं आप भी तो फेसबुक मोहल्ला पर मानसिक शोषण के शिकार तो नहीं है? ...या कहीं स्वयं ही शोषक तो नहीं? पिछले दशक में सोशल मीडिया क्रांति ने हमारी जीवन-शैली में अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिए हैं। ईमेल के पश्चात्, दृश्य सूचना-प्रसार के उपकरण जैसे वाट्सएप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, टिकटॉक, ट्विटर, गूगल, माईक्रोसॉफ्ट टीम्स, ज़ूम आदि ने भूमंडलीकरण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अच्छा यह हुआ कि इन माध्यमों की वजह से कई बिछड़े लोग पुन: मिल सके। वैश्विक महामारी कोविड-19 जहाँ एक ओर भीषण त्रासदी बन कर आई वहीं दूसरी ओर इन विविध माध्यमों के कारण सारा संसार एकदूसरे से जुड़ा रहा। फेसबुक, यूट्यूब इत्यादि अभिव्यक्ति और संवाद स्थापित करने के सशक्त साधन बनकर उभरे। यह प्रकृति को विकृत करने में मनुष्य का ही हाथ है, इसी प्रकार इन मानव-निर्मित इन संचार-माध्यमों के दुरुपयोग का बीड़ा भी मनुष्य ने बड़े गर्व से उठा लिया।

हम वाट्सएप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, टिकटॉक, ट्विटर आदि के ग़ुलाम बन गए हैं इन पर घंटों बिता देते हैं। आवश्यक कार्य रह जाते हैं। सामने बैठे व्यक्ति की उपस्थिति को नकार कर हम दूर बैठे अनजान व्यक्ति से संपर्क बना या बढ़ा रहे होते हैं। फेसबुक से दूसरे के घर में सेंध लगाते हैं, दूसरों के घरों में अतिक्रमण करते है, सारे शिष्टाचार छोड़कर वर्च्युअल लड़ाई करते हैं। असहनशील, असंवेदनशील हो जाते हैं, अभद्र हो जाते हैं। यह सब होता देख कर मैं डर जाती हूँ कि हम कैसे शिक्षित हैं? या सिर्फ शिक्षित हैं संस्कारित नहीं है। स्थिति भयावह होती जा रही है। सोशल मीडिया के युग के पहले पत्राचार के युग में आदमी की व्यक्तिगत बातें जगजाहिर नहीं होती थीं। लेकिन आज जीवन से जुड़ी हर अच्छी-बुरी घटना को पोस्ट कर दिया जाताहै। क्या हम पोस्ट करने से पहले और उसे दूसरों को चेंप कर मानसिक प्रताड़ना देने से पहले क्या हम यह नहीं सोच सकते कि इस पोस्ट की सामनेवाले को आवश्यता है कि नहीं। आप अपने फेसबुक के मित्रों से अपनी हर बात साझा करें लेकिन फेसबुक के उन तथाकथित अनजान मित्रों को बख्श दें, उन्हें जीने दें, उन्होंने आपका फ्रेंड बनकर या बनाकर जो अपराध अनजाने ही कर दिया है उसकी इतनी बड़ी सज़ा न दें। वरना लोग धीरे-धीरे आपसे बचना शुरू कर देंगे क्योंकि अति सर्वत्र वर्जयते।

मोहल्ले की संकल्पना में एक भाईचारा, आत्मीयता, प्रेम होता था। आधी रात पर लोग किसी की एक आवाज़ पर अपने भले–बुरे की चिंता छोड़ निधड़क मदद के लिए पहुँच जाते थे। दुर्भाग्य से फेसबुक मोहल्ला वैसा नहीं है, सब कुछ हाथ से छूटा-सा, उथला, सतही है। यहाँ आडंबर है, चाकचिक्य भी है, कृत्रिमता भी। अत: फेसबुक मोहल्ले के धौंसिये- गुंडों से डरें नहीं। किसी की पोस्ट पर प्रतिक्रिया देने का आपका दिल नहीं है तो बेशक मत दीजिए प्रतिक्रिया, मत कीजिए टिप्पणी।

हमारे सनातन धर्म में दुष्ट ग्रहों की पूजा का विधान है। महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस के आरंभ में खल वंदना की है, बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ।

इसलिए ऐसे सभी फेसबुकिया साहित्यकारों को धन्यवाद जिनकी कृपा से मेरी कलम में उर्जा उत्पन्न हुई और में कुछ लिख सकी। अच्छा, आपको यह ध्यान दिलाती चलूँ कि बातों-बातों में मैंने आपको फेसबुक पर सुर्खियों में रहने के सारे गुर सिखा दिए हैं, ज़रा गिनकर तो बतलाइए कि कितने हैं?

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

व्यंग्य

शू का शो

मूल रचना : इब्न-ए-इंशा
अनुवाद : अखतर अली

इब्न-ए-इंशा

अखतर अली
निकट मेडी हेल्थ हास्पिटल, आमानाका,
रायपुर (छत्तीसगढ़)
मोबाइल- 9826126781
ईमेल- akhterspritwala@gmail.com

भले हर सिर को टोपी की ज़रूरत न हो, हर हाथ को दस्ताने न लगे, हर आँख को चश्मे की दरकार न हो लेकिन हर पैर को जूते चप्पल तो चाहिए ही चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखते हुए हमने जूते का कारखाना खोल लिया। आज हमारे जूतों की यह स्थिति है कि जहाँ लोगों के पाँव तक नहीं पड़े वहाँ भी हमारे जूते पहुँच गए हैं। हमारी फैक्टरी में बने जूते दूर-दूर तक प्रसिद्धि पा चुके हैं। पहनने में आराम दायक और चुराने के लिये उपयुक्त। आज मस्जिद से जो जूते चोरी हो रहे हैं उनमें अधिकांश जूते हमारे ही द्वारा बनाए गए हैं। जो चोर नहीं हैं वे भी इन्हें देखते ही चुराने के लिये मचल जाते हैं। हमारे बनाए जूतों से बेरोज़गार काम से लग गए। हमारे बनाए जूतों की चमक का तो यह आलम है कि जब से हमारे जूते बाज़ार में आए है आइनों की बिक्री बहुत कम हो गई। आईना बनाने वाले कारीगर जूते बनाना सीख रहे है। अब लोग हमारे जूतों में ही चेहरा देख लेते हैं। इतने आला किस्म के जूते बना कर हमने ज़माने की चाल ही बदल दिया है। अब वह ज़माना नहीं रहा जिसमें लोग मुँह देख कर बात करते थे अब शू देख कर बोलते हैं। हमारे जूतों में इतनी चमक है कि इन्हें पहन कर आदमी अँधेरे में भी आसानी से चल सकता है। हमारे जूते दहेज के सामानों का ज़रूरी हिस्सा हो गए हैं। भले आपने अपनी बेटी को लाखों करोड़ो का दहेज दिया हो पर हमारी कंपनी के जूते नहीं दिये तो समझो कुछ नहीं दिया। हमारे जूतों में इतना दम है, इसमें इतना पावर है कि जब लड़की अपने साथ दहेज में हमारी कंपनी के जूते लेकर जाती है तो सिर्फ़ पति को ही नहीं बल्कि पूरे ससुराल को जूते की नोंक पर रखती है। जो हमारे सफ़ेद जूते है उस पर लोग काला टीका लगाते है ताकि जूते को किसी की नज़र न लगे। समूची जूता जाति में आज तक ऐसा जूता नहीं हुआ जैसा जूता हमारे कारखाने में तैयार हो रहा है। जूते के बूते बाज़ार में हमारी जूती की तूती बोलती है। अब क्या बोलूँ, बोलूँगा तो आप बोलेंगे छोटा पैर बड़ा जूता यानी छोटा मुँह बड़ी बात कर रहा है। हमारे जूते के ऐसे ऐसे दीवाने लोग है जो हमारे जूते खरीदते हैं लेकिन पहनते नहीं कहते हैं इनकी जगह पैरों में नहीं है ये तो सीने से लगाने और सिर पर रखने लायक चीज़ है।

कितनी ही लड़कियों ने अपने आशिक के चेहरे देखे ही नहीं उनके जूते देख कर ही उन से मोहब्बत कर ली। वे कहती हैं जिनके जूते इतने बेहतरीन हैं वह आदमी कितना लाजवाब होगा। जब हमारे जूते बाज़ार में नहीं आए थे तब आशिकों को जूते पड़ते थे अब जूते इश्क की वजह बन गए हैं। एक सुपर डुपर हिट फ़िल्म की कामयाबी का राज़ हमारे जूते ही थे इस फ़िल्म में हीरो का चेहरा कम उसके जूते ज़्यादा दिखाये गए थे। जूतों की माला हमारे जूतों से ही शुरू हुई है। जिस चोर की हमारे जूतों से पिटाई हो गई उसने फिर कभी चोरी नहीं की। इन जूतों की एक अन्य ख़ासियत इसका तलवा है। इसे पहन कर आप किसी भी धूल मिट्टी से भरे रास्ते पर चले जाइये आपको इन्फ़ेक्शन नहीं होगा। अगर पैर में हमारा जूता है तो मुँह में मास्क लगाने की कतई ज़रूरत नहीं। यह प्रदूषणमुक्त जूता है।

अगर आपने अपने दोस्त को मुसीबत के वक्त पैसे उधार दिये हैं तो उसे वसूलने हमारे बनाये जूते पहन कर ही जाया कीजिये कितने भी चक्कर लगा लीजिये इसके तलवे नहीं घिसेंगे। तलवा चाटने चटाने का चलन यहीं से शुरू हुआ है। अगर आपने हमारी कंपनी के जूते पहने हैं तो कोई आप से बत्तमीज़ी से पेश नहीं आएगा और कोई आ भी गया तो इतना कहते ही माफ़ी माँगने लगेगा– ओए, जूता देख कर बात कर।

प्रगतिशील समाज के निर्माण की ओर जिन लोगों के कदम बढ़े हैं उन्होंने हमारे ही जूते पहने थे। जो जीवन में रोमांस और रोमांच चाहते है यह जूते उन्हीं के लिये हैं। इतना उपयोगी जूता बनाने में हम इसलिये कामयाब हो पाए हैं; क्योंकि यह जूता इतना हमारे पैर में नहीं होता जितना हमारे दिमाग़ में होता है। हमारे जूतों की और भी बहुत सी विशेषताएँ हैं जिसे जानना है तो आप हमारे शोरुम में आइये जहाँ हमारे एक्सपर्ट आपको हमारे जूतों के छुपे हुए राज़ बताएँगे। जल्द से जल्द आइये हमारे शू के शो में जहाँ हम आपके इंतज़ार में जूते लिये बैठे हैं।

000

एडिनबरा की सड़कों पर बीस हज़ार कदम

पल्लवी त्रिवेदी

12 नवंबर 2022 की वह रात मेरे लिए बेहद बेचैनी भरी रात थी।

मैं लंदन में अपने कज़िन के घर पर थी और पिछले दो दिनों से भाई के साथ लंदन घूम रही थी। विदेश में कोई ऐसा हो जिसके भरोसे आप दिन रात कहीं भी चल दो तो बड़ी आसानी हो जाती है। न यह चिंता करने की ज़रूरत कि कहाँ से ट्रेन मिलेगी, कहाँ से किस नंबर की बस में जाना होगा, न मैप खोलने की ज़रूरत और न लोकल लोगों से बात करते हुए उनके एक्सेंट को समझने की जद्दोजहद। तो पिछले दो नहीं बल्कि यूनाइटेड किंगडम प्रवास के पिछले 12 दिन जो एक ऑफ़िशियल ट्रेनिंग के सिलसिले में शैफील्ड, लीस्टरशायर और लंदन में गुज़रे वे साथी अधिकारियों और लोकल मेज़बानों के सानिध्य में एकदम सहूलियत भरे थे।

लेकिन ट्रेनिंग पूरी होने के बाद हमने एक हफ्ते की छुट्टी ले रखी थी जिसके दो दिन लंदन घूमने में बीत चुके थे और अब आगे के चार दिन स्कॉटलेंड घूमने का प्लान था। मेरे साथियों ने तय किया था कि वे स्कॉटलेंड को तीन दिन देंगे जिसमें एक दिन एडिनबरा के लिए था। लेकिन मैं लंदन प्रवास कम करके एडिनबरा को दो दिन देना चाह रही थी तो मैंने तय किया कि मैं अकेले एक दिन पहले एडिनबरा जाऊँगी और एक अन्य साथी अधिकारी भी मेरे प्लान में शामिल हो गए।

एक से भले दो। मैं अब मुतमईन थी कि दो लोग रहेंगे तो कोई समस्या आएगी भी तो हेंडल कर लेंगे। तो योजना के मुताबिक 13 नवंबर की सुबह मुझे और मेरे साथी अधिकारी को लंदन से एडिनबरा की ट्रेन पकड़नी थी।

लेकिन 12 नवंबर की रात जब मैं पुराने ब्रिटिश गाँवों, शेक्सपियर का घर स्ट्रेटफोर्ड और ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी की शानदार सैर के बाद बेहद थकी हुई और बेहद ख़ुश-ख़ुश लौटी, तभी रात बारह बजे आए एक मैसेज ने अचानक मुझे चिंता में डाल दिया। मेरे साथ जाने वाले साथी अधिकारी का प्लान बदल गया था और अब वे कल सुबह मेरे साथ एडिनबरा नहीं जा रहे थे। यानी अब अनचाही दो दिन की सोलो ट्रिप हो गई थी। यूँ सोलो ट्रिप मेरे लिए कोई नई बात नहीं थी और भारत में तमाम जगहों पर मैं अकेले घूमती रही हूँ लेकिन यहाँ मन कुछ घबराया हुआ था और अचानक नए देश में अकेले जाने और रहने के ख़्याल से बेचैनी हो गई थी। एक तो तेज़ सर्दी के कारण तबीयत ख़राब ही थी दो तीन दिनों से, साथ में सर्वाइकल और सायटिका के असहनीय दर्द से लगातार परेशान कर रखा था। ऊपर से इतना सारा समान लेकर अकेले जाना .. या कोई और समस्या आई तो ? मैं सोचकर ही ऊहापोह में पड़ गई। जाऊँ या ना जाऊँ ? ना जाने का विकल्प खुला ही था। एक दिन बाद बाकी दोस्तों के साथ आराम से जा सकती थी लेकिन मुझे एडिनबरा भी घूमना था। बार बार कौन आता है इतनी दूर ?

तो फाइनली घुमक्कड़ मन की जीत हुई और मैंने तय किया कि मैं अकेले ही जाऊँगी। हाँ ..

पल्लवी त्रिवेदी
एफ़ - 6 / 16
चार इमली, भोपाल, मध्यप्रदेश 462001
मोबाइल- 9425077766
ईमेल- trivedipallavi2k@gmail.com

रात भर नींद नहीं आई और एक अनजानी-सी बेचैनी लगातार बनी रही जब तक कि सुबह 9 बजे भाई मुझे किंग्स क्रॉस स्टेशन छोड़कर नहीं आ गया। प्लेटफ़ॉर्म नंबर नौ पर मेरी ट्रेन आनी थी। स्टेशन पर ट्रेन का इंतज़ार करते हुए एक दीवार पर नज़र पड़ी जहाँ "9-3/4" प्लेटफ़ॉर्म बना हुआ था!

अरे .. यहाँ से तो हॉगवर्ट के लिए ट्रेन जाती है। हैरी पॉटर की ट्रेन का असल प्लेटफ़ॉर्म देखकर मन एकदम रोमांचित हो गया। पास ही एक दूकान थी जहाँ हैरी पॉटर की दुनिया का तमाम साजो सामान बिक रहा था। तभी यह खयाल भी कौंधा कि हैरी पॉटर की लेखिका जे. के. रोलिंग भी तो एडिनबरा से ही थीं और हॉगवर्ट का आर्किटेक्चर स्कॉटिश ही है। तो मैं हैरी पॉटर के देश ही जा रही हूँ। यह मेरे जैसे पॉटर फैन के लिए उत्साहित कर देने वाली बात थी।

दस मिनिट बाद ट्रेन आई और मैं उसमें चढ़ गई। मेरे साथ सबसे बड़ी समस्या मेरा सामान था जो कि 20 दिन की पूरी विदेश यात्रा के हिसाब से रखा गया था जिसमें एक बहुत बड़े साइज़ का ट्रॉली बैग, एक छोटे साइज़ का ट्रॉली बिग, एक बैकपैक, एक कैमरा और एक हैन्ड बैग शामिल था। अकेले कैरी करने के लिहाज़ से यह बहुत ज़्यादा था और यह मुझे तब समझ में आया जब मैं जैसे-तैसे इस पूरे सामान को ट्रेन में लेकर चढ़ी। मुसीबत यह थी कि कोच में बड़ा सूटकेस रखने की कोई जगह नहीं थी। पूछने पर कोच अटेंडेंट लेडी ने बताया कि तीन कोच के बाद एक कोच में समान रखने की जगह बनी हुई है, वहाँ रखना होगा इस बड़े ट्रॉली बैग को। मैंने अपने कोच में नज़र दौड़ाई तो गेट के पास सीट के पीछे की जगह एकदम ख़ाली थी। तो मैंने अपना बड़ा बैग वहाँ रखा और बाकी सामान सीट के ऊपर रखकर तसल्ली से अपनी सीट पर बैठ गई। इस ट्रेन की सीट बहुत ही छोटी और असुविधाजनक थी। हमारे यहाँ की शताब्दी इससे कई गुना बेहतर है। मेरे मन में एकदम से शताब्दी ट्रेन के प्रति सम्मान बढ़ गया!

जब सीट पर बैठकर, सामान जमाकर तसल्ली की एक लंबी गहरी साँस ली और

पानी पीने के लिए बैकपैक उठाया तब ध्यान आया कि पानी कि बोतल तो जल्दबाज़ी में लेना ही भूल गई। पानी पास में ना हो तो प्यास की तीव्रता बढ़ जाती है तो इसी सिद्धांत का पालन करते हुए गले ने सूखना शुरू कर दिया और मेरे शरीर का रोम-रोम पानी की माँग करने लगा। अब क्या किया जाए ? कहाँ मिलेगा पानी ? काम से कम एक बोतल तो इन्हें यात्रियों को उपलब्ध करानी ही चाहिए। शताब्दी में पानी भी मिलता है, यह सोचकर एक बार फिर शताब्दी को नमस्कार कर लिया। कोच अटेंडेंट जब टिकिट चैक करने आई तो उससे पानी के लिए पूछ लिया और वही हुआ जिसका डर था। जाने किस एरिया की रहने वाली थी वह भद्र महिला जिसकी बोलने की स्पीड ट्रेन की स्पीड को मात दे रही थी और एक्सेंट मेरे सर के ऊपर से जा रहा

था। दो बार 'पार्डन पार्डन' करने के बाद वह थोड़ी इरिटेट हुई और मैं थोड़ी शर्मिंदा। लेकिन फिर भी जो समझ आया उसका लब्बोलुआब यह था कि अभी फूड ट्रॉली आएगी जिसमें पानी भी मिल जाएगा। इधर एकदम बे-शऊर बच्चे की तरह व्यवहार करते हुए गला पानी की पुकारें लगा रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे आज प्यास से ही जान जाएगी। अगल बगल निगाह डाली तो लगभग सबके पास पानी था लेकिन हिम्मत नहीं थी कि किसी से पानी माँग लूँ। इस पल बहुत ज़ोर से अपने देश की याद आई जहाँ किसी से पानी माँग लेने में कोई ख़ास संकोच नहीं होता है। एक बार तो आधी रात को किसी ट्रेन में चढ़ी थी और पानी रखना भूल गई थी तो कोच अटेंडेंट से ही पानी माँग लिया था और उसने अपनी जूठी बोतल पकड़ाई थी और एक क्षण हिचकने के बाद मैंने उस बोतल से पानी पी लिया था!

लेकिन यहाँ क्या करूँ ? फिर फैसला किया कि फूड ट्रॉली का इंतज़ार किया जाए। इस बीच अगर मरने जैसी स्थिति बनी तब पानी की सहायता माँगी जाएगी। करीब एक घंटे बाद वही कोच अटेंडेंट ट्रॉली के साथ नमूदार हुई। तब समझ में आया कि यही एकमात्र कर्मचारी है इस ट्रेन की। सारे टिकिट्स चैक करने के बाद अब यह भोजन विक्रेता की भूमिका में आ गई है!

जब वह मेरे पास आई तो मैंने पानी की बोतल माँगी। उसने झट से एक बोतल निकालकर दी लेकिन यहाँ फिर एक पेंच फँस गया। मेरे पास सिर्फ कैश था और वह कार्ड से या मोबाइल एप से ही पेमेंट स्वीकार कर रही थी। मेरा कार्ड यूके आने के बाद से ही काम नहीं कर रहा था लेकिन साथ में सभी साथियों के होने से कहीं कोई समस्या नहीं आ रही थी और मैंने 250 पाउंड्स एक दोस्त से कैश उधार ले लिए थे। हालाँकि एक कार्ड भी मैंने एक दोस्त से लेकर ज़रूरत के लिए रख लिया था जिसमें 50 पाउंड्स पड़े हुए थे और वही कार्ड मैंने उसे थमाया लेकिन निर्विघ्न कोई यात्रा सम्पन्न हो जाए तो वह पल्लवी त्रिवेदी की यात्रा तो नहीं ही हो सकती है। कार्ड तो कमबख्त काम ही नहीं कर रहा। उसने तीन

चार बार कोशिश करने के बाद सॉरी कहते हुए कंधे उचका दिए। अब मुझे लगा कि मुझे रोना आ जाएगा। अभी भी चार घंटे का रास्ता बाकी है और मैं इतनी देर प्यास बर्दाश्त नहीं कर सकूँगी। वह ट्रॉली लेकर आगे बढ़ गई और मेरा चेहरा रुआँसा हो आया और अस्फुट सी आवाज़ में मैंने कहा-

"I m parched"। पर वह आगे बढ़ चुकी थी। दो पल बाद एक आवाज़ कानों में आई - 'water'। देखा तो वह ट्रॉली से एक ग्लास में पानी लेकर आई थी। मन हुआ कि फूट-फूट रो पड़ूँ और ज़ोर से उससे चिपक जाऊँ। लेकिन भावनाओं पर कंट्रोल किया और एक घूँट में ग्लास खाली कर एक ग्लास और माँग लिया। वह मुस्कराई और एक ग्लास पानी और दे दिया। अब मेरी जान में जान आई और उसे दिल से धन्यवाद के साथ दुआएँ भी दे डालीं।

रात भर की टूटी हुई नींद और सुबह 6 बजे से स्टेशन के लिए निकल पड़ने से लेकर अब तक सुकून नहीं मिला था। पानी पीकर एक लंबी गहरी चैन की साँस ली। अब दर्द से टूटते कंधों और पैरों पर मेरा ध्यान गया और एक पेन-किलर निकाली मगर कैसे खाऊँ ? पानी तो है ही नहीं ? ख़ैर ..दर्द बर्दाश्त किया जा सकता है। पेन किलर के बिना ही सर खिड़की से टिकाया और आँखें बंद कर लीं। दस मिनिट ही हुए होंगे इतने में वह महिला फिर से नमूदार हुई। अब वह कह रही थी कि मैंने जहाँ अपना बड़ा सूटकेस रखा हुआ है वह जगह विकलांग लोगों के सामान के लिए निर्धारित है। मुझे इसे हटाना होगा। मैंने कहा कि जब कोई आएगा तो मैं हटा लूँगी। मगर उसने सख्त लहजे में मुझे सामान हटाने के लिए कहा। मैं उठी और मैंने अपना सूटकेस उठाया मगर मुझे समझ नहीं आया कि अब इस अकेले सूटकेस को किस कोच में रखने जाऊँ? मैं असहायता से दो मिनिट खड़ी रही फिर मैंने देखा कि मेरे पीछे की सीट खाली पड़ी है तो मैंने उससे पूछा कि क्या मैं अपना सामान यहाँ रख सकती हूँ। उसने सर हिलाया जिसका अर्थ मैंने 'हाँ' में लिया और सूटकेस को उस सीट के सामने रख दिया। जब कोई

आएगा तब का तब देखा जाएगा ! क़िस्मत अच्छी थी कि उस सीट पर कोई नहीं आया।

बची हुई यात्रा में खिड़की से बाहर अनजाने देश को देखने की बजाय आँखें बंद किए निढाल खिड़की से टिकी बैठी थी। मन मायूस था। मगर क्यों ? सब कुछ तो ठीक ही जा रहा है। फिर क्यों रोना-सा आ रहा है ? क्यों लग रहा है कि यह ट्रेन की विंडो न होकर किसी का कंधा होता जिस पर टिककर मैं सिसक सकती। बदन हल्का गर्म भी लगने लगा था और बदन का कोई हिस्सा ऐसा न था जो दर्द से टूट न रहा हो। अचानक किसी ऐसे स्पर्श की उत्कट इच्छा मन में उमग आई, जिसे अपना कहा जा सकता हो। और अब सिर्फ मम्मी बेतरह याद आने लगीथीं। हमेशा यही तो होता है। तबीयत ख़राब हो तो माँ शिद्दत से याद आती हैं। अब माँ की उँगलियाँ

बालों में महसूस होने लगीं और शरीर और दिमाग़ की कसी हुई रगें ढीली होने लगीं।

करीब डेढ़ घंटे की देरी से ट्रेन दोपहर तीन बजे एडिनबरा पहुँची। ट्रेन से उतरकर पूरे सामान को लादकर प्लेटफ़ॉर्म से बाहर निकली। गूगल मैप मेरा होटल स्टेशन से सिर्फ 700 मीटर दूर दिखा रहा था। बाहर कोई ऑटो, कोई टैक्सी, कोई रिक्शा नहीं था तो सोचा कि इतनी दूर तो पैदल ही चली जाऊँगी। अब मेरी हालत यह कि मेरे दोनों हाथों में एक-एक ट्रॉली बैग, पीठ पर बैकपैक, एक कंधे पर कैमरा, एक कंधे पर हैन्डबैग और हाथ में मोबाइल जिसमें गूगल मैप खुला हुआ था।

गूगल मैप की एक दिक्कत यह है कि कार से चलते समय तो इसके हिसाब से चलना सही होता है लेकिन पैदल जाते समय समझ नहीं आता कि यह दाएँ जा रहा है या बाएँ। तो इसके हिसाब से जब चलना शुरू किया तो चढ़ाई वाली सड़क थी जिस पर मैं अपने सामान सहित हाँफती हुई चल पड़ी। थोड़ी दूर चलने के बाद देखा कि होटल की दूरी बढ़ गई है तब समझ आया कि मैं उलटी तरफ चल पड़ी हूँ। खीझकर वापस लौटना शुरू किया। अब तक ट्रेन से उतरे आधा घंटा बीत चुका था। भूख लगी थी, बदन दर्द और थकान से टूट रहा था और मैं अभी होटल से 900 मीटर दूर थी। पंद्रह मिनिट बाद मैं एक चौराहे पर खड़ी थी जहाँ से होटल मात्र सौ मीटर दूर था मगर यहाँ गूगल मैप ने फिर धोखा दे दिया और यहाँ चौराहे पर खड़ी मैं सोच रही थी कि दाहिने जाना है या बाएँ ? मुझमें अब इतनी ताकत शेष नहीं थी कि एक कदम भी ग़लत दिशा में जा सकती। मैं सामान नीचे रख धम्म से एक किनारे पर बैठ गई। आँखों में आँसू भर आए थे। तभी संकट मोचक की तरह एक सरदार जी दिखाई दिए और मैं लगभग भागकर उनके पास पहुँची और होटल का पता पूछा। उन्होंने बताया कि बाईं तरफ जाकर पास में ही होटल है। उन्हें शुक्रिया कहकर मैं होटल की ओर चली और तीन चार मिनिट में होटल पहुँच गई। और चैक इन करके कमरे में जाकर जो बिस्तर पर गिरी तो सीधे शाम के 7

बजे नींद खुली।

एक पूरा दिन जो एडिनबरा शहर देखने के लिए रखा था, वह बीत गया था और इस मौसम में दिन बेहद छोटे थे और शाम 4 बजे सूर्यास्त हो जाता था।

शाम को उठकर मैं बाहर निकली तो अच्छा ख़ासा अंधेरा हो गया था और बाज़ार भी बंद हो गया था। मैं जहाँ ठहरी थी वह सड़क क्वींस माइल कहलाती है। यह एक मील लंबी सड़क है जिसके एक छोर पर किला है और दूसरे छोर पर महल। इसीलिए इसका नाम क्वींस माइल है।

रात के वक्त कोई भी शहर घूमना मुझे पसंद है। यहाँ बहुत ज़्यादा रोशनी नहीं थी रास्तों पर लेकिन सर्द मौसम में अकेले एकदम अजनबी शहर में मैं चलती जा रही थी। यह चलना दोपहर में सामान के साथ चलने से कितना अलग था। अब हाथ खाली थे और मैप देखने की ज़रूरत नहीं थी। जिस तरफ जी चाहे, उस तरफ चल पड़ो। जब लौटना हो सिर्फ तभी मैप का सहारा लो। उस वक्त खयाल आया कि सामान हमें कितना बाँध देता है।

ज़्यादा बोझ अनावश्यक ही है चाहे शरीर पर हो या मन पर।

एक घंटे करीब यूँ ही सड़कों पर घूमती रही। रात के अंधेरे में लंबी इमारतों के आर्किटेक्चर का कुछ अंदाज़ नहीं लग पा रहा था। लेकिन कुछ दूकानें खुली थीं और ज़्यादातर भारतीयों की थीं। यूँ ही तफरी करते हुए एक दूकान में घुस गई जिसे एक सरदार दम्पत्ति चला रहे थे। यह सोविनियर शॉप थी। उहोने कहा कि इंडियंस को अच्छा डिस्काउंट देते हैं लेकिन मुझे कुछ सस्ती लगी नहीं वह शॉप इसलिए अगले दिन आने का कहकर मैं वहाँ से चल पड़ी। अब तक अच्छी ख़ासी भूख भी लग आई थी तो आगे एक भारतीय रेस्तरां दिखा जहाँ मैंने दाल चावल मंगाया। यूनाइटेड किंगडम में हर भारतीय रेस्तरां में आम की लजीज चटनी मिलती है जो यहाँ भी थी जिसे पापड़ के साथ खाते हैं। शुरू में तो समझ ही नहीं आया था कि मेनू में 'popadem' नाम की यह डिश होती क्या है।

फिर किसी ने बताया कि यह हमारा पापड़ ही है !खाने के साथ एक ग्लास व्हाइट वाइन मँगाई और सुकून से लता और रफी के गाने सुनते हुए खाना खाया।

खाना खाकर होटल लौटी और बिस्तर पर गिरते ही सो गई। सुबह 7 बजे जब आँख खुली तो शरीर और दिमाग़ दोनों तरोताज़ा थे और अब मैं शहर घूमने के लिए एकदम तैयार थी। नाश्ता कर के दस बजे मैं निकल पड़ी और होटल से बाहर कदम रखते ही धूप में नहाए एडिनबरा की सुंदरता देखकर ठगी-सी खड़ी रह गई।

रात और दिन में कितना फ़र्क था। सूर्य के उजाले ने जैसे ज़र्रे-ज़र्रे को एक सुनहरा लिबास पहना दिया था। सबसे पहले मैंने कासल जाने का निश्चय किया जो कि क्वींस माइल रोड के आख़िरी छोर पर था। यहाँ

पहुँचने के लिए पूरी रोड को घूमते हुए जाना था और यही सड़क थी जिसकी भव्यता और सुंदरता ने मुझे हैरान कर दिया था !ऐसा लग रहा था मानो किसी जादुई दुनिया में पहुँच गई हूँ। फिर याद आया कि जे. के. रोलिंग ने यही दुनिया तो हैरी पॉटर में रची है। पत्थरों की थोड़े कालेपन की रंगत लिए ऊँची इमारतें जिनके ऊपरी हिस्से नक्काशीदार और नुकीले थे। सड़क के दोनों ओर बड़ी बड़ी दुकानें थीं जो कि पर्यटकों के लिए ही थीं। सड़क के किनारों पर ठेठ स्कॉटिश ड्रेस में बैगपाइपर बजाते में म्यूज़िशियन जिनके बैग पाइपर से निकलती स्कॉटिश धुनें एक ऐसा माहौल रच रही थीं कि मुझे लगा जैसे मैं इतिहास के किसी और काल में पहुँच गई हूँ। मैं इतनी ख़ुश और रोमांचित थी इस शहर में आकर कि मुझे लगा कि लंदन का एक दिन और कम किया जा सकता था। मैं अपने सभी प्रिय लोगों को यह शहर दिखाना चाहती थी सो तुरंत घर और दोस्तों को वीडियो कॉल किया। जिस जिस ने कॉल उठाया उन्हें इस शानदार शहर के दर्शन करवाए। मेरा जी चाहा कि जब अपना घर बनवाऊँ तो स्कॉटिश स्टाइल का पत्थरों का ही बनवाऊँगी।

इस सुंदरता और भव्यता के जादू से बँधी मैं कासल पहुँची जो कि एक पहाड़ी पर बना हुआ है। यह क़िला ग्यारहवीं शताब्दी में बनाया गया था और तब से सत्रहवीं शताब्दी तक यह लगातार राजसी आवास बना रहा और उसके बाद यह सैनिक और प्रशासनिक दृष्टि से उपयोग में लिया जाने लगा। जिस दिन मैं इस क़िले में पहुँची उस दिन आर्मी का कोई बड़ा सालाना प्रोग्राम भी था जिसमें सेना की पूरी सजधज और बैंड के साथ भव्य परेड हुई और बंदूकों के साथ तोपों की सलामी भी दी गई। इस कार्यक्रम को देखना मेरे लिए बोनस था। अगले तीन घंटे तक क़िले के तमाम म्यूज़ियम्स को और इसके भव्य इतिहास को देखती रही और सम्मोहित होती रही। और जब क़िले से बाहर निकलने को हुई तब एक ख़ूबसूरत दृश्य का साक्षी बनना भी मेरे हिस्से आया। किसी प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को इस क़िले में प्रपोज़ करना तय किया था और अचानक घूमते वक्त हाथ में अँगूठी, चेहरे पर

मुस्कान और आँखों में प्यार लेकर घुटनों पर बैठकर उसे प्रपोज़ कर दिया था। प्रेमिका ने हैरानी से देखा और प्रेमी के गले लग गई। एक ख़ूबसूरत मौसम में, एक ख़ूबसूरत शहर के ख़ूबसूरत क़िले में दो प्रेमी एक दूसरे को चूम रहे थे और आसपास लोग सुखद आश्चर्य से उन्हें देख रहे थे। प्रेम के इस एक पल की ख़ूबसूरती शहर की ख़ूबसूरती पर भारी पड़ गई थी!

जब क़िले से बाहर आई यो दोपहर के दो बज चुके थे और खाना खाकर मैंने किसी और स्थान को देखने की बजाय शहर में पैदल घूमना पसंद किया। शहर के भीतर एक गली में इटली की एक सोलो ट्रेवलर लड़की मुझे मिली जो पहले भी दो बार यहाँ आ चुकी थी और इस शहर ने उसे इस कदर बाँधा था कि हर तीसरे साल वह यहाँ चली आती है। एक कैफे में बैठकर उसके साथ कॉफी पी। उसका नाम मारिया था और मेरे भारतीय और उसके इटालियन एक्सेंट में हमारी बातचीत बहुत रोचक थी। लड़कियाँ आपस में कितनी आसानी से खुल जाती हैं। उसने हँसते हुए बताया कि हर ब्रेकअप के बाद वह घूमने चली जाती है। मैंने हँसते हुए कहा कि मैं डिप्रेशन में चली जाती हूँ। मारिया से स्कॉटलेंड के बारे में और बहुत सारी जानकारी मिली। एडिनबरा में ही इतना कुछ था कि तीन चार दिन यहीं घूमा जा सकता था। मुझे अफसोस हुआ कि यहाँ मैं और पहले क्यों नहीं आ गई। यह शहर एक दिन में घूमने वाला शहर नहीं है!

मारिया से विदा लेकर मैं पेवमेंट पर बैगपाइपर बजा रहे कलाकार के पास जाकर बैठ गई। थोड़ी देर उसे सुनती रही। लाल चैक वाली स्कॉटिश ड्रेस में उसे बजाते हुए देखना अच्छा लग रहा था। किसी जगह का लोक संगीत सुनना उस शहर की आदिम तान को सुनने जैसा है। वह कलाकार एक ख़ूबसूरत नौजवान था। मारिया से इश्क़ और ब्रेकअप पर हुई बातों का असर था शायद कि मेरे मन में उस कलालार को सुनते और देखते हुए खयाल आया कि क्या हो यदि मुझे इससे इश्क़ हो जाए। ऐसे ही तो बनती हैं अनोखी प्रेम

कहानियाँ। और यह सोचकर मुझे ज़ोरों की हँसी भी आ गई और मैं ऐसी किसी संभावना के होने को खारिज करती हुई वहाँ से उठ खड़ी हुई। मुझे उठते देख वह मुस्कराया और सर झुकाकर अभिवादन किया। मैंने उसके बोल में एक पाउंड रखा और एक रहस्यमयी मुस्कान उसकी ओर उछालती हुई मैं चल पड़ी।

फिर मन में एक और ख़्याल आया – "क्या कभी किसी और ने भी मुझे देखते हुए मुझसे इश्क़ हो जाने कल्पना की होगी ? क्या जाने इसी बंदे ने की हो ?" अगर मारिया का फ़ोन नंबर मैंने लिया होता तो उसे फ़ोन करके यह मज़ेदार बात ज़रूर बताती!

बिना किसी टूरिस्ट डेस्टिनेशन लिस्ट के मुझे एडिनबरा की सड़कों पर भटकना बहुत अच्छा लग रहा था। साइट सीइंग के लिए एक

जगह से दूसरी जगह भागना मुझे कभी रास नहीं आया। मंत्रमुग्ध-सी पैदल पैदल घूमती मैं सोच रही थी कि कितना ख़ूबसूरत शहर है यह। अगर वक्त लेकर आएँ तो पाएँगे कि यह शहर दरअसल एक क़िस्सागो शहर है जिसके पास सुनाने को ढेरों कहानियाँ हैं। इन क़िस्सों में रानियाँ हैं, राजकुमार हैं, प्रेम कथाएँ हैं, महलों में हो रहे षड्यन्त्र हैं, जादू टोने हैं और भटकती रूहें हैं और सुपर नैचुरल ताकतों से भरी रहस्यमयी जगहें हैं। हैरी पॉटर का जादूगरी का कॉलेज सिर्फ और सिर्फ यहीं हो सकता था। दुर्भाग्य से मेरे पास इतना वक़्त नहीं था कि इस बूढ़े शहर के पास बैठकर अलाव तापते हुए इसके किस्से सुन सकूँ। लेकिन फिर भी अकेले आकर इसकी धड़कन को महसूस कर पाई, यही हासिल रहा मेरे लिए!

यह कमाल का शहर है जिसने बड़ी नफ़ासत से अपनी विरासत को सहेज रखा है। अगर भारत में सोचूँ तो ऐसा शहर मुझे सिर्फ जैसलमेर जेहन में आता है। शाम को लगभग 20000 कदम चलने के बाद जब थके हुए और दर्द से टीसते पैरों से वापस होटल लौट रही थी तो सोच रही थी कि कल की तमाम परेशानियों और अकेले यात्रा करने की बेचैनी के बावजूद आज का यह दिन इतना ख़ूबसूरत और ज़रूरी था। ज़रूरी इस मायने में कि इसने मुझे दुनिया की किसी भी जगह पर अकेले घूम सकने का हौसला और हिम्मत दोनों दिए। और ख़ूबसूरत इस मायने में कि तमाम साथियों के साथ घूमते हुए आनंद तो आता है लेकिन किसी जगह के साथ होने का एहसास मुझे तभी होता है जब मैं और वह जगह अकेले में एक दूसरे से गुफ़्तगू करें और आज का दिन बस मैं थी और एडिनबरा शहर था।

देर शाम जब होटल पहुँची तो सारे साथी होटल पहुँच चुके थे और अगले तीन दिन मैं स्कॉटलेंड के अलग अलग हिस्सों में सबके साथ घूमती रही। यह सारा सफ़र बेहद सुंदर था लेकिन मुझे अगर कोई एक स्मृति अपने हृदय में सहेजनी हो तो यकीनन वह एडिनबरा में पैदल अकेले घूमने की ही होगी।

000

घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

लोकोक्ति बहुत पुरानी है- 'घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध', इस लोकोक्ति का अर्थ है कि जो भी बाहर से आपके गाँव में आता है, वह सिद्ध पुरुष माना जाता है और अपने गाँव के जोगी को जोगड़ा माना जाता है। इन दिनों अचानक भारत से लोगों का विदेश जाना बहुत आसान हो गया है। कारण यह है कि किसी न किसी का बेटा-बहू या बेटी-दामाद विदेश में बसे हैं। इस कारण माता-पिता का विदेश जाना अब बहुत आसान हो गया है। जाने का एक स्थाई कारण तो यह होता ही है कि वहाँ विदेश में बेटी या बहू के माँ बनने पर वहाँ घर की देखभाल के लिए जाना। चूँकि वहाँ भारत की तरह कई-कई काम वाली बाइयाँ लगाने की सुविधा नहीं होती है, इसलिए माँ-बाप को ही जाना पड़ता है। इसके अलावा भी कई कारणों से उनके चक्कर लगते रहते हैं, किन्तु अमूमन आप पायेंगे कि जब भी आप किसी माता-पिता के विदेश जाने का कारण पूछेंगे तो अधिकांश मामलों में कारण यही निकलेगा कि बेटी या बहू माँ बनी है तो घर की देखभाल के लिए जा रहे हैं। ऐसे मामलों में क़रीब तीन से छह महीने तक विदेश में ही रुकना पड़ता है। वैसे तो विदेश जाने वाले अधिकांश माता-पिता सामान्य इंसान ही होते हैं, किंतु कुछ इंसान नहीं होते हैं, वे होते-होते रह गए लेखक होते हैं तथा अधिकांश मामलों में ये लेखक कवि ही होते हैं। कॉलेज के समय में प्रेम में पड़ कर कुछ कविताओं जैसा लिखने का फूहड़ प्रयास कर चुके होते हैं। विदेश आकर इनके अंदर का लेखक अचानक ही जाग पड़ता है। विदेशों में रहने वाले प्रवासी भारतीय हिन्दी के प्रति, हिन्दी साहित्य के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं, तथा ये वहाँ रह कर भाषा तथा साहित्य के लिए सचमुच बहुत अच्छे कार्य कर भी रहे हैं। भारत से बच्चे पालने विदेश जाने वाले माता-पिता इसी संवेदनशीलता का फ़ायदा उठाते हैं। वे किसी शहर में पहुँच कर सबसे पहले जानने की कोशिश करते हैं कि यहाँ कौन-कौन से लेखक रहते हैं। जब ज्ञात हो जाता है तो उनको लगातार भारत की आदत के अनुसार कॉल करना प्रारंभ कर देते हैं, बिना यह जाने की वहाँ किसी को कॉल करने या किसी के घर जाने के कुछ क़ायदे हैं। हर कॉल में बस एक ही बात- मैं हिन्दी का एक प्रतिष्ठित लेखक हूँ, भारत से आपके शहर में आया हूँ, मेरे स्वागत में एक गोष्ठी का आयोजन कीजिए। मेरा सम्मान समारोह आयोजित कीजिए। चूँकि लोकोक्ति कहती है- 'आन गाँव का सिद्ध', तो विदेशों में रह रहे भारतीय इनको महान् मान लेते हैं। इधर ये भी अपने प्रयास तब तक बंद नहीं करते हैं, जब तक कि उनके स्वागत में कोई गोष्ठी आयोजित नहीं हो जाती है। यदि कोई सम्मान भी हो जाता है, तब तो इनके लिए सोने पर सुहागा हो जाता है, ये भारत के समस्त सोशल मीडिया समूहों में तुरंत सम्मान प्राप्त करते हुए अपनी तस्वीर जारी कर देते हैं- 'लेखन के लिए ऑस्ट्रेलिया के सिडनी शहर में सम्मानित किये गए, शहर के प्रतिष्ठित कवि श्रीमान भंतेलाल भंडारी।' इधर शहर के लोग यह सोचते हैं कि यह बापड़ा जब तक यहाँ था, तब तक तो कुछ कवि-फवि नहीं था, ये अचानक ऑस्ट्रेलिया जाकर कवि कैसे बन गया। शहर के कवि भी अचंभे में होते हैं कि हमारे रहते शहर में कोई नया कवि कैसे पैदा हो गया, और हुआ तो हुआ पर पैदा होते से ही अंतर्राष्ट्रीय बन गया, एकदम सीधे ऑस्ट्रेलिया में गोष्ठी कर रहा है। चूँकि लोकोक्ति है कि 'आन गाँव का सिद्ध' तो यह बच्चे पालने गया लेखक धीरे-धीरे कवि या कहानीकार या लघुकथाकार से एकदम गुरु हो जाता है। इसने पूरी ज़िंदगी में चार कविताएँ या दो लघुकथाएँ या बमुश्किल एक टूटी-फूटी कहानी लिखी होती है, मगर यह वहाँ विदेश में गुरु बन कर कविता, कहानी या लघुकथा लिखना सिखाने लगता है। अपनी शिष्य-मंडली विकसित करने लगता है। चूँकि इसे 'सिद्ध' माना जा चुका है, इसलिए लोग इससे सीखने भी लगते हैं। जब यह बच्चे पालने का समय पूरा हो जाने के बाद भारत लौट रहा होता है, तब इसकी झोली में कई प्रवासी शिष्य रखे होते हैं। भारत लौट कर आने के बाद यह अपने शहर में भी घोषित वरिष्ठ कवि या वरिष्ठ लेखक हो चुका होता है। **सादर आपका ही**

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

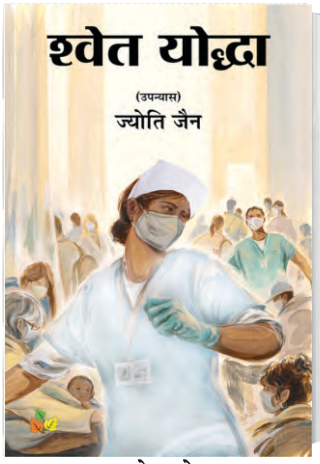

श्वेत योद्धा
उपन्यास
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2024

ऐ वहशते-दिल क्या करूँ
उपन्यास
लेखक - पारुल सिंह
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

टूटी पेंसिल
कहानी संग्रह
लेखक - हंसा दीप
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

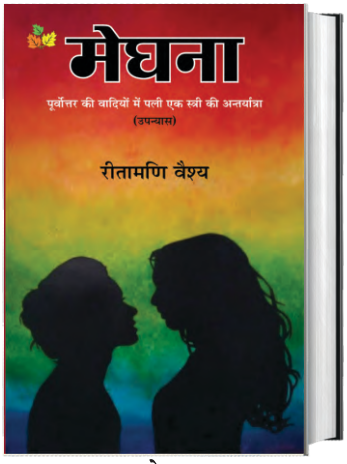

मेघना
उपन्यास
लेखक - रीतामणि वैश्य
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2024

पीली पर्ची
कहानी संग्रह
लेखक - शिवेन्दु श्रीवास्तव
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

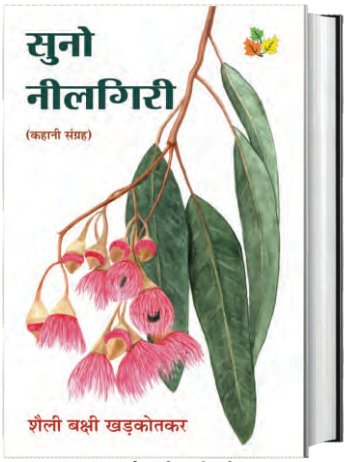

सुनो नीलगिरी
कहानी संग्रह
लेखक - शैली बक्षी खड़कोतकर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

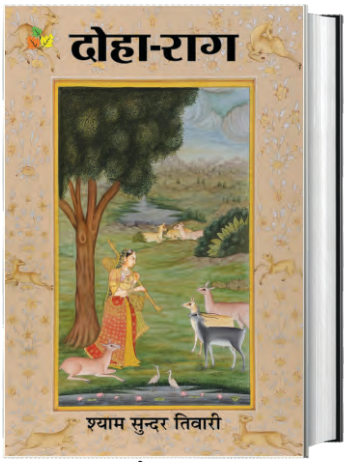

दोहा राग
दोहा संग्रह
लेखक - श्याम सुन्दर तिवारी
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

कुछ चेहरे कुछ यादें
रेखाचित्र संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2024

व्यंग्य के नेपथ्य - 2
आलोचना
संपादक - प्रेम जनमेजय
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

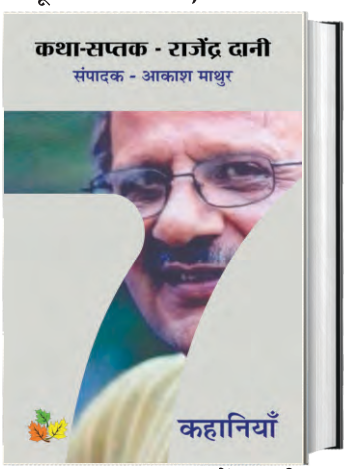

कथा सप्तक - राजेंद्र दानी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

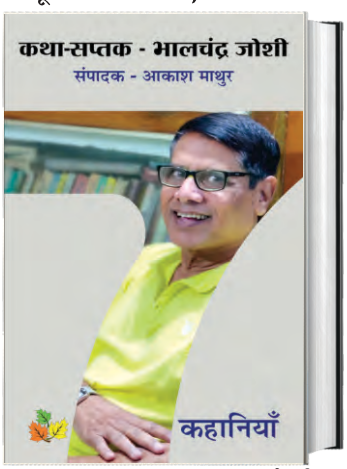

कथा सप्तक - भालचंद्र जोशी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

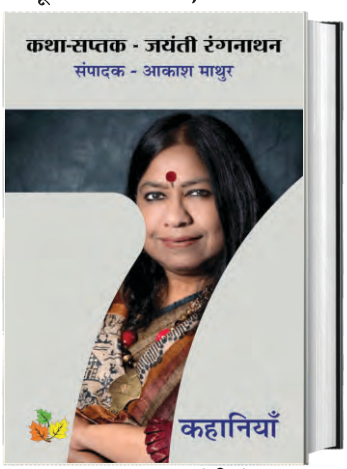

कथा सप्तक - जयंती रंगनाथन
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), +91-6265665580
व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-8959446244 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

Vibhom Swar ● Quarterly ● July-August 2024 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

शिवना नवलेखन पुरस्कार

शिवना नवलेखन पुरस्कार

शिवना प्रकाशन द्वारा नये लेखकों को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए इस वर्ष से 'शिवना नवलेखन पुरस्कार' की शुरुआत की जा रही है। यह पुरस्कार गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं- कहानी, उपन्यास तथा कथेतर विधा में प्रदान किया जायेगा। हर वर्ष किसी एक पांडुलिपि को ही यह पुरस्कार प्रदान किया जायेगा। पुरस्कृत पांडुलिपि तथा अन्य दो अनुशंसित पांडुलिपियों का प्रकाशन शिवना प्रकाशन द्वारा किया जायेगा। पुरस्कृत लेखक को नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में यह पुरस्कार प्रदान किया जायेगा तथा उसी समय पुस्तक का लोकार्पण भी किया जायेगा। अनुशंसित पुस्तकों का भी विमोचन उसी कार्यक्रम में किया जायेगा। वर्ष 2024 के लिए कहानी, उपन्यास तथा कथेतर (डायरी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा-वृत्तांत, रिपोर्ताज) विधाओं में पांडुलिपियाँ आमंत्रित की जा रही हैं।

पुरस्कार के लिये नियम तथा शर्तें-

1. पुरस्कार के लिए लेखक की आयु 35 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए। (जिस वर्ष हेतु पांडुलिपि आमंत्रित की गयी है, उस वर्ष की 31 दिसंबर तिथि तक।) पांडुलिपि के साथ आधार कार्ड की छायाप्रति संलग्न करना आवश्यक होगा।
2. लेखक की पहली किताब होनी चाहिए, इससे पूर्व उसकी किसी भी विधा की कोई किताब प्रकाशित नहीं होनी चाहिए। इस संबंध में एक स्व-हस्ताक्षरित घोषणा पत्र लेखक को पांडुलिपि के साथ भेजना होगा।
3. पांडुलिपि कम से कम चालीस हज़ार तथा अधिकतम अस्सी हज़ार शब्दों की होनी चाहिए। इससे कम या अधिक शब्द संख्या होने पर पांडुलिपि अमान्य कर दी जायेगी।
4. पांडुलिपि 15 अक्टूबर 2024 के पूर्व शिवना पुरस्कार के ईमेल shivna.awards@gmail.com पर प्राप्त हो जाना चाहिए। पांडुलिपि वर्ड डॉक में यूनीकोड फॉण्ट में टाइप होनी चाहिए। किसी अन्य फॉण्ट में होने पर स्वीकार नहीं की जायेगी।
5. पुरस्कृत लेखक को 11,000 रुपये (ग्यारह हज़ार रुपये) नगद राशि, पुरस्कार पत्र तथा 5,100 रुपये (पाँच हज़ार एक सौ रुपये) मूल्य की शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उनकी पुस्तक की प्रतियाँ प्रदान की जायेंगी।
6. दो अनुशंसित पुस्तकों के लेखकों को 5,100 रुपये (पाँच हज़ार एक सौ रुपये) मूल्य की शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उनकी पुस्तक की प्रतियाँ प्रदान की जायेंगी।
7. लेखक को पांडुलिपि के साथ पुस्तक के मौलिक, स्वलिखित तथा अप्रकाशित होने का हस्ताक्षरित पत्र भेजना आवश्यक है।
8. पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर लिखा होना चाहिए- 'शिवना नवलेखन पुरस्कार के लिए'।
9. प्रकाशित पुस्तकों के कॉपीराइट (प्रिंट, डिजिटल तथा ऑडियो) पाँच वर्ष तक लेखक तथा शिवना प्रकाशन के पास संयुक्त रूप से रहेंगे, इस अवधि में लेखक उस पुस्तक को अन्यत्र कहीं से प्रकाशित नहीं करवा सकेगा।
10. पुरस्कार के लिए अंतिम निर्णय निर्णायकों का होगा जो प्रतिभागियों के लिए मान्य होगा।
11. पुस्तक का प्रकाशन शिवना प्रकाशन के निर्धारित मापदण्डों के अनुसार किया जायेगा, उसमें किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन लेखक के अनुरोध पर नहीं किया जायेगा।
12. पुरस्कार के लिए एक पाँच सदस्यों की समन्वय समिति बनायी गयी है, लेखक पुरस्कार के बारे में और जानकारी प्राप्त करने के लिए उनसे संपर्क कर सकते हैं। समिति के सदस्य हैं-

सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका), ज्योति जैन (इन्दौर), शैलेन्द्र शरण (खण्डवा), पारुल सिंह (नई दिल्ली) तथा शहरयार (सीहोर)।

संपर्क- शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

दूरभाष- 07562-405545, व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.awards@gmail.com

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।